INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

MAHIN-403

लोक साहित्य – I

MA HINDI

1st Semester

Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. of Hindi Delhi University	**Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. of Hindi Guwahati University	**Member**
Prof Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Virendra Parmar, Pradhyapak Dept. of official Language, Ministry of Home Affairs, Govt. of India

Dr. Geeta Singh Associate Professor, and Head Dept. of Hindi D.A.V.PG college, Azamgarh

Vikas Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter verted, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"formation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by Ra Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, DE-Ray Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be able for a errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically declaim any implied warranty or merchantability or fitness for any particular use"

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के शैक्षिक परिदृश्य (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा .मी . हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एम .फिल व पी . एड का कोर्स भी चलाता है। .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देश विदेश के प्रमुख-

विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र परीक्षाओं में भी सफल NET | हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक आर्थिक बाधाओं को दूर करने का- यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर पूर्वी भारत के- दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान (आईटीई) रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान (को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली) मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष-**पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री -(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक **-(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं .ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी। .ए.है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

लोक साहित्य-I

Syllabi-MAHIN- 403 **Mapping in Book**

इकाई 1 लोक की अवधारणा; लोक साहित्य का अर्थ और स्वरूप; लोक साहित्य का क्षेत्र ; लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य;	**इकाई 1** : : लोक की अवधारणा एवं लोक साहित्य-I
इकाई 2 लोकगीत-परिभाषा एवं विशेषताएं, लोकगीत और साहित्यिक गीत में अंतर, लोकगीतों का वर्गीकरण, सामान्य प्रवृत्तियां एवं रूढ़ियां, संगीत का विधान एवं वाद्य यंत्र, लोकगीत गायन में प्रयुक्त लोक-वाद्य, लोकगायकों की भूमिका; लोककथा- परिभाषा, उद्भव के सिद्धांत, विशेषताएं, भारतीय वर्गीकरण, पौराणिक कथाएं एवं उनकी विशेषताएं, लोककथा व पौराणिक कथा में अंतर, लोककथा कथन में कथक्कड़ की भूमिका	**इकाई 2** : लोक साहित्य के प्रकार-I
इकाई 3 पूर्वोत्तर का लोक साहित्य असम; त्रिपुरा; नागालैंड मणिपुर; मिजोरम मेघालय; सिक्किम	**इकाई 3** : पूर्वोत्तर के साथ राज्यों का लोक साहित्य -I
इकाई 4 अरुणाचल का लोक जीवन; अरुणाचली लोक साहित्य के विविध रूप-I; लोकगीत, लोकनृत्य,	**इकाई 4** : पूर्वोत्तर का लोक साहित्य : अरुणाचल-I **)**
इकाई 5 लोकसाहित्य का परिभाषीकरण; लोक साहित्य की विधाएँ; पूर्वोत्तर और हिंदी की लोक साहित्य की तुलना का आधार	**इकाई 5** : हिंदी और पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन-I

विषय- सूची

परिचय

इकाई 1 लोक की अवधारणा एवं लोक साहित्य-I

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 लोक की अवधारणा
1.3 लोक साहित्य का अर्थ और स्वरूप
1.4 लोक साहित्य का क्षेत्र
1.5 लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य
1.6 पाठांश
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 ‘अपनी प्रगति जांचिए’ के उत्तर
1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.11 आप ये भी पढ़ सकते है

इकाई 2 लोक साहित्य के प्रकार-I

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 लोकगीत
2.2.1 लोकगीत की परिभाषा एवं विशेषताएं
2.2.2 लोकगीत और शिष्ट गीत में अंतर
2.2.3 लोकगीतों का वर्गीकरण
2.2.4 लोकगीतों की सामान्य प्रवृत्तियां एवं रूढ़ियां
2.2.5 लोकगीतों में संगीत का विधान एवं वाद्य यंत्र
2.2.6 लोकगीत गायन में प्रयुक्त लोक-वाद्य
2.2.7 लोकगायकों की भूमिका2.3 लोककथा
2.3.1 लोककथा की परिभाषा
2.3.2 लोककथा के उद्भव के सिद्धांत
2.3.3 लोक कथाओं की विशेषताएं
2.3.4 लोककथाओं का भारतीय वर्गीकरण
2.3.5 पौराणिक कथाएं एवं उनकी विशेषताएं
2.3.6 लोककथा व पौराणिक कथा में अंतर
2.3.7 लोककथा कथन में कथक्कड़ की भूमिका
2.4 पाठांश
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 ‘अपनी प्रगति जांचिए’ के उत्तर
2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.9 आप ये भी पढ़ सकते है

इकाई 3 पूर्वोत्तर के सात राज्यों का लोक साहित्य –I

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 पूर्वोत्तर का लोक साहित्य
3.3 असम
3.4 त्रिपुरा
3.5 नागालैंड
3.6 मणिपुर
3.7 मिजोरम
3.8 मेघालय
3.9 सिक्किम
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 पूर्वोत्तर का लोक साहित्य : अरुणाचल-I

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 अरुणाचल का लोक जीवन
4.3 अरुणाचली लोक साहित्य के विविध रूप-I
4.3.1 लोकगीत
4.3.2 लोकनृत्य
4.4 सारांश
4.5 मुख्य शब्दावली
4.6 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.7 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 हिंदी और पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन-I

6.0 परिचय
6.1 इकाई के उद्देश्य
6.2 पूर्वोत्तर एवं हिन्दी के लोकगीत
6.3 पूर्वोत्तर और हिन्दी की लोककथाएं
6.4 पूर्वोत्तर और हिंदी लोक साहित्य की तुलना का आधार
6.5 सारांश
6.6 मुख्य शब्दावली
6.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
6.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
6.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 1 लोक की अवधारणा एवं लोक साहित्य

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 लोक की अवधारणा
1.3 लोक साहित्य का अर्थ और स्वरूप
1.4 लोक साहित्य का क्षेत्र
1.5 लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य
1.6 लोक साहित्य की अध्ययन पद्धतियां
1.7 लोक साहित्य के संग्रह की आवश्यकता
1.7.1 लोक साहित्य के संग्रह का इतिहास
1.7.2 लोक साहित्य की उपयोगिता
1.8 लोक साहित्य के अध्ययन की चुनौतियां
1.9 सारांश
1.10 मुख्य शब्दावली
1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

समग्र रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग उस जनसमूह के लिए किया जाता है, जो साज–सज्जा, ऊपरी दिखावा, सभ्यता एवं शिक्षा आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों से युक्त होता है।

इस प्रकार वैदिक काल से लेकर आज तक 'लोक' शब्द का प्रयोग प्रायः समान अर्थों में अनवरत रूप में प्राप्त होता है। दृष्टव्य यह है कि 'लोक' शब्द का प्रयोग लोक–कल्याण अथवा लोक–संग्रह के संदर्भों में किया गया है।

'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' अभिधान लगाने के बाद उसका अर्थ होगा– लोक का साहित्य। 'लोक' का अर्थ जनता–जनार्दन द्वारा लिया जाता है। इसलिए लोक साहित्य का बोध ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना जनता–जनार्दन द्वारा की जाती हो।

लोक साहित्य अन्य समाज–विज्ञानों से बहुत निकट से जुड़ा हुआ है। मानव–समाज का अध्ययन करने वाले सभी समाज–विज्ञानों के अध्ययन की प्रचुर सामग्री लोक साहित्य में उपलब्ध हो जाती है। अतः इनका परस्पर संबंध बहुत प्रगाढ़ माना जाएगा। इसलिए कुछ शास्त्रों, कलाओं या समाज–विज्ञानों से लोक साहित्य के संबंधों की विवेचना यहां करेंगे। जिस प्रकार लोक साहित्य में अन्य समाज–विज्ञानों के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो जाती है, उसी प्रकार लोक साहित्य के अध्येता को भी अन्य समाज–विज्ञानों का अध्ययन करने से अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की प्राप्ति हो जाती है। अतः समाज–विज्ञानों के अनुसंधानकर्ताओं को लोक साहित्य का तथा लोक साहित्य के अध्येताओं को अन्य

समाज–विज्ञानों का अध्ययन अपेक्षित है, जिससे अंतर– अनुशासनपरक अध्ययन किए जा सकें। वर्तमान में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी ऐसे तुलनात्मक अंतर–अनुशासन पर आधारित शोध कार्यों एवं प्रोजेक्टों को पर्याप्त प्रोत्साहन दे रहा है। इस इकाई में हम लोक साहित्य से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- लोक की अवधारणा और लोक साहित्य के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- लोक साहित्य और लोक संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- लोक साहित्य की अध्ययन पद्धतियों से अवगत हो पाएंगे;
- लोक साहित्य के संग्रह की आवश्यकता क्यों है, यह जान पाएंगे;
- लोक साहित्य के अध्ययन की चुनौतियों से अवगत हो पाएंगे।

1.2 लोक की अवधारणा

भारतीय साहित्य में 'लोक' शब्द बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। 'लोक' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'लोकृ दर्शने' धातु में 'धञ्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। 'लोकृ दर्शने' धातु का अर्थ है 'देखना'। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ – 'देखने वाला'। परंतु व्यवहार में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'संपूर्ण जनमानस' के लिए होता है।

ऋग्वेद में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जन' के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है।

पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्थान' तथा 'जीव' शब्दों के अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया गया है।

अथर्ववेद में 'लोक' शब्द से दो लोकों की स्थिति का बोध कराया गया है। ये दो लोक हैं – 'पार्थिव' एवं 'दिव्य'।

उपनिषदों में 'लोक' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। जैसे 'जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण' में 'लोक' शब्द की व्याख्या 'विविध प्रकार से विस्तार लिए हुए, प्रत्येक वस्तु में निहित और प्रयास करने पर भी अनुपलब्ध' के रूप में की गई है।

इसी परंपरा में लोक शब्द का प्रयोग 'महाभारत', 'श्रीमद्भागवत गीता' आदि में भी उपलब्ध होता है।

पाणिनि, वररुचि और पतंजलि प्रभृति वैयाकरणों ने भी 'लोक' शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में किया है।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग सटीक रूप में किया गया है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में स्वयं लिखा है कि – इस शास्त्र की रचना लोक मनोरंजनार्थ की जा रही है।

टिप्पणी

लोक शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– देखने वाला। शब्दकोश में इस शब्द के सात अर्थ मिलते हैं –

1. स्थान बोधक
2. संसार
3. प्रदेश या क्षेत्र
4. जन या लोग
5. समाज
6. प्राणी
7. यश

समग्र रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग उस जनसमूह के लिए किया जाता है, जो साज–सज्जा, ऊपरी दिखावा, सभ्यता एवं शिक्षा आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों से युक्त होता है।

इस प्रकार वैदिक काल से लेकर आज तक 'लोक' शब्द का प्रयोग प्रायः समान अर्थों में अनवरत रूप में प्राप्त होता है। दृष्ट्व्य यह है कि 'लोक' शब्द का प्रयोग लोक–कल्याण अथवा लोक–संग्रह के संदर्भों में किया गया है।

इसी को लक्ष्य करके परवर्ती संस्कृत साहित्य की भाषा को 'लौकिक संस्कृत' कहा गया है। अतः संस्कृत साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जन–सामान्य' के अर्थ में किया गया है।

हिंदी साहित्य में भी परंपरागत रूप में, 'सामान्य जनता' के अर्थ में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। हिंदी साहित्य के शोधार्थियों ने अपने शोध प्रबंधों में यह स्पष्टतः प्रमाणित किया है कि हिंदी साहित्य में वीरगाथा काल से ही इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'लोक' शब्द का प्रयोग सर्वथा सार्थक रूप में किया है। रामचरितमानस में 'लोक' और 'वेद' शब्दों का प्रयोग साभिप्राय रूप में करके महाकवि तुलसी ने लोक की सत्ता को स्वतंत्र रूप में स्थापित कर दिया है–

'लोकहु' वेद सुसाहिब रीती।
विनय सुनत पहिचानत प्रीती।

तथा –

भरत विनय सादर सुनिहु करेह विचारि बहोरि।
करब साधुमत 'लोकमत' नृपनय निगम निचोरि।

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध समीक्षक स्वनामधन्य पं. रामचंद्र शुक्ल ने 'लोक–मंगल' और 'लोकरंजन' को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी निरूपित करते हुए 'लोक' शब्द का प्रयोग अनेक बार किया है।

लोक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में ही रहते हैं, वे 'लोक' होते हैं।

टिप्पणी

वास्तव में 'लोक' शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'फोक' का ही हिंदी रूपांतर है। अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का प्रयोग अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित, असभ्य, अर्द्धसभ्य वर्ग के लिए किया जाता है। अतः जो विद्वान व्यक्ति 'लोक' शब्द का प्रयोग सरल ग्रामीणों के लिए करते हैं, वे सामान्य दृष्टिकोण से 'लोक' शब्द तथा ग्रामीणों दोनों के प्रति अन्याय करते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिए हुए लोक के अर्थ को स्वीकार किया जा सकता है, यथा–

"लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है।"

हिंदी के कुछ विद्वान 'जन' शब्द को 'लोक' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। ये विद्वान 'लोक' और 'जन' को पर्यायवाची मानते हैं। अपने मत की पुष्टि में वे अन्यत्र दिए हुए एवं शब्दकोशों में उल्लेख किए हुए 'लोक' शब्द के विभिन्न अर्थों में 'जन' अर्थ को उद्धृत करते हैं। उदाहरणतः डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'जन' शब्द का प्रयोग ग्राम्य के अर्थ में किया है। डॉ. सत्येन्द्र ने 'लोक' शब्द को व्यापक तथा 'जन' शब्द को संकीर्णता का बोधक माना है। डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने अपने शोध प्रबंध 'कुमायुंनी जन साहित्य का अध्ययन' में 'लोक' शब्द को भ्रामक बताते हुए 'जन' शब्द के उपयोग को ही उपयुक्त बताया है। विद्वानों और समीक्षकों की दृष्टि से डॉ. पाण्डेय 'लोक' शब्द के सतही अर्थ तक ही सीमित रह गए। यदि इस शब्द के अर्थ का गंभीरता से विश्लेषण किया जाए तो हम देखेंगे कि 'लोक' शब्द समाज की सूक्ष्म स्थिति यानी उसके अमूर्त भाव का बोधक है, जबकि 'जन' शब्द अपने अर्थ में स्थूलता वाचक है और जनता शब्द के अधिक निकट है। अतः 'जन' शब्द को 'जनता' शब्द के साथ संबंधित किया जा सकता है। परंतु इस संदर्भ में यह तथ्य भी दृष्टव्य है कि 'जनपद' शब्द का प्रयोग हमारे प्राचीनतम ग्रंथों में उपलब्ध होता है और उसका प्रयोग बहुलतापूर्वक किया गया है। आदि ग्रंथ वाल्मीकि रामायण में रामराज्य के वर्णन में उसका प्रयोग 'जनपद' के संदर्भ में किया गया है। महाभारत में भी 'जनपद' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। अतएव 'जन' शब्द की प्राचीनता और उसकी सार्थकता पर प्रश्न–चिह्न लगाने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

परवर्ती संस्कृत एवं पाली के साहित्यिक ग्रंथों में 'जन' शब्द का प्रयोग 'मानव समाज' के अर्थ में किया गया है। आधुनिक राजनीतिक शब्दावली में 'जनता' के अर्थ में 'जन' शब्द प्रयुक्त किया गया है। इस दृष्टि से 'जन' और 'लोक' शब्द प्रायः समानार्थी ठहरते हैं। दोनों में अंतर केवल यही है कि 'जन' मूर्त स्वरूप है और 'लोक' अमूर्त स्वरूप है।

उपर्युक्त संपूर्ण विवरण से निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि 'लोक' वस्तुतः अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द का हिंदी रूपांतर समझा जा सकता है और लोक साहित्य के संदर्भ में 'लोक' शब्द का प्रयोग ही सब दृष्टियों से उपयुक्त एवं उचित है। आज लोक साहित्य शब्द लोक प्रचलित एवं लोकमान्य हो गया है। लोक साहित्य को जन साहित्य कहना एक प्रकार से एक नये विवाद एवं भ्रांति को जन्म देना है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. अथर्ववेद में 'लोक' शब्द से दो लोकों पार्थिव और ....की स्थिति का बोध कराया गया है।
2. हिंदी के कुछ विद्वान 'जन' शब्द को.......... शब्द के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

सही/गलत बताइए–

3. 'लोक' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है–सुनने वाला।
4. 'लोक' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द का ही हिंदी रूपांतर है।

1.3 लोक साहित्य का अर्थ और स्वरूप

टिप्पणी

साहित्य के क्षेत्र में दो शब्द प्रचलित हैं– शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य। लोक साहित्य लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा लोकगीत, लोककथाएं, लोकगाथाएं, कथागीत, धर्मगाथाएं, लोकनाट्य, नौटंकी, रामलीला आदि लोक साहित्य से संबद्ध विषय हैं। शिष्ट साहित्य अथवा परिनिष्ठित साहित्य निश्चित रूप से लिखित साहित्य होता है, जबकि लोक साहित्य अलिखित एवं लिखित दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। वैसे तो लोक साहित्य सामान्यतः मौखिक ही रहा है तथा वह मौखिक परंपरा द्वारा ही अनवरत चलता रहता है, परंतु अब शिक्षा एवं छपाई के प्रचार–प्रसार के कारण लोक साहित्य के रूप में बहुत कुछ बदलावा आया है। आज का लोक कवि जो भी नये साहित्य की रचना करता है, वह सब लिपिबद्ध या लिखित होता है। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य के संकलन एवं संग्रह तथा शोध में प्रगति होने के फलस्वरूप बहुत–सा लोक साहित्य लिपिबद्ध किया जा रहा है तथा उसको ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया जाने लगा है।

लोक साहित्य का जन्म– 'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' अभिधान लगाने के बाद उसका अर्थ होगा– लोक का साहित्य। 'लोक' का अर्थ जनता–जनार्दन द्वारा लिया जाता है। इसलिए लोक साहित्य का बोध ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना जनता–जनार्दन द्वारा की जाती हो। एक विशिष्ट व्यक्ति की रचना न होने का तात्पर्य यही हो सकता है कि जिस साहित्य की रचना एक जन–समूह द्वारा की जाती हो, उसे ही लोक साहित्य कहा जाना चाहिए। जन–समूह की जो भावनाएं– हर्ष, विषाद, भय, प्रेम, शोक आदि होती हैं उनकी सामूहिक अभिव्यक्ति गीत, कथा आदि के रूप में हुई होगी। किसी एक ने एक पंक्ति की मौखिक रचना की होगी तो दूसरे ने उसमें एक और पंक्ति जोड़ दी, तीसरे ने तीसरी पंक्ति रचकर गीत को आगे बढ़ा दिया होगा। इसी प्रकार परवर्ती पीढ़ियों ने इस गीत में संशोधन, परिवर्द्धन किए होंगे और इस प्रकार अनेक लोगों के रचना–सहयोग से जो साहित्य प्रकाश में आया, वही 'लोक साहित्य' की श्रेणी में आ गया है। यही कारण है कि लोक साहित्य की विशेषताओं के रूप में निम्नलिखित बिंदुओं का उल्लेख किया जाता है–

1. लोक साहित्य की रचना का रचनाकार ज्ञात नहीं होता।
2. लोक साहित्य मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होता चला जाता है।
3. लोक साहित्य की रचना अनेक रचनाकारों के योगदान द्वारा अस्तित्व में आती है अर्थात लोक साहित्य लोक मानस द्वारा रचित होता है।
4. लोक के द्वारा लोक के लिए, लोक का साहित्य ही लोक साहित्य कहलाता है।
5. लोक साहित्य सहज, सरल, अकृत्रिम होता है। वह स्वतः स्फूर्त होता है।
6. लोक साहित्य का कोई शास्त्र नहीं होता अर्थात उसकी रचना के मानदंड पूर्व निर्धारित नहीं होते। लोक साहित्य शास्त्रों के नियमों, बंधनों को स्वीकार नहीं करता। इसका आशय यह है कि लोक साहित्य पर किसी प्रकार के नियम या सिद्धांत प्रभावी नहीं होते। लोकगीतों की रचना के भी छंद, अलंकार आदि संबंधी कोई नियम नहीं होते।

7. लोक साहित्य में आदिम सभ्यता, अर्द्धसभ्य या असभ्य लोगों या समाजों की भावनाओं, उनके असभ्य जीवन, रहन–सहन आदि का प्रभाव आवश्यक होता है।

8. लोक साहित्य निश्चय ही किसी जनपदीय बोली के माध्यम से व्यक्त होता है।

टिप्पणी

लोक साहित्य और परिनिष्ठित साहित्य – लोक साहित्य का संबंध किसी जनपद के आदिम जीवन से होता है। ऐसा अनुमान है कि युगों पूर्व आदिम युग में लोक साहित्य की रचना की गई होगी, इसलिए उसका रचना–काल और रचनाकार भी ज्ञात नहीं होता है। आधुनिक युग और आदिम युग की परिस्थितियों में भारी अंतर है। इस कारण आदिम युग के साहित्य में सहजता, सहज स्फूर्तता और नियम–सिद्धांतों से रहित स्थितियां रही होंगी। इस संबंध में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने निम्नांकित मत व्यक्त किया है–

"एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार–विचार, रहन–सहन सरल तथा स्वाभाविक था। यह आडंबर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। उसके समस्त क्रिया–कलाप–उठना, बैठना, हंसना, बोलना– स्वाभाविकता में आगे रहते थे। चित के आह्लाद के लिए, मन के अनुरंजन के लिए साहित्य की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती है, परंतु दोनों युगों के साहित्य में जमीन–आसमान का अंतर है। आज का साहित्य अनेक रूढ़ियों, वादों से जकड़ा हुआ है। कविता पिंगलशास्त्र की नपी–तुली नालियों से प्रवाहित होती है, अलंकार के भार से वह बोझिल है, कथाओं में अनेक प्रकार के शिल्प विधान (टैक्नीक) को ध्यान में रखना पड़ता है तथा नाटकों की रचना में अनेक नाटकीय नियमों का पालन करना पड़ता है, परंतु जिस युग की हम चर्चा कर रहे हैं, उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था – स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था जितना आकाश में विचरने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।"

लोक साहित्य की परिभाषा– लोक साहित्य की उपुर्यक्त विशेषताओं के आधार पर कोई ऐसी पूर्ण तथा सर्वमान्य परिभाषा विद्वानों द्वारा आज तक नहीं दी जा सकी है जिसके आधार पर लोक साहित्य की कोई पहचान स्थापित की जा सके। फिर भी अनेक विद्वानों ने 'लोक साहित्य' की परिभाषा अपने–अपने दृष्टिकोणों से देने का प्रयास तो किया ही है। इसलिए पहले हम कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्न क्रम में उद्धृत कर रहे हैं –

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – "ऐसा मान लिया जा सकता है, जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोक–कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं।"

उपर्युक्त परिभाषा में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आचार्य द्विवेदी ने 'लोकचित्त' शब्द का प्रयोग किया है। लोकचित्त से द्विवेदी जी का आशय परंपरा प्रस्थित और बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों और ऊपर की गई टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित जन–शक्ति या बुद्धि से है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार – लोक साहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें –

1. आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।
2. परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और लोक मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो।
3. वह कृतित्व हो, किंतु वह लोक मानस के सामान्य तत्वों से ऐसे युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ संबद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार – 'लोक साहित्य लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ाता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता–सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल–मिलकर ही कहता है। सम्भवतः लोक साहित्य लोक–संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब भी होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल लोक साहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है। लोकभाषा के माध्यम से लोकचिंता की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।'

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मत में – "वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपना मानता है।"

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने सुप्रसिद्ध पाश्चात्य लोक संस्कृति–विशारद ग्रिम के नाम का उल्लेख करते हुए जनता का जनता के लिए रचा गया, जनकाव्य कहकर लोक साहित्य की निम्न परिभाषा निर्धारित करने का प्रयास किया है–

"सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो।"

डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने निष्कर्ष स्वरूप एक परिभाषा देने का प्रयास किया है, जो निम्न प्रकार है –

> "अतः आदिम मानव के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य है। हमारे विचार में लोक साहित्य लोक समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परंपरागत मौखिक क्रम से प्राप्त वह वाणी है, जिसमें लोक मानस संगृहीत रहता है।"

7. लोक साहित्य में आदिम सभ्यता, अर्द्धसभ्य या असभ्य लोगों या समाजों की भावनाओं, उनके असभ्य जीवन, रहन–सहन आदि का प्रभाव आवश्यक होता है।
8. लोक साहित्य निश्चय ही किसी जनपदीय बोली के माध्यम से व्यक्त होता है।

टिप्पणी

लोक साहित्य और परिनिष्ठित साहित्य – लोक साहित्य का संबंध किसी जनपद के आदिम जीवन से होता है। ऐसा अनुमान है कि युगों पूर्व आदिम युग में लोक साहित्य की रचना की गई होगी, इसलिए उसका रचना–काल और रचनाकार भी ज्ञात नहीं होता है। आधुनिक युग और आदिम युग की परिस्थितियों में भारी अंतर है। इस कारण आदिम युग के साहित्य में सहजता, सहज स्फूर्तता और नियम–सिद्धांतों से रहित स्थितियां रही होंगी। इस संबंध में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने निम्नांकित मत व्यक्त किया है–

"एक समय था जब संसार के समस्त देशों में मनुष्य प्रकृति देवी का उपासक था तथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार–विचार, रहन–सहन सरल तथा स्वाभाविक था। यह आडंबर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहता था। वह स्वाभाविकता की गोद में पला हुआ जीव था। उसके समस्त क्रिया–कलाप–उठना, बैठना, हंसना, बोलना– स्वाभाविकता में आगे रहते थे। चित के आह्लाद के लिए, मन के अनुरंजन के लिए साहित्य की रचना उस समय भी होती थी और आज भी होती है, परंतु दोनों युगों के साहित्य में जमीन–आसमान का अंतर है। आज का साहित्य अनेक रूढ़ियों, वादों से जकड़ा हुआ है। कविता पिंगलशास्त्र की नपी–तुली नालियों से प्रवाहित होती है, अलंकार के भार से वह बोझिल है, कथाओं में अनेक प्रकार के शिल्प विधान (टैक्नीक) को ध्यान में रखना पड़ता है तथा नाटकों की रचना में अनेक नाटकीय नियमों का पालन करना पड़ता है, परंतु जिस युग की हम चर्चा कर रहे हैं, उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था – स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था जितना आकाश में विचरने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।"

लोक साहित्य की परिभाषा– लोक साहित्य की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर कोई ऐसी पूर्ण तथा सर्वमान्य परिभाषा विद्वानों द्वारा आज तक नहीं दी जा सकी है जिसके आधार पर लोक साहित्य की कोई पहचान स्थापित की जा सके। फिर भी अनेक विद्वानों ने 'लोक साहित्य' की परिभाषा अपने–अपने दृष्टिकोणों से देने का प्रयास तो किया ही है। इसलिए पहले हम कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्न क्रम में उदधृत कर रहे हैं –

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – "ऐसा मान लिया जा सकता है, जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोक–कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं।"

उपर्युक्त परिभाषा में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि आचार्य द्विवेदी ने 'लोकचित्त' शब्द का प्रयोग किया है। लोकचित्त से द्विवेदी जी का आशय परंपरा प्रस्थित और बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों और ऊपर की गई टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित जन–शक्ति या बुद्धि से है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार – लोक साहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें –

1. आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों।
2. परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और लोक मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो।
3. वह कृतित्व हो, किंतु वह लोक मानस के सामान्य तत्वों से ऐसे युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ संबद्ध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार – 'लोक साहित्य लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ाता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता–सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल–मिलकर ही कहता है। सम्भवतः लोक साहित्य लोक–संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब भी होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल लोक साहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है। लोकभाषा के माध्यम से लोकचिंता की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।'

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मत में – "वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपना मानता है।"

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने सुप्रसिद्ध पाश्चात्य लोक संस्कृति–विशारद ग्रिम के नाम का उल्लेख करते हुए जनता का जनता के लिए रचा गया, जनकाव्य कहकर लोक साहित्य की निम्न परिभाषा निर्धारित करने का प्रयास किया है–

"सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो।"

डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने निष्कर्ष स्वरूप एक परिभाषा देने का प्रयास किया है, जो निम्न प्रकार है –

> "अतः आदिम मानव के मस्तिष्क की सीधी तथा सच्ची अभिव्यक्ति ही लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य है। हमारे विचार में लोक साहित्य लोक समूह द्वारा स्वीकृत व्यक्ति की परंपरागत मौखिक क्रम से प्राप्त वह वाणी है, जिसमें लोक मानस संगृहीत रहता है।"

डॉ. उप्रैती ने लोक साहित्य की अपनी परिभाषा में डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय एवं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं की विशेषताओं को संयुक्त किया है।

उपर्युक्त सभी विद्वानों की परिभाषाओं में प्रायः सभी ने एक तथ्य का अवश्य उल्लेख किया है कि इसके रचयिता का पता नहीं होता। कभी–कभी इस तथ्य का इस रूप में भी उल्लेख किया गया है कि यह लोक साहित्य लोक मानस की कृति होती है। इस संबंध में एक प्रश्न अनायास ही उपस्थित होता है कि क्या लोक साहित्य के अंतर्गत सम्मिलित होने वाली सभी रचनाएं एक व्यक्ति द्वारा रचित नहीं होतीं ? क्या लोक ही उनका रचयिता होता है ? इस संबंध में लोक साहित्य की रचना प्रक्रिया पर स्पष्टतया विचार किया जाना चाहिए। वास्तविकता यह है कि लोक साहित्य के अंतर्गत आने वाली रचनाएं व्यक्ति–विशेष द्वारा रची गई होती हैं, किंतु उन पर लोक की ऐसी खराद लगती है कि मूल रचना का कभी–कभी तो स्वरूप ही बदल जाता है। ऐसे विभिन्न परिवर्तनों की प्रक्रिया से होकर आने वाली रचनाएं वास्तव में एक व्यक्ति की पृथक या स्वतंत्र रचना नहीं होती, वरन् ऐसी रचनाओं को लोक की रचनाएं या लोकमानस की कृति के नाम से पुकारा जाता है।

लोक साहित्य की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर एक सामान्य परिभाषा निम्नानुसार प्रस्तुत की जा सकती है –

- लोक साहित्य वह रचना अथवा अभिव्यक्ति है, जिसका रचनाकार ज्ञात नहीं होता, जो मौखिक परंपरा से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतर चलती जाती है, जो किसी जनपद के लोक जीवन और लोक–संस्कृति की अभिव्यक्ति जनपदीय बोली के माध्यम से करती है, जिसे किसी शास्त्रीय सिद्धांतों का बंधन स्वीकार्य नहीं होता और जो सहज, स्वतः स्फूर्त जनमानस की अनुभूतियों को व्यक्त करती है। इसी अर्थ में किसी भाषा के शिष्ट या परिनिष्ठत साहित्य से वह भिन्न होती है, क्योंकि शिष्ट साहित्य की रचना लिखित रूप में, पृथक् रूप वाली, लिखित या प्रकाशित कृति होती है और उसका रचनाकार ज्ञात होता है तथा उसकी वैयक्तिक अनुभूति का ही उसमें अभिव्यंजन होता है।
- इस संबंध में यह भी ज्ञातव्य है कि लोक साहित्य की उपुर्यक्त जितनी भी परिभाषाएं, विद्वानों द्वारा दी गई हैं, उन पर अधिकांश रूप में पाश्चात्य लोक संस्कृतिविदों का प्रभाव परिलक्षित होता है। किसी भी परिभाषा को मौलिक तथा पूर्ण अथवा निर्दोष नहीं माना जा सकता है।

लोक साहित्य के स्वरूप की विशेषताएं– लोक साहित्य की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर लोक साहित्य की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है –

1. **रचनाकार ज्ञात नहीं होता** – लोक साहित्य का रचनाकार ज्ञात नहीं होता। यह मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतर चलता जाता है। लोक साहित्य की रचना अनेक रचनाकारों के योगदान से अस्तित्व में आती है।
2. **[illegible]पदीय बोली में अभिव्यक्ति** – लोक साहित्य की अभिव्यक्ति किसी जनपद की बोली के माध्यम से होती है। इसमें लोक जीवन और लोक संस्कृति की झांकी जनपदीय बोली में चित्रित की जाती है।

3. **शास्त्रीय सिद्धांतों के बंधन से मुक्त** – लोक साहित्य शास्त्रीय सिद्धांतों के बंधन से पूर्णतः मुक्त होता है। इसकी रचना के मानदंड पूर्व निर्धारित नहीं होते। लोकगीतों की रचना के छंद, अलंकार संबंधी कोई नियम नहीं होते।
4. **सहज, सरल और अकृत्रिम** – लोक साहित्य में कोई आडंबर नहीं होता, वरन् वह सहज, सरल और अकृत्रिम होता है। वह स्वतः स्फूर्त होता है।
5. **अर्द्ध सभ्य समाजों की भावनाओं का चित्रण** – लोक साहित्य में आदिम सभ्यता, अर्द्ध सभ्य या असभ्य समाजों की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। इन समाजों से जुड़े रीति–रिवाजों और संस्कारों की झांकी उस समाज की बोली के माध्यम से लोक गीतों में चित्रित की जाती है।

उपर्युक्त विशेषताओं में सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि लोक साहित्य का रचनाकार शास्त्रीय सिद्धांतों से परिचित नहीं होता। न तो वह रस या रसावयवों से परिचित होता है और न वह अलंकार–विधान, भाषायी गुण, रीतिवृत्त आदि से ही परिचित होता है और न वह पिंगलशास्त्र का ही ज्ञाता होता है, तथापि, उसकी वाणी में काव्य के वे सभी तत्व विद्यमान होते हैं, जिन्हें शिष्ट साहित्य के रूप विधायक तत्वों के रूप में मानकता मिली हुई है। यदि अंतर है तो केवल इतना कि लोक साहित्य में अनुभूति सहज, अभिव्यक्ति सरल और अकृत्रिम तथा शास्त्रीय नियमों के बंधन को नकाराती हुई स्वच्छंद बनी रहती है। परिणामतः लोककाव्य में छंद रचना के नियमों का निर्वाह नहीं किया जाता, तुकांत का ठीक से पालन नहीं किया गया होता है। जो अलंकार आते हैं, वे सभी सहज, स्वाभाविक और आयाम रहित होते हैं। आशय यह है कि लोक साहित्य की विशेषताओं के अंतर्गत निम्नलिखित बातें भी सम्मिलित की जा सकती हैं–

1. लोकानुभूति।
2. जनपदीय बोली की शब्दावली।
3. सहज प्रवाह।
4. स्वच्छंद विधान (शास्त्रीय नियमों का बंधन नहीं)
5. लयपूर्ण गेयता की प्रधानता (लोक कथाओं को छोड़कर)
6. आदिम मन की अभिव्यक्ति (आदिम जीवन की अभिव्यक्ति)
7. लोकजीवन– लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति, (रूढ़ियों, परंपराओं, प्रथाओं, लोक विश्वासों, व्रतों, त्योहारों, पर्वों, उत्सवों की प्रधानता)
8. अर्द्ध सभ्य, असभ्य जातियों के जीवन, रहन–सहन की अभिव्यक्ति।

उपर्युक्त विशेषताओं को ही लोक साहित्य के रूप विधायक तत्वों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि लोक साहित्य सहज, सरल, स्वच्छंद अभिव्यक्ति का नाम है, जो किसी प्रकार के शास्त्रीय नियमों का बंधन स्वीकार नहीं करता और अनगढ़, अकृत्रिम तथा कलात्मक अभिव्यक्ति से कोसों दूर रहता है।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5. साहित्य के क्षेत्र में दो शब्द प्रचलित हैं, शिष्ट साहित्य और ....साहित्य।
6. लोक साहित्य की अभिव्यक्ति किसी जनपद की..........के माध्यम से होती है।

सही/गलत बताइए–

7. लोक साहित्य का संबंध किसी जनपद के आदिम जीवन से होता है।
8. लोक साहित्य में आडंबर होता है और वह असहज, असरल और कृत्रिम होता है।

टिप्पणी

1.4 लोक साहित्य का क्षेत्र

लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। लोक साहित्य के विद्वानों का मत है कि जहां–जहां लोक है, वहीं–वहीं लोक साहित्य भी उपलब्ध होता है। आदिम जीवन का तो लोक साहित्य से घनिष्ठ संबंध है। यदि यह कहा जाए कि आदिम जीवन लोक साहित्य का संस्कार–विधाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पूर्ण सभ्य, सुसंस्कृत जातियों के जीवन में संस्कारों को सम्पन्न करने में जो भूमिका वैदिक मंत्रों की होती है, आदिम जातियों में लोकगीतों की भी वही भूमिका होती है। वास्तव में लोक–जीवन के लिए लोकगीत ही वैदिक मंत्र है। जन्म से लेकर विवाह, मरण आदि तक के विधि अवसरों पर लोकगीत गाने की परंपरा है। संपूर्ण वर्ष सभी ऋतुओं में, जीवन के विविध क्रिया–कलापों के अवसर पर लोकगीतों के गाने की परंपरा है। इसी प्रकार बाल्यकाल से ही दादी–नानी की कहानियों से लेकर व्रतों, त्योहारों, पर्वों, उत्सवों, मेलों, तीर्थों, धार्मिक, सामाजिक क्रिया–कलापों के अवसर पर लोकगीतों को गाया जाता है। तात्पर्य यह है कि लोक जीवन का प्रत्येक क्षण लोक साहित्य से किसी न किसी प्रकार संबद्ध रहता है। जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बहुआयामी है, उसी प्रकार लोक साहित्य का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। इस संबंध में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का निम्नांकित कथन उद्धृत करना उपयुक्त होगा–

- 'लोक साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोडश संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है, प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाए जाते हैं। विभिन्न ऋतुओं में, प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है, उसका प्रभाव' जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः बाह्य जगत में इस परिवर्तन को देखकर हृदय में जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है, वह लोक गीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्व पुरुषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा–गाकर आनन्द प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीर–रस का संचार करती है। ये गीत लोक–गाथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. आदिम जीवन का लोक साहित्य से ....संबंध है।

सही/गलत बताइए–

10. साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हंसती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है।

1.5 लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य

लोक संस्कृति से आशय किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारंपरिक रीति–रिवाजों, त्योहारों, मान्यताओं और काल आदि से है। यह किसी क्षेत्र को स्वतंत्र पहचान प्रदान करती है। भारत की लोक संस्कृति में विभिन्न प्रकार के व्रत, त्योहार, पर्व, मेले का महत्व है। जितने पर्व व त्योहार भारत में मनाए जाते हैं उतने शायद किसी अन्य देश में नहीं मनाए जाते।

टिप्पणी

भारत में हिंदी मास के अनुसार निम्न पर्व व त्योहार मनाए जाते हैं–

चैत्र मास	:	बासोड़ा, नवरात्रे, रामनवमी
वैशाख	:	वैशाखी पूर्णिमा
ज्येष्ठ मास	:	वट सावित्री पूजन, गंगा दशहरा, निर्जला व्रत, एकादशी
आषाढ मास	:	योगिनी, एकादशी, गुरू पूर्णिमा
सावन मास	:	शिवजी व्रत व मेले, नाग पंचमी व रक्षा बंधन।
भाद्रपद मास	:	हरियाली तीज, अनन्त चतुर्दशी, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, हर तालिका, तीज गणेश चतुर्थी
आश्विन मास	:	नवराजा, दुर्गा अष्टमी, दशहरा, शरद पूर्णिमा
कार्तिक मास	:	करवा चौथ, अहोई, अष्टमी, धन तेरस, चतुर्दशी, दीपावली, गोवर्धन पूजा, भैयादूज, कार्तिक पूर्णिमा, गंगा स्नान मेला
मार्गशीष	:	भैरव जयन्ती, मार्गशीष, पूर्णिमा व्रत
पोश मास	:	पूर्णिमा व्रत, स्नान व मेला, मकर संक्रांति
माघ मास	:	सकट चौथ, मौनी अमावस्या, बंसत पंचमी, माघ पूर्णिमा मेला
फाल्गुन	:	महाशिवरात्रि व्रत व मेले, होलिका दहन आदि

भारतीय ग्रामीण जनता, जो दूर नगरों, गांव, वन, पर्वतों में निवास करती है, लोक संस्कृति की संरक्षक व प्रतिष्ठापक है।

लोक साहित्य में चूंकि लोक वार्ता एवं लोक संस्कृति का चित्रण रहता है और लोक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, इसी कारण लोक साहित्य के अध्ययन में अन्य समाज–विज्ञानों के अनुसंधानकर्ता अधिक रुचि लेते हैं। लोक साहित्य में इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, चित्रकला, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, नृतत्वविज्ञान, मानवविज्ञान आदि अनेक समाज–विज्ञानों के महत्वपूर्ण तथ्य मिल जाते हैं। इसलिए इन सभी समाज–विज्ञानों के अध्येताओं का लोक साहित्य से गहरा संबंध होता है। यहां तक कि प्रत्येक जनपद के लोक साहित्य में और वहां की लोक संस्कृति में प्राचीन परंपरा से चली आ रही चिकित्सा पद्धतियों, झाड़–फूंक, तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका आदि का समावेश रहता है, इस कारण चिकित्साशास्त्र से भी लोक साहित्य का घनिष्ठ संबंध होता है। भाषा विज्ञान और विशेषतया बोलीविज्ञान का संबंध चूंकि जनपदीय बोलियों से रहता है और लोक साहित्य तो शुद्ध रूप से लोक बोलियों में ही रचा जाता है, इस कारण बोलीविज्ञान के अध्येताओं को लोक साहित्य में प्रचुर अध्ययन–सामग्री उपलब्ध हो जाती है। यहां तक कि पाठालोचन जैसी अत्याधुनिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान–शाखा का भी लोक–साहित्य के साथ घनिष्ठ संबंध होता है।

यही कारण है कि ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन करने वाले शोधार्थियों को लोक साहित्य से पर्याप्त सहायता मिल जाती है। अतः लोक साहित्य अन्य समाज–विज्ञानों से बहुत निकट से जुड़ा हुआ है। मानव–समाज का अध्ययन करने वाले सभी समाज–विज्ञानों

के अध्ययन की प्रचुर सामग्री लोक साहित्य में उपलब्ध हो जाती है। अतः इनका परस्पर संबंध बहुत प्रगाढ़ माना जाएगा। इसलिए कुछ शास्त्रों, कलाओं या समाज–विज्ञानों से लोक साहित्य के संबंधों की विवेचना यहां करेंगे। इसका तात्पर्य यह भी है कि जिस प्रकार लोक साहित्य में अन्य समाज–विज्ञानों के अध्ययन के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो जाती है, उसी प्रकार लोक साहित्य के अध्येता को भी अन्य समाज–विज्ञानों का अध्ययन करने से अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों की प्राप्ति हो जाती है। अतः समाज–विज्ञानों के अनुसंधानकर्ताओं को लोक साहित्य का तथा लोक साहित्य के अध्येताओं को अन्य समाज–विज्ञानों का अध्ययन अपेक्षित है, जिससे अंतर्अनुशासनपरक अध्ययन किए जा सकें। वर्तमान में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी ऐसे तुलनात्मक अंतर अनुशासन पर आधारित शोध कार्यों एवं प्रोजेक्टों को पर्याप्त प्रोत्साहन दे रहा है।

लोक संस्कृति और लोक साहित्य में अंतर

लोक संस्कृति की परिधि का परिचय सोफिया बर्न के अनुसार इस प्रकार है–

1. लोक के रीति–रिवाजों के अंतर्गत संस्कार, अनुष्ठान, पर्व, व्रत, उत्सव, प्रथाएं, परंपराएं, त्योहार, मेले, आचार–विचार आदि आते हैं।
2. अंधविश्वास एवं मूढ़ाग्रहों के अंतर्गत तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका, दुआ–ताबीज, झाड़–फूंक, भूत–प्रेत, देवी–देवता, दाने–परियां, शकुनापशकुन, दिशाशूल, स्वप्न, भविष्यवाणी से संबंधित लोक–विश्वास आते हैं।

इस सबके अतिरिक्त लोक साहित्य को भी लोक संस्कृति के अंतर्गत समाविष्ट किया जाता है।

इसके ठीक विपरीत भारत के अनेक विद्वानों ने उक्त मत का खंडन किया है और वे लोक संस्कृति के अंग के रूप में लोक साहित्य को मानने को तैयार नहीं हैं। इसी प्रकार डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. श्याम परमार प्रभूति विद्वानों ने भी लोक साहित्य को अधिक व्यापक एवं विस्तृत बताया है और इसके बहुत से अंश को लोक संस्कृति शब्द की परिधि में अंतर्भुक्त करने में असमर्थता व्यक्त की है। डॉ. श्याम परमार का मत उद्धृत है–

जहां तक लोक संस्कृति और लोक साहित्य का संबंध है, लोक साहित्य का कुछ अंश ही उसके क्षेत्र में आता है। ऐसा साहित्य भी है जो उसके बाहर है। लोक संस्कृति में केवल वहीं लोक साहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परंपरा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है। अतः इस लोक संस्कृति का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं, जितना कि इनमें सुरक्षित उन परंपराओं का है, जो भू–विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं।

इसी प्रकार का एक अन्य मत है, प्रो. बलराज का, जिन्होंने लोक साहित्य को लोक संस्कृति का एक अंग मात्र मानने पर आपत्ति की है और इसी विचार के परिणामस्वरूप लोक संस्कृति को लोक साहित्य की अपेक्षा अधिक विशाल एवं व्यापक मानने के संबंध में विरोधी मत प्रकट किया है। उनका विचार है – यूरोप में फोक लिटरेचर को फोकलोर का एक अंग माना गया है। इस साम्य के आधार पर ही हिंदी में लोक साहित्य को लोक संस्कृति का

अंग कहने की प्रथा का सूत्रपात हुआ। लोक संस्कृति के तत्वों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पर्याप्त मात्रा में अवगत हो जाता है कि लोक साहित्य से बहुत मात्रा में साम्य होने पर भी व्यापकत्व तथा उद्देश्य की भिन्नता की दृष्टियों से इनमें भेद भी न्यून नहीं है। अतएव लोक साहित्य को लोक संस्कृति का अंग कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि लोक साहित्य का स्वतंत्र अस्तित्व है, अभिव्यक्ति के अध्ययन का लक्ष्य स्वतंत्र है और कसौटी भिन्न है। उनके पारस्परिक संबंध से प्रतीत हो जाता है कि एक–दूसरे का अंग नहीं वरन् इतिहास, पुरातत्व, समाज–शास्त्र आदि भी लोक संस्कृति के अंग माने जाने चाहिए।

इस संबंध में हमने संकेत भी किया है कि लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन करने वाली पुस्तकों में लोक संस्कृति पर विस्तार से चर्चा की गई है। वह भी सब अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर छाया मात्र रूप में। वास्तव में लोक संस्कृति और लोक साहित्य को पृथक्–पृथक् शास्त्र मानना चाहिए। लोक संस्कृति के अंतर्गत आने वाली विशेष बातों की अभिव्यक्ति लोक साहित्य में हो जाती है, यह बात अलग है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम लोक साहित्य को लोक संस्कृति का अंग न मानें और इसे स्वतंत्र शास्त्र मानकर इसका स्वतंत्र अध्ययन भी करें। तब इस रूप में चिंतन करने का प्रश्न ही नहीं उठता कि लोक साहित्य की परिधि की तुलना में लोक संस्कृति का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक एवं विशाल होता है।

1.6 लोक साहित्य की अध्ययन पद्धतियां

लोक साहित्य संकलन जितना कठिन है उतना ही चुनौतीपूर्ण उसका अध्ययन भी है, चूंकि लोक साहित्य में समाज के अनेक संदर्भ व आयाम प्रतिबिंबित होते हैं। विज्ञान से लेकर दर्शन तक, अर्थ से लेकर धर्म तक एक समाज की सामूहिक मानसिकता व परिस्थितियां लोक साहित्य में झलकती हैं। अतः लोक साहित्य के उसकी परिपूर्णता में अध्ययन का अर्थ है उस निश्चित समग्र की ऐतिहासिक जड़ों से लेकर उसके वर्तमान तक को भली–भांति समझना व परखना।

अतः स्पष्ट है कि लोक साहित्य के अध्ययन के लिए गुणात्मक व परिमाणात्मक दोनों प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है। परिमाणात्मक अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि एक ही गीत या कथा के अनेक रूप पाए जाते हैं और किसी को भी मौलिक रूप नहीं कहा जा सकता। लोक साहित्य लोगों में जन्मता है तथा एक गांव से दूसरे गांव तक पहुंचते–पहुंचते उसका रूप भी लोगों के अनुसार ही बदल जाता है। लोक साहित्य की सार्थकता उसकी विविधता और अनेकरूपता में निहित है। यह अपने ध्वनि विचार, शब्द रचना, रूप विन्यास और वाक्य तंत्र में बहुआयामी और बहुस्तरीय है।

चूंकि लोक साहित्य व लोक संस्कृति में प्रगाढ़ संबंध है अतः लोक साहित्य के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि हम एक समाज के तीज त्योहार, प्रार्थना, व्रत उपवास, लोक रीतियों आदि से भी परिचित हों। तभी हम लोक साहित्य को भली–भांति समझ पाएंगे। अतः यह और भी आवश्यक हो जाता है कि वृहद रूप से हम जितना संभव हो उतना लोक साहित्य संकलित कर सकें और उसका अध्ययन करें।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

11. लोक संस्कृति किसी क्षेत्र को स्वतंत्र........ प्रदान करती है।
12. जितने................व त्योहार भारत में मनाए जाते हैं उतने शायद किसी अन्य देश में नहीं मनाए जाते हैं।

सही/गलत बताइए–

13. प्रत्येक जनपद के लोक साहित्य में और वहां की लोक संस्कृति में प्राचीन परंपरा से चली आ रही चिकित्सा पद्धतियों, झाड़–फूंक, तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका आदि का समावेश रहता है, इस कारण चिकित्साशास्त्र से भी लोक साहित्य का घनिष्ठ संबंध होता है।

टिप्पणी

गुणात्मक विधि का पालन करके हम लोकगीतों/कथाओं में पाए जाने वाले सामान्य तत्वों की पहचान कर उसको समझने का प्रयास करते हैं। यथा, हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल से 150 वर्ष पूर्व नाथ और सिद्ध कवियों ने लोक बोलियों और मिली–जुली संपर्क भाषा में लोक संस्कृति मूलक काव्य की रचना की। लोक संस्कृति मूलक मुक्तक काव्य होने के कारण नाथ और सिद्धों की कविताएं जनता की कविताएं बन गईं। इसी प्रकार भक्ति कालीन संत कवियों की रचनाएं भी हमारे समाज के लिए उत्प्रेरक और प्रोत्साहक रही हैं।

कबीर, सूर, तुलसी, रहीम, मूलक दास आदि की रचनाओं की भाषा जनभाषा है। आज वे न केवल उत्कृष्ट साहित्य का अभिन्न अंग हैं बल्कि उनकी रचनाओं के अनेक अंश हिंदी लोकोक्तियों में भी शामिल हो गए हैं। 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होए' या 'होइए वही जो राम रचि राखा' या 'जय जगदीश हरे' (जो किसी भी हिंदू धार्मिक रीति की अभिन्न प्रार्थना है), एवं अन्य अनेक लोकोक्तियां/प्रार्थनाएं व गीत भक्तिकालीन संतों की ही देन हैं। हम संत कवियों की 'सधुक्कड़ी' अथवा 'खिचड़ी' भाषा का अर्थ तब तक नहीं समझ पाएंगे, जब तक हम ब्रज और अवधी के लोक साहित्य का परिभाषात्मक व गुणात्मक, दोनों प्रकार का अध्ययन न करें।

फिर, लोक साहित्य के अध्ययन हेतु यह भी आवश्यक है कि हम समाज विशेष की भौगोलिक, आर्थिक, ऐतिहासिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि से भी परिचित हों। अमेरिका के कन्ट्री सांग्स, ब्लूज़ व जैज़ गीतों को समझने के लिए उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अवगत होना आवश्यक है। बॉब डिलन, जॉन डेन्वर, लुई आर्मस्ट्रांग, सुज़ रोटोलो, पीट सीगर जैसे गायकों ने लोक गीतों को एक नया रूप देकर प्रस्तुत किया जो तत्कालीन समाज में प्रासंगिक थे और आज भी हैं। बंगाल के लोक गीत बाडल, भटियारी, संथाली इत्यादि भी समाज विशेष की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करते हैं। अतः लोक साहित्य का अध्ययन केवल वर्तमान साहित्य अथवा भाषा पर ही प्रकाश नहीं डालता बल्कि वह इतिहास, भूगोल व समाज की गति तथा परिवर्तनशीलता को भी समाहित करता है।

लोक साहित्य एक विशाल व तरल क्षेत्र है जिसका विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जा सकता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है मानव विज्ञान। यह जनता की भाषा में लिखित साहित्य भी है और इससे समाज विशेष के राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिप्रेक्ष्य का भी ज्ञान होता है। अतः अध्ययन से पूर्व हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि हम किस दृष्टि से लोक साहित्य का अध्ययन करना चाहते हैं, तभी हमारा अध्ययन सफल होगा और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकेगा।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

14. लोक साहित्य संकलन जितना कठिन है उतना ही ....उसका अध्ययन है।

सही/गलत बताइए–

15. कबीर, सूर, तुलसी, रहीम, मूलकदास आदि की रचनाओं की भाषा जनभाषा है।

1.7 लोक साहित्य के संग्रह की आवश्यकता

लोक जीवन में लोक साहित्य की परंपरा केवल मन बहलाव, मनोरंजन अथवा समय बिताने का साधन नहीं है; इसमें लोक–जीवन के सुख–दुख, रहन–सहन, संस्कृति, लोक–व्यवहार, तीज–त्योहार, खेती–किसानी आदि की मार्मिक और निःश्छल अभिव्यक्ति होती है। इसमें प्रकृति के रहस्यों के प्रति लोक की अवधारणा और उस पर विजय प्राप्त करने के लिए

उसके सहज संघर्षों का विवरण; नीति–अनीति का अनुभवजन्य तथ्यपरक अन्वेषण और लोक–ज्ञान का अक्षय कोश निहित होता है। लोक–साहित्य में लोक–स्वप्न, लोक–इच्छा और लोक–आकांक्षा की स्पष्ट झलक होती है। नीति, शिक्षा और ज्ञान से संपृक्त लोक साहित्य लोक शिक्षण की पाठशाला भी होती है। यह श्रमजीवी समाज के लिए शोषण ओर श्रम–जन्य पीड़ाओं के परिहार का साधन है। यह लिंग, वर्ग और जाति की पृष्ठभूमि पर अनीतिपूर्वक रची गई सामाजिक संरचना की अमानुषिक परंपरा के दंश को अभिव्यक्त करने की, इस परंपरा के मूल में निहित अन्याय के प्रति विरोध जताने की शिष्ट और सामूहिक लोकविधि भी है। जीवन यदि दुख, पीड़ा और संघर्षों से भरा हुआ है तो लोक साहित्य इन दुखों, पीड़ाओं और संघर्षों के बीच सुख का, उल्लास का और खुशियों का क्षणिक संसार रचने का सामूहिक उपक्रम है। लोक साहित्य सुकोमल मानवीय भावनाओं की अलिखित मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है।

अपने पूर्वजों द्वारा संचित धन–संपत्ति और जमीन–जायदाद को, जोकि धूप–छांव की तरह आनी–जानी होती है, हम सहज ही स्वस्फूर्त और यत्नपूर्वक सहजेकर रखते हैं। लोककथाओं सहित संपूर्ण लोक साहित्य भी हमारे पूवर्जों द्वारा संचित; ज्ञान, नीति और दर्शन का अनमोल और अक्षय–कोश है जिसे संग्रह करना आवश्यक है ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियां मानव सभ्यता, पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों, ऐतिहासिक लोक नायकों, संस्कृति, लोक व्यवहार, तीज–त्योहार, खेती–किसानी आदि विभिन्न पहलुओं से अवगत हो सके और अपनी ज्ञान वृद्धि कर सके।

लोक साहित्य ही वास्तव में हमें हमारी विरासत और परंपरा से जोड़ता है। यह हमारी व्यक्तिगत सामाजिक पहचान एवं अस्तित्व का अभिन्न अंग है। इस उपभोक्तावादी युग में जब रिश्तों का ग्राफ भी बाजार की ताकत तय करने लगी है, तब लोक साहित्य के संग्रह और संरक्षण की आवश्यकता पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गई है।

1.7.1 लोक साहित्य के संग्रह का इतिहास

लोक साहित्य के अध्ययन की शृंखला की आदिम कड़ी के रूप में हम उन अंग्रेज अधिकारियों तक जाते हैं जो भारत में आकर यहां प्रशासनिक कार्य के साथ ही साथ लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य के संग्राहक एवं आलोचक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहे। इनके अतिरिक्त ईसाई धर्म प्रचारार्थ आए अनेक धर्मोपदेशकों ने भारत के विभिन्न जनपदों में अपने धर्म प्रचार के उद्देश्य से प्रेरित होकर उनकी बोली एवं लोक संस्कृति और साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर उसे प्रकाशित भी किया। इस प्रकार भारतवर्ष में लोक साहित्य के अध्ययन का प्रारंभ अंग्रेजों के हाथों किया गया। इसका मूल कारण यही प्रतीत है कि यूरोप में समाजशास्त्र, नृ–विज्ञान एवं पुरातत्त्व आदि का अध्ययन करते समय लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य के अध्ययन की ओर पर्याप्त रुचि विद्यमान थी और उस वातावरण में शिक्षा प्राप्त करके आए हुए अंग्रेज अधिकारियों की रुचि यहां की बोलियों, रीति–रिवाजों, मेलों, त्योहारों, लोक साहित्य के विविध रूपों के ज्ञानार्जन की ओर प्रवृत्त हुई। इस प्रयत्न का परिचय देने के लिए कालक्रमानुसार निम्न महत्वपूर्ण विद्वानों और उनके कार्यों का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है।

1829 ई. – कर्नल टॉड द्वारा भारतीय लोक संस्कृति के संकलन एवं प्रकाशन के शुभ कार्य का श्रीगणेश किया गया। उनका 'एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ भी प्रकाशित हुआ, जिसे विद्वान लेखक ने राजस्थान की लोकगाथओं के आधार पर संपादित एवं संकलित किया। राजस्थानी लोक संस्कृति के क्षेत्र में यह मील का पत्थर है।

1854 ई. – रॉय एशियाटिक सोसाइटी के मुखपत्र में श्री जे. एबट नामक विद्वान का एक लेख पंजाब की वीर–गाथाओं का परिचय प्रस्तुत करता है।

1866 ई.– सर रिचर्ड टैम्पुल नामक विद्वान ने मध्य प्रदेश की जंगली जातियों की लोकवार्ता एवं लोक साहित्य को संकलित कर प्रकाशित कराया।

1868 ई. – मिस फ्रेजर द्वारा दक्षिण भारत की लोक–कहानियों का एक संग्रह 'ओल्ड डेकन डेज्' नाम से लिखा गया।

1871 ई. – चार्ल्स ई. ग्रोवर का 'फ्रॉम सांग्स ऑफ सदर्न इंडिया' नामक ग्रंथ, भारतीय लोकगीतों का सर्वप्रथम संग्रह कहा जा सकता है। कन्नड़, कुर्ग, तमिल, कूरल, मलयालम तथा तेलुगु आदि जनपदीय बोलियों के लोकगीतों के संग्रह के साथ अंग्रेजी में उनके अनुवाद का कार्य किया गया, जो इस दिशा में किया गया सार्थक प्रयत्न ही कहा जाएगा।

1872 ई.– डाल्टन का एक ग्रंथ 'डिस्क्रिप्टिव एथ्नॉलॉजी ऑफ बंगाल' बंगाल की लोक संस्कृति का विस्तृत परिचय देता है।

1872 ई. – में ही आर.सी. कपवेल ने 'इंडियन एंटिक्वैरी' नामक पत्रिका में एक निबंध लिखा, जिसका शीर्षक था – तामिल पॉपूलर पोइट्री।

1876 ई. – एफ.टी. कॉल ने इसी पत्रिका में एक निबंध प्रकाशित कराया, जिसका विषय था – द राजमहल हिलमैन्स सांग्स।

इसी वर्ष जी.एच. दामंत ने बंगाली लोककथाओं का एक संग्रह बंगाली 'फोकलोर ऑफ दीनाजपुर' शीर्षक से प्रकाशित कराया और इसी व्यक्ति ने 1879 ई. तक निरंतर 'इंडियन एण्टिक्वैरी' नामक पत्रिका में लोक साहित्य पर अनेक निबंध लिखकर लोक साहित्य को प्रकाश में लाने का शुभ कार्य किया।

1882 ई.– श्रीतारूदत का 'एंशिएण्ट बैलाड्स एंड लीजेन्ड्स ऑफ हिंदुस्तान' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ।

1883 ई. – लाल बिहारी डे ने बंगाली लोककथाओं का सर्वप्रथम संग्रह 'फोक टेल्स ऑफ बंगाल' नाम से प्रकाशित किया। इसी बंगाली विद्वान लेखक ने आगे चलकर 'बंगाल पीजेन्ट लाइफ' नामक ग्रंथ भी लिखा, जिसमें बंगाल के कृषि जीवन का परिचय प्रस्तुत किया गया।

1884 ई.– सर आर.सी. टैम्पुल ने पंजाब की लोककथाओं का प्रथम प्रयास 'लीजेन्ड्स ऑफ पंजाब' नाम से प्रकाशित कराया, जिसमें छः वर्गों (साइकिल्स) में प्राप्त पंजाबी लोकगाथाओं का विस्तृत परिचय दिया गया है।

टिप्पणी

1885 ई. – नटेश शास्त्री द्वारा लिखित 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' नामक ग्रंथ प्रकाश में आया। इसी वर्ष ई.जे. रॉबिन्सन ने दक्षिण भारत के लोकगीतों एवं लोककथाओं का सम्मिलित संग्रह 'टेल्स एण्ड पोइम्स ऑफ साउथ इंडिया' नाम से प्रकाशित कराया। इसकी विशेषता यह भी थी कि साथ में अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया था। इसी वर्ष सर जी.ए. ग्रियर्सन ने इंडियन इन्टिक्वैरी में एक लेख 'द सांग्स ऑफ आल्हाज मैरिज' शीर्षक से लिखा।

1886 ई. – सर ग्रियर्सन ने भोजपुरी जनपद के बिरहा, जैतसार और सोहर नामक लोकगीतों का संकलन 'सम भोजपुरी फोक सांग्स' नाम से प्रकाशित किया। इसमें लोकगीतों के मूलपाठ के साथ अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है। इसी लेखक का अन्य प्रयास है 'बिहार पीजेंट लाइफ' जो भारतीय लोक संस्कृति क्षेत्र का मील का पत्थर कहा जाता है।

1891 ई.– विलियम कुक ने एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जिसने पांच–छः वर्ष तक अनेक निबंध प्रकाशित किए गए, जो लोक साहित्य का परिचय प्रस्तुत करते थे। इस पत्रिका का नाम था – नॉर्थ इंडियन नोट्स एण्ड कवैरीज।

1896 ई. में इसी लेखनी से प्रसूत 'पॉपूलर रिलीजन एण्ड फोकलोर ऑफ नादर्न इंडिया' तथा 'कास्ट्स एण्ड ट्राइब्ज ऑफ नॉर्थ–वैस्ट प्रॉविन्सेज' नामक पुस्तक प्रकाश में आई।

1899 ई. में आर.एम. लॉकरनैस ने 'इंडियन एन्टिक्वैरी' नामक पत्रिका में पुर्तगाली द्वीप–समूहों के कुछ लोकगीतों का परिचय देने वाला एक निबंध लिखा।

1905 ई. में एफ. हॉन ने उर्राव लोगों के 290 लोकगीतों का एक संग्रह 'फोकलोर इन ओरीजीनल' नामक प्रकाशित कराया।

1906 ई. में ई. थस्टन ने 'एथ्नोग्राफिक नोट्स इन सदर्न इंडिया' नामक पुस्तक प्रकाशित करायी। इसी लेखनी से निःसृत 1909 ई. में 'कास्ट्स एण्ड ट्राइब्स ऑफ सदर्न इंडिया' नामक दूसरी तथा 1912 ई. में 'ऑमन्स एंड सुपरस्टीशन्स ऑफ सदर्न इंडिया' नामक तीसरी पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें अंधविश्वासों, रूढ़ियों एवं जादू टोनों का विस्तृत परिचय दिया गया है।

1907 ई. – डब्ल्यू.टी. डेम्स ने वीरगाथाओं, प्रेमगीतों एवं पहेलियों का संग्रह 'पॉपूलर पोइट्री ऑफ बिल्लोचीज' शीर्षक से प्रकाशित कराया।

इस प्रकार 1920 ई. तक जितने संग्रह एवं व्याख्याएं प्रकाशित हुईं, वे सब प्रायः अंग्रेज विद्वानों द्वारा ही संगृहीत थीं। किंतु इसके बाद बंगाल में दिनेश चंद्र सेन, बिहार में शरदचंद्र राय, उत्तर प्रदेश में रामनरेश त्रिपाठी और गुजरात में झबेरचंद्र मेघाणी ने अपने–अपने जनपदों के लोक संस्कृति साहित्य को प्रकाशित कराने का भागीरथ प्रयत्न किया। डॉ. दिनेश चंद्र सेन ने 1923 ई. से 1932 ई. के बीच चार भागों में ईस्टर्न बंगाली बैलड्स नाम से लोकगाथाओं का प्रकाशन किया। इन्होंने ही 1920 ई. में अपने भाषणों का एक संग्रह 'फोक लिटरेचर ऑफ बंगाल' नाम से दिया। बिहार के श्री शरतचंद्र राय ने 'मैन इन इंडिया' नामक पत्रिका निकाली, 1925 ई. में 'द बिरहाज', 1928 ई. में 'ओरॉय

रिलीजन एंड कस्टम्स', 1936 ई. में 'द भुइयांज ऑफ ओरीसा' और 1937 ई. में 'खारीज' नामक ग्रंथों का प्रणयन किया। श्री झबेरचंद मेघाणी ने गुजरात के लोकगीतों को 4 भागों में 'रूढ़ियाली राते' शीर्षक से प्रकाशित कराया– (1925 से 1942 के बीच), चूंदड़ी दो भागों में (1928–29), सोर की गीत–कथाएं (1931), लोक साहित्य समालोचन (1939 ई.) जैसे अमूल्य ग्रंथ दिए।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के अन्त में लोक साहित्य के संग्रह के कार्य का श्रीगणेश श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा किया गया। उनका 1929 ई. में कविता कौमुदी (भाग 5) प्रकाश में आया, जिसमें उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बिहार के लोकगीत संगृहीत थे। त्रिपाठी की एक अन्य पुस्तक 'हमारा ग्राम–साहित्य' नाम से प्रकाशित हुई, जिसमें लोकक्तियों का संग्रह संकलन समाविष्ट है।

1.7.2 लोक साहित्य की उपयोगिता

लोक साहित्य विभिन्न विषयों के अध्ययन एवं समाज के स्वरूप को जानने–समझने में भी उपयोगी सिद्ध होता है।

धर्मशास्त्र धार्मिक गाथाओं का शास्त्र है। हमारे महान संतों ने धर्म के विषय में जो भी ज्ञान उपलब्ध कराया है– धर्मशास्त्र उसका भंडार है। हमारे ऋषियों की अमृतवाणी इसमें समाहित है। धर्मशास्त्रों ने हमें और हमारे समाज का सदैव दिशा–दर्शन किया है, किंतु यह विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि प्रत्येक धर्म के मूल में लोक–विश्वास निहित रहते हैं और लोक विश्वास ही लोक साहित्य के भी मूलाधार हैं।

पुराण कथाएं जो धार्मिक संस्कार प्रदान करती हैं उसका मूल लोक परंपरा एवं लोक विश्वास, लोक मान्यताओं, व्रतों, त्योहारों, उत्सवों, मेलों पर आधारित होता है। विभिन्न देवी–देवताओं, पितरों की पूजा–उपासना का धर्म के साथ सीधा संबंध होता है और चूंकि लोक साहित्य में भी लोक संस्कृति का चित्रण रहता है, इसलिए धार्मिक विश्वासों, पूजा–उपासना पद्धतियों के उल्लेख लोक साहित्य के अभिन्न अंग हैं। इसी कारण लोक साहित्य में धर्मशास्त्र के अध्येता को अनेक दुर्लभ तथ्य मिल जाते हैं। इसी प्रकार लोक साहित्य के विद्यार्थी या शोधकर्ता को भी धर्मशास्त्रों की सहायता से अनेक समस्याओं के निराकरण का अवसर मिल जाता है। लोक साहित्य और धर्मशास्त्र का घनिष्ठ संबंध है। लोक साहित्य का संग्रह कर धर्मशास्त्र के स्वरूप को समझने में आसानी होती है। डॉ. उप्रैती ने कहा है कि – "लोक संस्कृति का धर्मतत्व से घनिष्ठ संबंध है। लोक संस्कृति के प्रमुख लोक तत्व–एनीमिज्म, एन्सेस्टर वरशिप तथा मैजिक आदि आदिम मूल विश्वास धर्म की भी मूल प्रवृत्तियां हैं। लोक संस्कृति द्वारा ही धर्म को सरलता से समझा जा सकता है।"

प्रागैतिहासिक काल और उससे भी पुराने आदिम युगीन जीवन और संस्कृति के संकेत लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति में भी निहित रहते हैं। इसलिए पुरातत्वविद् जो कार्य उत्खनन द्वारा करते हैं, वहीं कार्य लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य का गहन अध्ययन करके भी किया जा सकता है। लोक साहित्य की कथाएं, गाथाएं जिन तथ्यों को अपने में समाहित किए हुए हैं, उनको आधार मानकर पुरातत्ववेता अनुसंधान कार्य करते हैं और अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्षों तक पहुंचते हैं। अतः लोक साहित्य पर पुरातत्ववेत्ता को भी

निर्भर रहना पड़ता है। लोक साहित्य में अनेक तथ्यों, घटनाओं एवं मानव–संस्कृति–विषयक तथ्यों की पुष्टि करने हेतु पुरातात्विक विज्ञान अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन करता है। इस प्रकार के माध्यम में लोक साहित्य संग्रहण महती भूमिका निभाता है।

लोक साहित्य के अध्ययन से भाषा वैज्ञानिकों को भी मदद मिलती है। लोक साहित्य का अध्ययन करके भाषा–वैज्ञानिक को किसी जनपद की भाषा या बोली का भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए सबसे प्रामाणिक आधार प्राप्त हो जाता है। भाषा विज्ञान की एक शाखा है – बोली विज्ञान। इस बोली विज्ञान के अध्ययन के लिए तो लोक साहित्य सामग्री का भंडार ही जुटा देती है। बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले शोधार्थी को यत्र–तत्र भटकना नहीं पड़ता और न अधिक क्षेत्रीय कार्य की ही आवश्यकता शेष रहती है। लोक बोली में प्रयुक्त अनेक शब्दों की नियुक्ति का पता लगाने पर भाषा–विज्ञान विषयक अनेक समस्याओं का हल खोजा जा सकता है। लोक बोली में प्रयुक्त हजारों अर्थवान अभिव्यक्तियों, क्रियाओं, पारिभाषिक शब्दों, कहावतों, मुहावरों आदि से भाषा का भंडार समृद्ध किया जा सकता है। भाषा के अतीतकाल तक जाने के लिए लोक बोलियों में प्रचुर सामग्री मिल जाती है। अतः भाषा विज्ञान के लिए लोक साहित्य की उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

लोक साहित्य समाजशास्त्रियों के लिए भी उपयोगी है, इसमें ऐसी प्रचुर सामग्री प्राप्त हो जाती है, जिसे समाजशास्त्री अपने अध्ययन के लिए उपयोगी पाते हैं। अनेक जंगली, असभ्य, पर्वतीय एवं आदिम जातियों के जीवन के विविध पक्षों के परिचय के आधार प्रायः लोक साहित्य ही रहा है।

प्राचीन प्रथाओं, परंपराओं, सामाजिक संगठन आदि से संबंधित अपेक्षित विवरण वस्तुतः लोक साहित्य से ही प्राप्त होता है। किस समय, किस जाति या देश के निवासियों का सामाजिक आचरण कैसा रहा होगा, इसका ज्ञान प्रदान करने का कार्य लोक साहित्य ही करता है। व्रत, त्योहार, अनुष्ठान, संस्कार, रीति रिवाज आदि की जानकारी हमें लोक साहित्य ही से प्राप्त होती है। यह कथन सर्वथा सत्य है कि "वेद मंत्रों के अभाव में भांवरें पड़ सकती हैं, परंतु लोकगीतों के बिना नहीं।"

लोकगीतों, गाथाओं और कथाओं में समाज के रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान और रीति–रिवाजों का सच्चा चित्र देखने को मिलता है और समाज शास्त्र में इन सभी का अध्ययन किया जाता है।

इसके अलावा शिष्ट साहित्य के निर्माण में भी लोक साहित्य उपयोगी सिद्ध होता है। लोक कथाएं, लोकगीत, लोकगाथा आदि क्रमशः शिष्ट साहित्य में कला साहित्य, काव्य एवं महाकाव्य की सर्जना के प्रेरक एवं कारणभूत बन जाते हैं। रामायण एवं महाभारत जैसे ग्रंथों के बीज हमको लोकवार्ता में ही उपलब्ध होते हैं। अतः शिष्ट साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों का परिचय हमको लोक साहित्य की प्रवृत्तियों के संदर्भ में प्राप्त हो सकता है। इतना ही नहीं, लोक साहित्य की अनेक सहज, मार्मिक, प्रभावी उक्तियों एवं अभिव्यंजना पद्धतियों द्वारा शिष्ट साहित्य की यही उपयोगिता कही जा सकती है। इस प्रकार शिष्ट साहित्य के संबंध में इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि लोक साहित्य का संग्रह कई विषयों के अध्ययन और समाज के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

16. 1883 ई. में लाल बिहारी डे ने बंगाली लोककथाओं का सर्वप्रथम संग्रह........ नाम से प्रकाशित किया।
17. विलियम कुक ने नॉर्थ इंडियन नोट्स एंड कवैरीज नामक पत्रिका का प्रकाशन ....ई. में प्रारंभ किया था।
18. नीति, शिक्षा और छोटे ज्ञान से संपृक्त लोक साहित्य लोक शिक्षण की............. भी होती है।

सही/गलत बताइए–

19. दक्षिण भारत की लोक कहानियों के एक संग्रह 'ओल्ड डेकन डेज' के लेखक जी.एच. दामंत हैं।
20. 1920 ई. तक जितने संग्रह एवं व्याख्याएं प्रकाशित हुईं, वे सब प्रायः अंग्रेज विद्वानों द्वारा ही संगृहीत थीं।
21. लोक साहित्य सुकोमल मानवीय भावनाओं की अलिखित मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है।

1.8 लोक साहित्य के अध्ययन की चुनौतियां

टिप्पणी

लोक साहित्य के अध्ययन की चुनौतियां इस प्रकार हैं–

1. किसी भी क्षेत्र के लोक साहित्य और लोक संस्कृति के अध्ययन के लिए एक व्यक्ति के स्थान पर एक टीम का गठन करना पड़ता है जिसमें लोक संस्कृति के विविध अंगों की सामग्री एकत्र करने वाले पृथक–पृथक व्यक्ति हों। उस क्षेत्र के लोगों से किए जाने वाले वार्तालाप, निवेदन करने पर उनके द्वारा सुनाए जाने वाले लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक गाथाओं का संग्रह करने हेतु टेपरिकार्डर और उस क्षेत्र की तस्वीरें लेने के लिए फोटोग्राफर का भी टीम में होना अनिवार्य है। कुल मिलाकर यह एक खर्चीला कार्य है जिसके लिए धनराशि का प्रबंध करना एक चुनौती है।

2. टीम के सदस्य भी वही व्यक्ति होने चाहिए जो उस क्षेत्र की भाषा, भूगोल, इतिहास एवं संस्कृति से पूर्णतया परिचित हों। वे पढे–लिखे हों और जिन्हें लोक संस्कृति की विभिन्न प्रकार की सामग्री के वर्गीकरण का ज्ञान हो, जो क्षेत्रीय लोगों से जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्नमाला की तैयारी कर सकें। ऐसे लोगों की खोज करना और उपरोक्त कहे गए गुण उनमें हैं या नहीं, इसकी परख करना एक चुनौती भरा कार्य है।

3. लोक संस्कृति, नृतत्वविज्ञान, पुरातत्व, लोक साहित्य और उसकी विभिन्न विधाओं से संबंधित सामग्री का पृथक–पृथक संग्रह करना चुनौती भरा काम है।

4. उस क्षेत्र के लोगों से वहां की लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य के बारे में सही जानकारी निकलवाना, वहां के लोगों के धार्मिक अनुष्ठानों, अंधविश्वासों, आभूषणों, लोक दस्तकारी आदि से संबद्ध जानकारी का विवरण तैयार करना चुनौती भरा कार्य है। हो सकता है एक ही क्षेत्र के लोगों द्वारा बताई गई बातों में भिन्नता हो, ऐसी स्थिति में किसकी बात को सही माना जाए यह निर्णय करना भी एक बड़ी चुनौती है।

5. किसी भी क्षेत्र के लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के अध्ययन हेतु बनाई गई टीम के सदस्यों की लोक साहित्य में रुचि होना, लोक साहित्य को संग्रह करने की कुशलता, त्वरित लेखन का गुण होना आवश्यक है। इनके अलावा उन सदस्यों का होना भी अनिवार्य है जिन्हें टेप रिकार्डर के प्रयोग का सही ज्ञान हो, अंतर्राष्ट्रीय ध्वनि वैज्ञानिक वर्णमाला का ज्ञान हो, अंतर्राष्ट्रीय नृत्य रूपों का ज्ञान हो और उन्हें भारतीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय संगीत स्वर–लिपि का ज्ञान होना अनिवार्य है।

6. किसी क्षेत्र के लोकगीतकारों के बस्तों से लोक गीतों को निकालने का कार्य इतना आसान नहीं जितना कि हम समझते हैं। लोकगीतकार के द्वारा आपका सहयोग न किए जाने पर उस क्षेत्र के लोकगीतों को कैसे प्राप्त किया जाए यह भी एक चुनौती भरा कार्य है।

टिप्पणी

7. यह कार्य एक ही दिन में पूर्ण होने वाला नहीं होता। आपको उस क्षेत्र की गंदी बस्तियों में जाना पड़ सकता है जहां रहने वाले स्वयं गंदे और बदबूदार कपड़े पहने रहते हैं। ऐसे में अपने–आप को उस वातावरण में ढाल पाना भी एक चुनौती है ताकि आप उस क्षेत्र के लोगों से वह सभी जानकारी प्राप्त कर सकें जिसे आप प्राप्त करना चाहते हैं।

8. हो सकता है, उस क्षेत्र के लोग अपरिचित लोगों की टोली को अपने बीच पाकर किसी अनिष्ट के भय के कारण आपके द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों का उत्तर न दें। ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि आप उनको अपने वहां जाने के उद्देश्य के बारे में बताकर उन्हें जानकारी देने के लिए राजी कर लेंगे। ऐसी दुविधा की स्थिति से निपट पाना भी एक चुनौती है।

9. यदि उस क्षेत्र के लोग अपनी लोक संस्कृति के विषय में अधूरी जानकारी रखते हैं तो वे आपको अधूरी जानकारी ही देंगे। ऐसी स्थिति में आपको उस क्षेत्र के किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करनी होगी जिसे वहां की लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य की पूर्ण और सही जानकारी हो। ऐसे व्यक्ति को खोज निकालना एक चुनौती भरा कार्य है।

ऊपर ऐसी चुनौतियों का वर्णन किया गया है, जिनका सामना लोक साहित्य–संग्राहक एवं अध्ययनकर्ता को करना ही पड़ता है। फिर इस प्रकार के संग्रह–संकलन पर आधारित अध्ययन के उपरान्त एक सबसे बड़ी चुनौती रहती है कि शीघ्र प्रबंध तो लिख जाता है किंतु ऐसे संग्रहों को प्रकाशित करने वाले प्रकाशक नहीं मिलते। इस संबंध में कुछ विद्वानों ने यह चिंता व्यक्त की है कि ऐसे संग्रह प्रकाशित नहीं हो पाते। भारत में समस्या यह है कि प्रकाशक तो इस संग्रह–संकलन प्रकाशन में इसलिए पैसा खपाना नहीं चाहता कि उसे उससे कुछ लाभ होने की सम्भावना नहीं रहती। ऐसी स्थिति में सरकारी या अर्द्ध सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि वह ऐसे संग्रह–संकलनों को प्रकाशित कराएं। हिंदी जगत् में ऐसे लोकगीतों, लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकनाट्यों या प्रकीर्ण साहित्य के संग्रह इसीलिए प्रकाश में नहीं आ पाए हैं। जहां कहीं ऐसे संग्रह प्रकाशित भी हुए हैं, वे या तो ऐसी संस्थाओं द्वारा ही प्रकाशित हुए हैं या संग्राहक व अध्ययनकर्ता के व्यक्तिगत प्रयास के कारण, अन्यथा अनेक अनुसंधानकर्ताओं के पास इस प्रकार के संग्रह होते हैं और प्रकाशक न मिल पाने के अभाव में प्रकाश में नहीं आ पाते। आवश्यकता इस बात की है कि व्यवस्थित ढंग से कुछ सरकारी केंद्रीय संगठनों द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाए। भारत में ही ऐसा नहीं है। विदेशों में तो ऐसे अनेक संगठन अमेरिका, इंग्लैंड इत्यादि में हैं जो व्यवस्थित ढंग से संगृहीत लोक साहित्य की सामग्री को प्रकाशित कराते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

22. किसी क्षेत्र के लोक साहित्य के अध्ययन हेतु बनाई गई टीम के सदस्यों की लोक साहित्य में............ होना आवश्यक है।

सही/गलत बताइए–

23. किसी क्षेत्र के लोकगीतकारों के बस्तों से लोकगीतों को निकालने का कार्य इतना आसान नहीं जितना कि हम समझते हैं।

गतिविधि

लोक साहित्य के विद्वान डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के बारे में जानकारी प्राप्त करें और उनके जीवन–परिचय पर एक संक्षिप्त निबंध लिखें। इसके लिए इंटरनेट की सहायता भी ले सकते हैं।

टिप्पणी

क्या आप जानते हैं?

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के अंत में लोक साहित्य के संग्रह के कार्य का श्रीगणेश श्री रामनरेश त्रिपाठी द्वारा किया गया।

1.9 सारांश

भारतीय साहित्य में 'लोक' शब्द बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता चला आ रहा है। 'लोक' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'लोकृ दर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। 'लोकृ दर्शने' धातु का अर्थ है 'देखना'। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ – 'देखने वाला'। परंतु व्यवहार में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'संपूर्ण जनमानस' के लिए होता है।

साहित्य के क्षेत्र में दो शब्द प्रचलित हैं– शिष्ट साहित्य तथा लोक साहित्य। लोक साहित्य लोकसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा लोकगीत, लोककथाएं, लोकगाथाएं, कथागीत, धर्मगाथाएं, लोकनाट्य, नौटंकी, रामलीला आदि लोक साहित्य से संबद्ध विषय हैं। शिष्ट साहित्य अथवा परिनिष्ठित साहित्य निश्चित रूप से लिखित साहित्य होता है, जबकि लोक साहित्य अलिखित एवं लिखित दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। वैसे तो लोक साहित्य सामान्यत मौखिक ही रहा है तथा वह मौखिक परंपरा द्वारा ही अनवरत चलता रहता है, परंतु अब शिक्षा एवं छपाई के प्रचार–प्रसार के कारण लोक साहित्य के रूप में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। आज का लोक कवि जो भी नये साहित्य की रचना करता है, वह सब लिपिबद्ध या लिखित होता है। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य के संकलन एवं संग्रह तथा शोध में प्रगति होने के फलस्वरूप बहुत–सा लोक साहित्य लिपिबद्ध किया जा रहा है तथा उसको ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया जाने लगा है।

लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। लोक साहित्य के विद्वानों का मत है कि जहां–जहां लोक है, वहीं–वहीं लोक साहित्य भी उपलब्ध होता है। आदिम जीवन का तो लोक साहित्य से घनिष्ठ संबंध है। यदि यह कहा जाए कि आदिम जीवन लोक साहित्य का संस्कार–विधाता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोक जीवन का प्रत्येक क्षण लोक साहित्य से किसी न किसी प्रकार संबद्ध रहता है। जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बहुआयामी है, उसी प्रकार लोक साहित्य का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है।

लोक संस्कृति से आशय किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारंपरिक रीति–रिवाजों, त्योहारों, मान्यताओं और काल आदि से है। यह किसी क्षेत्र की स्वतंत्र पहचान प्रदान करती है। भारत की लोक संस्कृति में विभिन्न प्रकार के व्रत, त्योहार, पर्व, मेले का महत्व है। जितने पर्व व त्योहार भारत में मनाए जाते हैं उतने शायद किसी अन्य देश में नहीं मनाए जाते हैं।

लोक साहित्य में चूंकि लोक वार्ता एवं लोक संस्कृति का चित्रण रहता है और लोक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया जाता है, इसी कारण लोक साहित्य के अध्ययन में अन्य समाज–विज्ञानों के अनुसंधानकर्ता अधिक रुचि लेते हैं। लोक साहित्य में इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, चित्रकला, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, नृतत्वविज्ञान,

मानवविज्ञान आदि अनेक समाज–विज्ञानों के महत्वपूर्ण तथ्य मिल जाते हैं। इसलिए इन सभी समाज–विज्ञानों के अध्येताओं का लोक साहित्य से गहरा संबंध होता है। यहां तक कि प्रत्येक जनपद के लोक साहित्य में और वहां की लोकसंस्कृति में प्राचीन परंपरा से चली आ रही चिकित्सा पद्धतियों, झाड़–फूंक, तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका आदि का समावेश रहता है, इस कारण चिकित्साशास्त्र से भी लोक साहित्य का घनिष्ठ संबंध होता है। जहां तक लोक संस्कृति और लोक साहित्य का संबंध है, लोक साहित्य का कुछ अंश ही उसके क्षेत्र में आता है। ऐसा साहित्य भी है जो उसके बाहर है। लोक संस्कृति में केवल वहीं लोक साहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परंपरा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है।

किसी क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन करने के लिए लोक साहित्य को भी आधार बनाया जा सकता है। अनेक नगरों, नदियों, प्रदेशों, जनपदों आदि का वर्णन लोक साहित्य में उपलब्ध होता है। इस जानकारी को आधार बनाकर भूगोल के क्षेत्र में अनेक शोध कार्यों का मार्ग प्रशस्त होता है। लोक साहित्य में अनेक प्रकार की ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश रहता है। अतीतकाल की अनेक ऐतिहासिक महत्व की घटनाएं लोक गीतों में गुंथी रहती हैं और सैकड़ों वर्षों तक मौखिक परंपरा से ही चलती रहती हैं। मानव शास्त्र या नृ–विज्ञान इस तथ्य का बोध कराता है कि मानव ने किन परिस्थितियों से गुजर कर अपनी विकास यात्रा पूर्ण की है। इसी प्रकार के अध्ययन के लिए सामग्री का अथाह भंडार लोक साहित्य से भी उपलब्ध होता है। मानव विज्ञान अपने अध्ययन की बहुत–सी सामग्री लोक साहित्य से ग्रहण कर सकता है। धर्मशास्त्रों ने हमें और हमारे समाज का सदैव दिशा–दर्शन किया है, किंतु यह विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि प्रत्येक धर्म के मूल में लोक–विश्वास निहित रहते हैं और लोक विश्वास ही लोक साहित्य के भी मूलाधार हैं। पुरातत्वविद् जो कार्य उत्खनन द्वारा करते हैं, वहीं कार्य लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य का गहन अध्ययन करके भी किया जा सकता है। लोक साहित्य की कथाएं, गाथाएं जिन तथ्यों को अपने में समाहित किए हुए हैं, उनको आधार मानकर पुरातत्ववेता अनुसंधान कार्य करते हैं और अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्षों तक पहुंचते हैं। अतः लोक साहित्य पर पुरातत्ववेत्ता को निर्भर रहना पड़ता है। भाषा विज्ञान के लिए जिस भाषा या क्षेत्र–विशेष की बोली का अध्ययन अभीष्ट होता है, उस बोली का साहित्यिक रूप लोक साहित्य में ही सुरक्षित मिलता है। आशय यह है कि लोक साहित्य का अध्ययन करके भाषा–वैज्ञानिक को किसी जनपद की भाषा या बोली का भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए सबसे प्रामाणिक आधार प्राप्त हो जाता है। मनोविज्ञान मानव मन का अध्ययन करने वाला शास्त्र है। यदि किसी मनोविज्ञानी को आदिम मनोवृत्तियों का अध्ययन करना हो तो उसको लोक साहित्य से सहायता प्राप्त करनी ही होगी। लोक साहित्य में मानसिक स्थितियों यानी मनोदशाओं का उद्‌घाटन बहुत कुशलता के साथ किया जाता है। लोक साहित्य में चूंकि मानव जीवन की यथातथ्य अभिव्यक्ति निहित होती है, इसलिए लोक साहित्य में ऐसी प्रचुर सामग्री प्राप्त हो जाती है, जिसे समाजशास्त्री अपने अध्ययन के लिए उपयोगी पाता है।

टिप्पणी

लोक साहित्य में उपलब्ध मुहावरों एवं लोकोक्तियों में हमें यथास्थान अर्थशास्त्र के उल्लेख मिल जाते हैं। इसी प्रकार अतीत कालीन अर्थव्यवस्था से संबंधित लोक साहित्य के अंतर्गत उल्लेखों को समझने में अर्थशास्त्र हमारी सहायता करता है। लोक साहित्य में पशुओं के रोगों के उपचारों के भी अन्य अनेक उल्लेख मिल जाते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य द्वारा चिकित्सा–विज्ञान के प्राचीन रूपों का परिचय प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार पाठानुसंधान के लिए लोक साहित्य उपयोगी भूमिका का निर्वाह करता है। इनके आधार पर अतीत के पाठ में प्रयुक्त शब्दों का उद्धार किया जा सकता है। लोक संस्कृति में अनेक ऐसे लोकवृत्त मिल जाते हैं, जो किसी ग्रंथ अथवा कोश में उपलब्ध नहीं होते हैं। शिष्ट साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों का परिचय हमको लोक साहित्य की प्रवृत्तियों के संदर्भ में प्राप्त हो सकता है। इतना ही नहीं, लोक साहित्य की अनेक सहज, मार्मिक, प्रभावी उक्तियों एवं अभिव्यंजना पद्धतियों द्वारा शिष्ट साहित्य की यही उपयोगिता कही जा सकती है।

अपने पूर्वजों द्वारा संचित धन–संपत्ति और जमीन–जायदाद को, जोकि धूप–छांव की तरह आनी–जानी होती है, हम सहज ही स्वस्फूर्त और यत्नपूर्वक संहजेकर रखते हैं। लोककथाओं सहित संपूर्ण लोक साहित्य भी हमारे पूवर्जों द्वारा संचित; ज्ञान, नीति और दर्शन का अनमोल और अक्षय–कोश है जिसे संग्रह करना आवश्यक है।

लोक साहित्य अध्ययन में अध्ययन कर्ता को विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों के अलावा सबसे बड़ी चुनौती तो उसके सामने संग्रह संकलनों को प्रकाशित कराने की आती है। अतः कुछ सरकारी केंद्रीय संगठनों द्वारा इनका प्रकाशन करवाए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए जैसा कि अमेरिका, इंग्लैंड आदि जैसे देशों में ऐसे संगठनों द्वारा किया जाता है।

1.10 मुख्य शब्दावली

- **परवर्ती** : बाद के समय का।
- **लौकिक** : लोक संबंधी, सांसारिक।
- **निरूपित** : निरूपण किया हुआ (अच्छी तरह समझाया गया)।
- **परिष्कृत** : सुधारा हुआ।
- **उद्धृत** : लेख आदि से चुना हुआ।
- **दृष्ट्व्य** : दिखाई देने योग्य।
- **परिनिष्ठित** : पूर्णतया कुशल।
- **अभिव्यंजना** : विचारों एवं भावों को प्रकट करना।
- **परिमार्जित** : जिसका परिमार्जन (साहित्यिक त्रुटियों को दूर करना) हुआ हो।
- **नृविज्ञान** : मानव एवं उसके वंश से संबंधित विज्ञान।

- **अध्येता** : अध्ययन करने वाला।
- **अन्योन्याश्रित** : एक–दूसरे पर अवलंबित।
- **पुरातत्वविद्** : पुरातत्व विद्या को जानने वाला।

1.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. दिव्य
2. लोक
3. गलत
4. सही
5. लोक
6. बोली
7. सही
8. गलत
9. घनिष्ठ
10. सही
11. पहचान
12. पर्व
13. सही
14. चुनौतीपूर्ण
15. सही
16. फोक टेल्स ऑफ बंगाल
17. 1891
18. पाठशाला
19. गलत
20. सही
21. सही
22. रुचि
23. सही

टिप्पणी

1.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक साहित्य और परिनिष्ठित साहित्य पर प्रकाश डालिए।
2. लोक साहित्य के क्षेत्र का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. लोक साहित्य के अध्ययन पद्धतियों पर टिप्पणी लिखिए।
4. लोक साहित्य के अध्ययन की चुनौतियों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. लोक साहित्य का अर्थ, परिभाषा और विशेषताएं लिखिए।
3. लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य पर प्रकाश डालते हुए इन दोनों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
4. लोक साहित्य के स्वरूप की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन करें।
5. लोक साहित्य के संग्रह के इतिहास व इसकी आवश्यकता पर विस्तृत प्रकाश डालिए।

1.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. सत्येंद्र जी.एस., *लोक साहित्य विज्ञान,* राजस्थानी ग्रंथाकार।
2. राजेश्वर प्रसाद, *ब्रिज लोक साहित्य और संस्कृति।*
3. श्याम परमार, *भारतीय लोक साहित्य,* राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली।
4. दिनेश्वर प्रसाद, *लोक साहित्य और संस्कृति,* लोक भारती प्रकाशन दिल्ली।
5. के.डी. उपाध्याय, *लोक साहित्य की भूमिका* साहित्य भवन, इलाहाबाद।
6. श्याम परमार, *भारतीय लोक साहित्य,* राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली।

इकाई 2 लोक साहित्य के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 लोकगीत
  2.2.1 लोकगीत की परिभाषा एवं विशेषताएं
  2.2.2 लोकगीत और शिष्ट गीत में अंतर
  2.2.3 लोकगीतों का वर्गीकरण
  2.2.4 लोकगीतों की सामान्य प्रवृत्तियां एवं रूढ़ियां
  2.2.5 लोकगीतों में संगीत का विधान एवं वाद्य यंत्र
  2.2.6 लोकगीत गायन में प्रयुक्त लोक–वाद्य
  2.2.7 लोकगायकों की भूमिका
2.3 लोककथा
  2.3.1 लोककथा की परिभाषा
  2.3.2 लोककथा के उद्‌भव के सिद्धांत
  2.3.3 लोक कथाओं की विशेषताएं
  2.3.4 लोककथाओं का भारतीय वर्गीकरण
  2.3.5 पौराणिक कथाएं एवं उनकी विशेषताएं
  2.3.6 लोककथा व पौराणिक कथा में अंतर
  2.3.7 लोककथा कथन में कथक्कड़ की भूमिका
2.4 लोकगाथा
  2.4.1 लोकगाथा की परिभाषा
  2.4.2 लोकगाथा की विशेषताएं
  2.4.3 लोकगाथाओं की उत्पत्ति
  2.4.4 लोकगाथाओं की विभिन्न श्रेणियां
2.5 लोकनाट्‌य
  2.5.1 लोकनाट्‌य का अर्थ एवं परिभाषा
  2.5.2 लोकनाट्‌य की विशेषताएं
  2.5.3 लोकमंच के स्वरूप
  2.5.4 लोकनाट्‌यों की लोकप्रियता के कारण
  2.5.5 लोकनाट्‌यों के प्रकार
  2.5.6 भारत के प्रसिद्ध लोकनाट्‌यों का परिचय
2.6 लोक सुभाषित साहित्य
  2.6.1 लोकोक्ति
  2.6.2 मुहावरे
  2.6.3 पहेलियां
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

टिप्पणी

शिष्ट साहित्य को जिस प्रकार गद्य और पद्य – इन दो विभागों में वर्गीकृत किया जाता है, ठीक उसी प्रकार लोकसाहित्य को भी गद्य एवं पद्य – इन दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। किंतु थोड़ा अंतर इस रूप में है कि लोकसाहित्य में शिष्ट साहित्य की भांति अनेक विधाएं मिलती ही नहीं। उदाहरण के लिए शिष्ट साहित्य में उपलब्ध उपन्यास, एकांकी, संस्मरण, रेखाचित्र आदि अधुनातन गद्य–विधाएं लोक साहित्य में नहीं मिलतीं। लोकसाहित्य में तो गद्य के नाम पर या तो लोककथाओं को मान सकते हैं अथवा प्रकीर्ण साहित्य के अंतर्गत आने वाले मुहावरों को। इनके अतिरिक्त अधिकांश वाङ्मय पद्यबद्ध ही होता है। शिष्ट साहित्य में काव्य के जितने भेद (प्रबंध, मुक्तक) होते हैं, उतने भेद लोकसाहित्य में भी प्राप्त होते हैं। अंतर इतना ही है कि लोकसाहित्य में इनको पृथक–पृथक नामों – अर्थात लोकगाथा (प्रबंध के लिए) और लोकगीत (मुक्तक के लिए) – से पुकारा जाता है। एक विशेष बात यह भी है कि परिनिष्ठित साहित्य में प्राप्त 'नाट्यरूप' भी पद्यबद्ध होते हैं। शिष्ट साहित्य के अंतर्गत लघु आकारीय काव्य–रूपों के लिए पृथक विधा निर्धारित नहीं है और इसी प्रकार लोकोक्तियां और मुहावरे जैसे साहित्य–रूप भी परिनिष्ठित साहित्य में नहीं मिलते। विधाओं–विषयक लोक और परिनिष्ठित साहित्य के संबंध में इस प्रकार पार्थक्य–भेदक विश्लेषण के उपरांत लोकसाहित्य की विधाओं का परिचय निम्न रूप में दिया जाता है –

1. लोकगीत
2. लोककथा
3. लोकगाथा
4. लोकनाट्य
5. प्रकीर्ण साहित्य

इनमें से प्रत्येक विधा का संक्षिप्त परिचय तथा इन विधाओं से संबंधित विविध समस्याओं पर इस अध्याय में विचार किया जाएगा।

2.1 इकाई के उद्देश्य

- लोकगीत की विशेषताओं, वर्गीकरण, प्रवृतियों एवं रूढ़ियों से अवगत हो पाएंगे;
- लोकगीत में संगीत के विधान एवं वाद्य यंत्रों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- लोककथा की परिभाषा, उद्भव के सिद्धांत, विशेषताओं और वर्गीकरण की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- पौराणिक कथाओं, इनकी उत्पत्ति एवं विशेषताओं के बारे में जान पाएंगे;
- पौराणिक कथा व लोककथा में क्या अंतर है और लोककथा कथन में कथक्कड़ की क्या भूमिका है, यह जान पाएंगे;

- लोकगाथा की परिभाषा, विशेषताओं, उत्पत्ति और इसके श्रेणी विभाजन से अवगत हो पाएंगे;
- लोक मंच के स्वरूप, लोकनाट्यों की लोकप्रियता के कारण, प्रकारों एवं भारत के प्रसिद्ध लोकनाट्यों से परिचित हो पाएंगे;
- लोक सुभाषित साहित्य यथा लोकोक्ति, मुहावरे और पहेलियों एवं लघुगीत के उद्भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

2.2 लोकगीत

लोकगीत के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है–

2.2.1 लोकगीत की परिभाषा एवं विशेषताएं

लोकगीत की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए परसी ने लिखा है– "This primitive spontaneous music has been called folk song." इस परिभाषा से स्पष्ट है कि मानव चाहे सभ्य हो अथवा असभ्य, उसमें अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने की इच्छा और क्षमता अवश्य होती है। आदिम मानव भी स्वानुभूति से प्रेरित होकर जब कभी सुख अथवा दुःख की संवेदना से आंदोलित हुआ होगा, तभी लोकगीतों की स्वरधारा उसके कंठ पर लहरा उठी होगी। जब यह स्वरधारा लयबद्ध होकर निकलती है, तभी गीत का स्वरूप धारण कर लेती है। लोकगीतों के उद्गम के संबंध में श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के विचार उल्लेखनीय हैं–कहां से आते हैं इतने गीत? स्मरण–विस्मरण की आंख–मिचौनी से। कुछ अट्टहास से। कुछ उदास हृदय से। कहां से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेत में उगते हैं, ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती हैं, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोकरा भी–पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख, जीवन के दुःख– ये हैं लोकगीत के बीज।

लोकगीतों का संबंध लोकजीवन के सुख और दुःख से है। इनमें जन–जीवन के भाव अभिव्यक्त होते हैं। लोकगीतों के विकास और उनमें पिरोए हुए भावों की विस्तृत परिधि की चर्चा करते हुए डॉ. श्याम परमार ने लिखा है–

"गीतों के प्रारंभ के प्रति एक संभावना हमारे पास है, पर उसके अंत की कोई कल्पना नहीं। यह वह धारा है, जिसमें अनेक छोटी–मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना दिया है। सदियों के घात–प्रतिघातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन के ताने–बाने बुने हैं। स्त्री–पुरुषों ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। इनकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाए हैं, बैरागियों ने उपदेशों का पान कराया हैं, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।"

सृष्टि के आदिकाल में सामाजिक चेतना के साथ लोकगीत का उदय हुआ, जिसका संबंध जन–जीवन से था। धीरे–धीरे मानव में ज्ञान का विकास हुआ और उसने लयबद्ध

टिप्पणी

वाणी में अपने सुख–दुःख की कहानी कहना प्रारंभ किया। यह लयबद्ध वाणी लोककंठ का आश्रय पाकर लोकगीत बनी। इस संबंध में श्री सूर्यकरण पारीक के विचार दृष्टव्य हैं–

"आदि मनुष्य–हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव–जीवन की उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख–दुःख की कहानी इनमें चित्रित है।"

मानव में संगठन और सामाजिकता की भावना के उदय के साथ लोकगीतों का भी विकास हुआ। उसके भावों की परिधि का विस्तार हुआ। मानव के आदि काल के गीतों में मानव की सामूहिक भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं। विभिन्न ऋतुओं एवं उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत मानव के ज्ञान के विकास, उल्लास, संघर्ष और सामूहिकता की कहानी हैं।

लोकगीत की विशेषताएं

लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन करके ऐसी विशेषताओं का परिचय देना आवश्यक होता है, जिनके आधार पर लोकगीतों को शिष्ट या परिनिष्ठित गीतियों से पृथक रूप में माना जा सके। लोकगीतों को इनकी नैसर्गिकता के लिए जाना जाता है, ऐसी मान्यता है डॉ. श्याम परमार की–

"गीतों में विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य और व्यापक भावों का उभार है। भावों की लड़ियां लंबे–लंबे खेतों–सी स्वच्छ, पेड़ों की नंगी डालों–सी अनगढ़ और मिट्टी की भांति सत्य हैं।"

लोकगीतों को उनमें प्राप्त सहजता, रसमयता, मधुरता आदि गुणों के लिए जाना जाता है। इस प्रकार के गीतों से कोई साज–संवार नहीं होती। लोक–कविता के कंठ से सहज रूप में स्फुरित होने के कारण छंद, अलंकार, वक्रोक्ति, चमत्कार आदि के लिए लोकगीतों में कोई स्थान नहीं होता। इसी सहजता एवं प्राकृतिक उन्मेष के संबंध में श्री रामनरेश त्रिपाठी के निम्न वाक्य देखे जा सकते हैं–

"ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है! छंद नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के, स्त्री–पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्रामगीत हैं।"

कहना न होगा कि श्री त्रिपाठी के उपर्युक्त कथन में प्रयुक्त 'ग्रामगीत' शब्द लोकगीत के पर्याय रूप में ही गृहीत हैं। श्री त्रिपाठी ने लोकगीतों में प्राप्त सरसानुभूति का उल्लेख किया है, उसी प्रकार डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी लोकगीतों में प्राप्त रस–कलश की ओर मुग्ध होकर निम्न विचार व्यक्त किये हैं–

"नीले आकाश के नीचे प्रकृति के बहुरंगी परिवर्तन, युद्ध और शान्तिमय जीवन के चित्र एवं विधाता की स्त्री–संज्ञक रहस्यमयी सृष्टि की मानवीय जीवन पर प्रसाद और विषादमयी छाया–ये इन गीतों के प्रधान विषय हैं, जो शतकोटि कंठों से सहस्रों बार गाए जाने पर भी पुराने नहीं पड़ते और जिनकी सतत् किलकारी वायु में भरे हुए चिरंतन स्वर की तरह सर्वत्र सुनाई पड़ती है। गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं। वे कंठ से गाने के लिए और हृदय से आनन्द लेने के लिए हैं।"

लोकगीतों में लोक–संस्कृति का चित्रण भी अवश्यम्भावी होता है। इसलिए लोकगीतों के संबंध में यह विचार भी इसी रूप में लेना चाहिए कि लोक–संस्कृति की विवृत्ति भी इनकी एक आवश्यक विशेषता होती है। संस्कृति का उचित आख्यान करने की इसी प्रधान विशेषता पर बल देते हुए भी देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोकगीतों के विषय में यह सारगर्भित वाक्य लिखा–"लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह बोलते चित्र हैं।"

2.2.2 लोकगीत और शिष्ट गीत में अंतर

ऊपर लोकगीतों की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, उनमें से बहुत–सी विशेषताएं साहित्यिक गीतियों में भी मिलती हैं। तब एक समस्या यह उत्पन्न होती है कि इनमें अंतर कैसे किया जाए। इस विषय में भी अनेक विद्वानों ने विचार किया है। शिष्ट साहित्य के विविध काव्य–रूपों का विश्लेषण करते हुए डॉ. गुलाबराय ने एक स्थान पर लोकगीत और साहित्यिक गीतियों में पार्थक्य निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। उनका मत है–

"गीत–लोकगीत भी होते हैं और साहित्यिक भी। लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी रहता है। वे लोक–भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है, किंतु उनमें साधारणीकरण सामान्यतया कुछ अधिक रहता है, तभी वे वैयक्तिक रस की अपेक्षा जनरस उत्पन्न कर सकते हैं। साहित्यिक गीतों में निर्माता का निजीपन अधिक रहता है।"

इस कथन में विद्वान लेखक ने केवल एक पार्थक्य–भेदक विशेषता की ओर दृष्टिपात किया है, जिसमें शिष्ट या साहित्यिक गीत के रचयिता के आवश्यक रूप से ज्ञात रहने और लोकगीत के रचयिता के अज्ञात रहने की ओर संकेत किया है। इस संबंध में श्री रामखिलावन पाण्डेय ने भी विचार किया है। उनका मत है कि लोकगीतों में कृत्रिमता का विरोध तो मिलता ही है, किंतु वही सब कुछ नहीं है। शिष्ट गीतियों में और लोकगीतों में आत्मीयता, आत्मनिष्ठा एवं संवेदनशीलता की कोटियों का अंतर भी होता है। श्री पाण्डेय के ही शब्दों में लोकगीतों की वैशिष्ट्ययुक्त सीमाओं का निर्धारण इस प्रकार किया गया है–

"लोकगीतों का उन्नत रूप इस अवस्था में मिलता है जिसमें शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता है, किंतु संगीत की नहीं, बल्कि संगीतात्मक एवं रागात्मक अनुभूति का प्रबल आग्रह है। लोकगीतों की स्वाभाविकता में काव्य के स्वीकृत मानों की कृत्रिमता के प्रति विरोध का भाव है, जो आत्मीयता, आत्मनिष्ठता और संवेदनशीलता उनमें है, वह शास्त्रीय काव्य–विधान में नहीं। लोकगीतों में काव्यत्व का अभाव मानने वाले काव्य की कृत्रिमता को ही महत्वपूर्ण मान बैठते हैं। कला यदि रागात्मक क्षणों की आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति है, तो ग्रामगीत निश्चय ही कलात्मक हैं। उनमें भावना और संगीतात्मकता का समन्वय है।"

लोकगीत एवं शिष्ट अथवा परिनिष्ठित गीतियों का पारस्परिक अंतर स्पष्ट करने के लिए अन्य पद्धति यह भी हो सकती है कि हम शिष्ट या साहित्यिक गीतियों एवं लोकगीतों की विशेषताओं का विवेचन करके बाद में पार्थक्य–भेदक निष्कर्षों पर आएं।

प्रत्येक काव्य–रूप की विशेषताओं की भांति साहित्यिक गीतियों की विशेषताओं पर भी विद्वानों ने प्रकाश डाला है। प्रायः सभी आलोचकों ने गीतियों की निम्नांकित विशेषताएं मानी हैं–

टिप्पणी

1. संगीतात्मकता
2. अध्यान्तरिकता तथा भावना की सार्वभौमता
3. भावान्विति
4. लघुता
5. उच्चकोटि की गम्भीरता
6. स्वाभाविकता।

इस प्रकार की विशेषताओं के संबंध में डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी का यह कथन भी द्रष्टव्य है–"गीतियों की एक सुष्ठ् आकृति होती है। इनमें इधर–उधर के शब्दों तथा विचारों की भरमार नहीं होती। लय और स्वर, भाव तथा अर्थ से सीधे संबंधित होते हैं। इनकी शब्द–योजना सरल होती है; अतएव साहित्यिक चमत्कार का इनमें अभाव होता है। गीतियां बहुधा सस्वर पढ़ने या गाने के लिए लिखी जाती हैं, इनमें तीव्र गतिशीलता होती है और संगीत की भांति भाव भी अनायास विकसित होता जाता है। अकृत्रिमता, प्रयासहीनता तथा सरलता इनके आवश्यक गुण हैं। ये कोमल भावनाओं से उत्पन्न होती हैं–कर्कश भावों को इनमें स्थान नहीं मिलता।"

यद्यपि उपर्युक्त विशेषताओं का उल्लेख साहित्यिक गीतियों के संदर्भ में किया गया है, किंतु ये विशेषताएं लोकगीतों में भी प्राप्त होती हैं। इस आधार पर शिष्ट या साहित्यिक गीतियों एवं लोकगीतों में स्पष्ट भेद परिलक्षित नहीं कराया जा सका है। किंतु इनमें अंतर स्थापित ही नहीं किया जा सकता, ऐसी बात नहीं है। भले ही ये दोनों रूप एक–दूसरे के साथ मिले–जुले दिखाई देते हैं, किंतु शिष्ट साहित्य एवं लोकसाहित्य का अंतर तो बना ही रहता है। इस प्रकार के विचारों की पुष्टि डॉ. श्याम परमार के निम्न कथन से की जा सकती है–

"कलागीत साहित्य के अंग हैं, पर लोकगीत परंपरा, अनुभूति और अनुष्ठान से संबंधित हैं। कहीं–कहीं भारतीय गीत–परंपरा में हमारे साहित्य के दोनों अंग एक–दूसरे को स्पर्श करते हुए दीखते हैं।"

इसी प्रकार का मत डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी है। उन्होंने तो समस्त संत–साहित्य को लोकसाहित्य की संज्ञा दे डाली है। वास्तविकता यह है कि शिष्ट गीतों एवं लोकगीतों के निर्माण की प्रक्रिया ऐसी है, जिसके आधार पर इनको एक–दूसरे पर आश्रित कह सकते हैं। डॉ. श्याम परमार ने इस संबंध में निम्न विचार व्यक्त किये हैं–

"लोकगीत का सृजन संगीत के माध्यम से लोक–रंजक होकर परंपरा में सम्मिलित होने के क्रम में व्यष्टि और समष्टि के भेद को नष्ट कर देता है। किसी व्यक्ति–विशेष द्वारा निर्मित कोई गीत जनमानस को आन्दोलित कर उसके स्पंदन के स्वरों में मेल खाने लगे और कालान्तर में उसी भांति अथवा थोड़े परिवर्तन के साथ जीवित रहे तथा निरंतर प्रयोग

में आता रहे तो वह गीत 'लोकगीत' ही कहलाएगा। उसे लोकगीत की संज्ञा इतिहास और प्रयोग के सहारे प्राप्त होगी। मूल में कोई गीत लोकगीत नहीं कहा जाएगा। परिस्थितिवश समाज में आनुष्ठानिक अथवा औपचारिक मूल्य पाकर विशेष संस्कृति की पृष्ठभूमि में ही वह लोकगीत बनता है।"

टिप्पणी

अब शिष्ट गीतियों की निर्मिति के विषय में विचार करें तो कह सकते हैं कि भले ही साहित्यिक गीतियां किसी व्यक्ति–विशेष (गीतकार) की रचना होती हैं किंतु रचना–प्रक्रिया एवं रचना–परंपरा की दृष्टि से साहित्यिक गीतियों पर लोकगीतों का प्रभाव अवश्य रहता है। इस विषय में अनेक विद्वानों ने यह विचार व्यक्त किया है कि साहित्यिक गीतियों पर लोकगीतों का किसी न किसी प्रकार का प्रभाव अवश्य देखा जाता है। चाहे वह प्रभाव शिल्प–विषयक हो, अथवा अनुभूति की तीव्रता विषयक। डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी की तो यहां तक विचारणा है कि लोकगीतों का विकसित रूप ही शिष्ट या साहित्यिक गीतियों के रूप में पल्लवित हुआ। डॉ. तिवारी के ही शब्दों में इस प्रकार की मान्यता का प्रतिपादन निम्न प्रकार से हुआ है–

"कालान्तर में कला के सहयोग से यही लोकगीत साहित्यिक बन गए। इनमें कवि–रुचि प्रधान होने लगी। फिर भी इनमें कुछ ऐसी विशेषताएं बनी रहीं, जो इनके आदिम सामाजिक रूप की ओर संकेत करती हैं। इनका आकार और इनके संस्कार बहुत दिनों तक लोकगीतों के समान ही बने रहे। लोकगीतों के साहित्यिक गीतों में बदल जाने से कवित्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे। जो गीत अत्यंत सहज, स्वाभाविक भावोद्रेक को व्यक्त करने वाले थे तथा विशेषतः काम करने वाली प्रसन्न स्त्रियों द्वारा गाए जाते थे, अब अलंकृत एवं कवित्वपूर्ण बन गए।"

अब लोकगीतों की विशेषताओं का विचार–विवेचन करेंगे।

लोकगीतों की विशेषताओं के संबंध में अनेक लोकसाहित्यविदों ने प्रकाश डाला है। उनमें से कुछ विद्वानों के द्वारा संकेतित विशेषताओं का परिचय यहां प्रस्तुत है। सर्वप्रथम डॉ. श्याम परमार के द्वारा वर्णित विशेषताओं को उन्हीं के कथन के रूप में ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है–

"लोकगीत निर्वेयक्तिक हैं। उन्हें समूह द्वारा निर्मित माना जाता है, इसलिए व्यक्तित्व का अभाव और समूह अथवा जातीय विशेषताओं के लक्षण उनमें मिलते हैं। संक्षेपतः– (1) अकृत्रिमता, (2) सामूहिक भावभूमि, (3) परंपरात्मकता तथा मौखिक परंपरा के गुण, (4) रूढ़ अतिशयोक्ति, (5) संगीतात्मकता आदि गीतों की विशेषताएं हैं।"

उपर्युक्त विशेषताओं के संदर्भ में शिष्ट या साहित्यिक गीतों के स्वरूप पर विचार करें तो यह ज्ञात होगा कि पांच विशेषताओं में केवल एक अंतिम विशेषता ही ऐसी है, जो शिष्ट गीतों में भी उपलब्ध होती है, अन्यथा शेष चार शिष्ट गीतों में प्राप्त नहीं होतीं। यही दोनों का अंतर माना जा सकता है।

लोकगीतों के लक्षणों, उपलक्षणों एवं विशेषताओं के संबंध में डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय ने भी विचार किया है। डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय ने मनोरंजन करने की एक नवीन विशेषता का संकेत भी दिया है जो अग्रलिखित हैं–

टिप्पणी

1. लोकगीतों में मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं एवं विभिन्न राग वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है।
2. भावों को प्रकट करने के लिए जो वाणी आश्रय लिया जाता है, वह लयात्मक होता है।
3. सामूहिक प्रवृत्ति अधिक व्यापक है।
4. लोकगीतों का स्थापित अज्ञात होता है, व्यक्ति–विशेष की रचनाएं भी सामूहिक भावनाओं में ढल कर सामान्य हो जाती है।
5. लोकगीतों में मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं।
6. लोकगीतों से मनोरंजन भी होता है।

इन विशेषताओं में केवल एक लयात्मकता विषयक विशेषता ही शिष्टगीतों में पाई जाती है, शेष नहीं। इस आधार पर भी शिष्ट गीतों से लोकगीतों का अंतर जाना जा सकता है।

डॉ. तेजनारायण लाल ने लोकगीतों की विशेषताओं को लक्षण एवं उप–लक्षण जैसे दो वर्गों में विभक्त करके प्रस्तुत किया है। इन्होंने जहां सामूहिक रचनात्मक होने, उनके रूप के बदलते रहने, रचनाकाल के अज्ञात रहने, मौखिक रूप में प्रचारित होने, गेय होने के साथ सहज शैली में प्रस्तुत किये जाने जैसे लक्षणों की चर्चा की है, वहीं आशु रचना, पुनरावृत्ति, परिचित वस्तुओं का प्रयोग जैसे तीन उपलक्षणों का भी उल्लेख किया है। डॉ. शंकरलाल यादव ने लोकगीतों की विशेषताओं पर तो पृथक से विचार नहीं किया है, किंतु लोकसाहित्य की विशेषताओं पर अवश्य प्रकाश डाला है। लोकगीत चूंकि लोकसाहित्य के ही अंग होते हैं, अतएव उन विशेषताओं को लोकगीतों पर भी लागू किया जा सकता है। उन्होंने इस प्रकार की विशेषताओं में प्रायः अन्य विद्वानों द्वारा गिनायी गई विशेषताओं का ही उल्लेख किया है, किंतु एक नई विशेषता यह बताई है कि "लोकसाहित्य लोकभाषा में लिपटा रहता है और पूर्ण रूप से लोक वातावरण से ओत–प्रोत रहता है।" इसके अतिरिक्त अन्य विशेषताएं भी कुछ नवीनता लिए हुए हैं–

1. लोकसाहित्य संतति परंपरा से चलता है।
2. लोकसाहित्य मनोरंजन, शिक्षा या ज्ञानवर्द्धन का सरल मार्ग होता है।
3. लोकसाहित्य लोक के संस्कार, व्रत–पूजादि से संबंधित होता है।
4. लोकसाहित्य ग्रामीण खेलों एवं वाक्प्रचार से संबंधित होता है।
5. लोकसाहित्य में लोकजन सुलभ विश्वास, श्रद्धा आदि के लिए स्थान होता है।
6. लोकसाहित्य लोकभाषा में लिपटा रहता है और पूर्ण रूप से लोक वातावरण से ओत–प्रोत रहता है।

इस संबंध में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह बात कही जा सकती है कि लोकसाहित्य शब्द के स्थान पर लोकगीत शब्द प्रयोग करने से कोई अंतर नहीं पड़ेगा और इसीलिए इन्हें लोकगीतों की विशेषताएं मानने में कोई हानि नहीं है।

2.2.3 लोकगीतों का वर्गीकरण

किसी साहित्य का यदि स्वांगीण अध्ययन करना हो तो उसके विभिन्न प्रकारों एवं वर्गों का सम्यक रूप से विश्लेषण करना आवश्यक होता है। यही स्थिति लोकगीतों के पूर्ण परिचय के संबंध में है। इसलिए लोकगीतों का संकलन या अनुसंधानपूर्ण अध्ययन करने वाले सभी विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण किया है। लोकगीतों के वर्गीकरण के समय प्रश्न उठता है कि इनका वर्गीकरण किस आधार पर किया जाए? कुछ विद्वानों ने अपने पहले के विद्वानों द्वारा किये गए वर्गीकरण की आलोचनाएं की हैं। किसी वर्गीकरण में वैज्ञानिकता का अभाव देखा गया है तो किसी वर्गीकरण में ऐसी त्रुटियों को इंगित किया गया है जिनमें एक प्रकार के वर्ग का किसी अन्य वर्ग में ही अंतर्भाव हो जाता है। ऐसे अवसरों पर अधिक वर्ग निर्धारित करके संख्या बढ़ा देने की आलोचना की जाती है। हिंदी–जगत में लोकगीतों का वर्गीकरण अनेक विद्वानों ने किया है, किंतु सर्वसम्मत या वैज्ञानिक अथवा निर्दोष वर्गीकरण कोई नहीं कहा जा सकता। तब फिर इसे क्या असंभव माना जाए? कहा जा सकता है कि लोकगीतों का निर्दोष वर्गीकरण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। डॉ. चिंतामणि उपाध्याय ने इस प्रकार का विचार भी व्यक्त किया है– "लोकगीतों का वर्ण्य विषय इतना व्यापक है कि उनका वर्गीकरण कठिन हो जाता है।"

इस प्रश्न पर मत–वैभिन्न्य क्यों हो जाता है, इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि लोकगीतों के जितने वर्गीकरण हुए हैं, उनमें कहीं विषय–वस्तु को आधार बनाया जाता है तो कहीं उनकी गायन शैली को। कुछ लोग वर्गीकरण करते समय उनके गाने के अवसर तथा गायन पद्धति एवं रचना शिल्प पर भी विचार करते हैं। कुछ लोगों ने उनकी परंपरा को ही दृष्टिपथ में रखकर पारंपरिक और रचित, दो मुख्य वर्गों में विभक्त किया है। इसीलिए हिंदी जगत में किसी सर्वमान्य वर्गीकरण के अभाव पर चिंता व्यक्त करते हुए डॉ. मोहनलाल बाबुलकर ने निम्न मत उपस्थित किया है–

"लोकगीतों का विभिन्न विद्वानों द्वारा क्षेत्र–विशेष के अध्ययन के आधार पर ही वर्गीकरण किया गया है। अध्ययन और स्थान–विशेष के विश्लेषण के कारण ऐसा कोई भी वर्गीकरण उपलब्ध नहीं होता है, जिसे पूर्ण वैज्ञानिक कहा जा सके।"

इस प्रकार के वर्गीकरण के अभाव के कारणों पर प्रकाश डाला जाए तो कहा जा सकता है कि लोकगीतों के रूपात्मक वैविध्य एवं विषय–वस्तुगत व्यापकता निर्दोष वर्गीकरण में बाधक होने वाले प्रधान कारण हैं। इनके अतिरिक्त तीसरा कारण यह भी है कि लोकसाहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों ने या तो अपने संकलन–क्षेत्र से प्राप्त लोकगीतों के आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कर डाला या किसी पाश्चात्य विद्वान आदि के संदर्भ–ग्रंथों के आधार पर वर्गीकरण कर दिया गया। होना यह चाहिए कि भारतवर्ष के समस्त जनपदों के लोकगीतों के विभिन्न प्रकारों को दृष्टि–पथ में रखते हुए उनके विभिन्न वर्गों का निर्धारण किया जाए। एक अन्य कारण यह भी प्रतीत होता है कि लोकगीतों का विभाजन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। उन सभी दृष्टियों से वर्गीकरण करने के स्थान पर एक दो विशेषताओं को आधार–भूमि मानकर वर्गीकरण कर दिया जाता है। जैसे किसी ने पुरुष एवं स्त्री–वर्ग द्वारा गाए जाने वाले पात्रों के आधार पर ही वर्गीकरण कर डाला तो किसी ने पारंपरिक और रचित, ये दो भेद मात्र उनकी

टिप्पणी

रचना के मूलाधार पर दृष्टि रखकर एक वर्गीकरण कर दिया। कारण कुछ भी हों, अभी तक बहुत कम वर्गीकरण ऐसे मिले हैं, जिनको आलोचना का विषय न बनाया जा सके। तब फिर सर्वसम्मत, वैज्ञानिक या निर्दोष वर्गीकरण कैसे हो? किंतु इससे पूर्व हम कुछ प्रधान विद्वानों द्वारा दिए गए वर्गीकरण को उपस्थित करेंगे और उनके दोषों पर प्रकाश डालेंगे।

हिंदी प्रदेश के लोक–गीतों के वर्गीकरण की परंपरा की आदिम कड़ी के रूप में श्री रामनरेश त्रिपाठी पर हमारी सर्वप्रथम दृष्टि जाती है। उन्होंने अपने संकलन के आधार पर अग्रांकित एकादश वर्गों में लोकगीतों को विभक्त किया है–

1. संस्कार संबंधी गीत
2. चक्की और चरखे के गीत
3. धर्म गीत
4. ऋतु संबंधी गीत
5. खेती संबंधी गीत
6. भिक्षा अथवा दान याचना संबंधी गीत
7. मेले संबंधी गीत
8. जाति–गीत
9. वीरगाथा
10. गीत–कथा
11. अनुभव के वचन।

त्रिपाठी जी का उपर्युक्त वर्गीकरण चूंकि सबसे पहला वर्गीकरण है, इसलिए इसे लोकगीत–जगत में किये जाने वाले अध्ययन–पथ का मील का पत्थर माना जाता है। यह बात अवश्य है कि इस वर्गीकरण के दोषों पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे–

1. भिक्षा अथवा दान याचना द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और सप्तम क्रम पर दिए गए वर्गों को 'क्रिया गीत' शीर्षक के अंतर्गत अंतर्भुक्त किया जा सकता है।
2. भिक्षा अथवा दान याचना के गीतों को जाति–गीतों के अंतर्गत ही समाविष्ट किया जा सकता है।
3. वीरगाथा और गीतकथा–दोनों वर्गों के अंतर्गत दिखाए गए लोकगीतों को 'प्रबंध–गीत' शीर्षक के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।
4. इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी एवं महत्वपूर्ण आपत्ति तो यह है कि प्रबंध–गीतों को तो हम लोकसाहित्य की एक पृथक विधा (लोकगाथा) ही मानते हैं। इसलिए उन्हें लोकगीतों की कोटि में नहीं लिया जाना चाहिए।

काल–क्रमानुसार त्रिपाठी के वर्गीकरण के उपरांत उपलब्ध वर्गीकरण है–श्री सूर्यकरण पारीक का, जिन्होंने राजस्थानी लोकगीतों का संकलन–अध्ययन करते हुए उसी के आधार पर 29 प्रकार निर्धारित किये हैं–

देवी–देवताओं और पितरों के गीत, ऋतुओं, तीर्थों, व्रत, उपवास और त्योहारों के गीत, संस्कारों, विवाह, भाई–बहिन के प्रेम, साली–सालेल्यां, पति–पत्नी के प्रेम–गीत, पणहारियों के प्रेम के, चक्की पीसते समय के, बालिकाओं के, चरखे के, प्रभाती के, हरजस, धमालें, देश–प्रेम के, राजकीय, राज–दरबार के जम्मे (जागरण) के, सिद्ध पुरुषों के, वीरों के एवं ऐतिहासिक, ग्वालों के, हास्य रस के, पशु–पक्षियों से संबंधित, शांत रस के, गांवों के, नाट्यगीत और विविध प्रकार के गीतों के रूप में उपलब्ध हैं।

इस वर्गीकरण का पाट बहुत विस्तृत है, अतः इसे विद्वानों ने वर्गीकरण तक मानने पर असहमति प्रकट की है। वास्तविकता यह है कि श्री पारीक के उपर्युक्त वर्गीकरण का कोई आधार दृष्टिगत नहीं होता और न वर्गों का नामकरण ही उचित रूप से किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक शीर्षकों के अंतर्गत दिखाए गए लोकगीत एक शीर्षक के अंतर्गत ही दिखाये जा सकते थे। इसीलिए इसे वर्गीकरण कहकर मात्र नाम गिनाने के कारण एक सूची मात्र कहा जा सकता है।

इन दोनों वर्गीकरणों में यद्यपि अनेक त्रुटियां हैं, किंतु लोकगीतों के वर्गीकरण के क्षेत्र में इन दोनों का ही ऐतिहासिक महत्व है। काल के चक्र के साथ अगला नाम आता है–डॉ. सत्येंद्र का, जिन्होंने 1947 में अपने शोध–प्रबंध लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

(अ) जन्म के गीत,

(आ) विवाह के गीत,

(इ) त्योहार, व्रत और देवी आदि के गीत,

(ई) अन्य विविध गीत,

(उ) प्रबंध गीत।

वास्तव में देखा जाए तो यह भी कोई वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि–

1. 'अ' और 'आ' दोनों वर्गों को संस्कार विषयक गीतों के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है।
2. 'अन्य विविध' की परिधि में दिए लोकगीतों का एक–सा आधार नहीं है।
3. प्रबंध गीत तो लोकसाहित्य की 'लोकगाथा' नामक पृथक विधा के अंतर्गत आते हैं।

इस वर्गीकरण के उपर्युक्त दोषों का एक प्रधान कारण यह है कि लोकगीतों के वैज्ञानिक वर्गीकरण की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया और दूसरे यह कि यह वर्गीकरण मात्र ब्रज प्रदेश के लोकगीतों के आधार पर ही था। यही नहीं, एक तीसरा कारण यह भी प्रतीत होता है कि लेखक ने ब्रज–प्रदेश के लोक–जीवन से इन गीतों का स्वयं संग्रह नहीं किया है, इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित लोकगीतों का अध्ययन वे नहीं कर पाए हैं। सत्येंद्र जी ने ही आगे चलकर ब्रज–लोकगीतों के वर्गीकरण को पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ में दिया है। वहां भी लोकगीतों को जिन शीर्षकों के अंतर्गत विभक्त किया है, उस शीर्षक–विधान में अनेक ऐसी भयंकर भूलें हुई हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि लेखक को लोकगीतों के स्वरूप का ज्ञान नहीं है। ऐसा संभवतः इसीलिए हुआ कि लोकगीतों का अध्ययन स्वयं संकलित प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित न होकर इधर–उधर से अन्य लोगों

टिप्पणी

द्वारा संग्रह करा लिया गया है। उनकी प्रकृति, प्रकार आदि का गंभीर ज्ञान अर्जित करने का अवसर लेखक को प्राप्त नहीं हुआ। इसके बीच की कड़ी के रूप में उन अनेक विद्वानों को मान सकते हैं, जिन्होंने विभिन्न जनपदों के लोकगीतों का अध्ययन किया है। इनमें हरियाणा जनपद के लोकगीतों का अध्ययन करने वाले डॉ. शंकरलाल यादव ने प्रबंध और मुक्तक जैसे मोटे भेद करके मुक्तक, लोकगीतों के पांच विभागों – संस्कार, ऋतु, कृषि, राजनीति तथा विविध प्रकार के लोकगीतों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार डॉ. कृष्णलाल हंस ने निमाड़ी लोकगीतों को आधार मानकर संस्कार, ऋतु, जीवन, धर्म, इतिहास तथा अन्य – इस प्रकार छः वर्गों में विभक्त किया है। मालवा जनपद के लोकगीतों के आधार पर सामान्य और वैज्ञानिक– दो ही वर्ग किये हैं और फिर सामान्य वर्ग के अंतर्गत जातियों, संस्कारों और प्रथाओं, धार्मिक विश्वासों, कार्य–संबंध और रस की दृष्टि से पांच प्रकार के वर्गों का उल्लेख किया है। यही नहीं, उन्होंने पृथक पृष्ठ पर एक वैज्ञानिक वर्गीकरण भी दिया है। इसी प्रकार मैथिली जनपद के लोकगीतों को अध्ययन का आधार बनाने वाले विद्वान डॉ. तेजनारायण लाल ने संस्कारों, पेशों, ऋतुओं, नृत्य, सामाजिक–आर्थिक आधार तथा विविध आदि वर्गों में लोकगीतों को विभक्त किया है। लोकगीतों के वर्गीकरण की परंपरा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का नामोल्लेख किया जा सकता है। उन्होंने अनेक विद्वानों के वर्गीकरणों की आलोचना करते हुए एक वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत करने की स्पष्ट घोषणा की है। उनके अनुसार लोकगीत के निम्न आधार हो सकते हैं–

1. संस्कारों की दृष्टि से;
2. रसानुभूति की प्रणाली में;
3. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से;
4. विभिन्न जातियों के प्रकार से; तथा
5. क्रिया–गीत की दृष्टि से।

इनमें 'रस' को आधार बनाकर जो वर्ग निर्धारित किया गया है वह उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सभी प्रकार के लोकगीतों में रस का अजस्र स्रोत प्रवाहित रहता है। वहां बिना रस के और है ही क्या? तब इसे आधार मानकर एक वर्ग विशेष नहीं बनाया जा सकता। डॉ. उपाध्याय ने, जैसा कि हम ऊपर कह आये है डॉ. सत्येंद्र के वर्गीकरण की कड़ी आलोचना की। सम्भवतः इसलिए डॉ. सत्येंद्र ने दो वर्गीकरण बाद में और दिए हैं। पहला है 'हिंदी–साहित्य का वृहत् इतिहास' (षोडश भाग) में 'ब्रज–लोकसाहित्य' शीर्षक अध्याय में, जिसमें स्त्रियों के, पुरुषों के, ऋतु गीत, धार्मिक गीत, खेल और गीत आदि 7 प्रकार बताए गए हैं और दूसरा वर्गीकरण दिया है 'लोकसाहित्य विज्ञान' नामक पुस्तक में, जहां स्त्रियों एवं पुरुषों के दो प्रधान वर्गों को साधारण, अनुष्ठानों के, मांगने वालों के और खेल के आदि चार वर्गों में विभक्त किया है। फिर ग्रामीण–नागरिक, प्रबंध–मुक्तक, व्यक्ति और समूह आदि के आधार पर उप–विभाजन किया है– साधारण वर्ग के लोकगीतों का। स्त्रियों के गीतों को संस्कार विषयक, तिथि वासरक और अन्य शीर्षकों के अंतर्गत विभक्त किया है।

जितने वर्गीकरणों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्होंने एक–दूसरे की आलोचना और अपने वर्गीकरण को निर्दोष एवं वैज्ञानिक कहने का दावा किया है। वास्तविकता यह है कि लोकगीतों के वर्गीकरण के अनेक पक्ष एवं दृष्टिकोण हो सकते हैं। इसलिए एक पक्ष या दृष्टिकोण के आधार पर किये गए वर्गीकरण अपूर्ण तो होंगे ही। वस्तुतः इस समस्या का समाधान तभी संभव है, जब वर्गीकरण करते समय निम्न तथ्यों को दृष्टिपथ में रखा जाए–

1. गायक वर्ग– जैसे नारी, पुरुष, बाल, शिशु आदि के आधार पर।
2. गायन का वातावरण – जैसे व्यक्ति, समूह, टोल, व्यवसायी गायक या स्वतः आनंद हेतु गाने वाले आदि के आधार पर।
3. गायन–पद्धति के आधार पर।
4. लोकगीतों के रूपात्मक वैविध्य के आधार पर।

यही नहीं, उपयोगिता की दृष्टि से, जातीय दृष्टि से, अवस्था भेद से, वस्तु भेद से, रूप भेद से (प्रबंध एवं मुक्तक), प्रकृति भेद से (शुद्ध नृत्य गीत, नाट्य गीत आदि) आदि आधारों पर भी लोकगीतों के वर्गीकरण किये जाएं, तभी वैज्ञानिक वर्गीकरण हो सकेगा। ऐसा करते समय सभी जनपदों के लोकगीतों को भी सामने रखना चाहिए, जिससे कोई भी लोकगीत–प्रकार वर्गीकरण से छूट न जाए।

2.2.4 लोकगीतों की सामान्य प्रवृत्तियां एवं रूढ़ियां

लोकगीतों की अनेक प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं, जिनका विवेचन करना उचित प्रतीत होता है। साथ ही लोकगीतों की अनेक रूढ़ियां भी होती हैं। इन दोनों का विवेचन इसलिए किया जा रहा है कि इनके आधार पर लोकगीतों का सही परिचय प्राप्त किया जा सकता है। हां, इस संबंध में इतना अवश्य है कि सभी प्रकार की प्रवृत्तियों एवं रूढ़ियों के उदाहरण ब्रज–लोकगीतों से दिए जा रहे हैं।

सामान्य प्रवृत्तियां

1. लय पूर्त्यर्थक पद योजना, 2. समान ध्वनि के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग, 3. एक ही अर्थ वाले दो शब्दों का प्रयोग, 4. संबोधन–परक शब्दों का प्रयोग, 5. एक ही वर्ण से प्रारंभ होने वाले शब्दों का पास–पास प्रयोग, 6. पुच्छ पदों की योजना, 7. निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग, 8. ध्वन्यात्मकता हेतु बीच में तुक मिलाने की प्रवृत्ति। इनका विवेचन नीचे किया जा रहा है–

लय पूर्त्यर्थक पद योजना

यह सामान्य प्रवृत्ति धुन या तर्ज में सहायता प्रदान करती है। लोकगीतों में–है, हो, हां, वे, ओ, रे आदि–आदि पदों द्वारा पदों की पूर्ति की जाती है। समान रूप से पाई जाने वाली इस प्रवृत्ति के दो कारण होते हैं। पहला तो देर तक स्वर–साधने हेतु और दूसरा, तुकान्त को सरल बनाने के लिए। यद्यपि ऐसे पदों का, जो लय की पूर्ति के लिए आते हैं कोई अर्थ

टिप्पणी

नहीं होता, तथापि लोकगीतों में महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस प्रवृत्ति के अंतर्गत कहीं–कहीं 'हो राम', 'जो राज' या 'जी महाराज' रूप भी मिलते हैं। यथा–

'हो राम'

असाढ़ तुलसा बैंयन लागी तौ सामन द्वै द्वै पात, हो राम।
भादों में तुलसा गरब गवीली, तौ क्वार में पितर समौधे, हो राम।।
कातिक तुलसा कातिकु न्हाई, तौ अगहन अगरू गढ़ायौ, हो राम।
पूस में जाड़े परे सवाये, तो कबऊ रजइया न ओढ़ी, हो राम।।

–(एक कार्तिक गीत से)

'जी राज'

असाढ़ उतरि सामन रूति आई, मैया जाऐ लैबे कूं आये, जी राज।
लाल लाल तमुआं जरद किनारी, सोने की मेख ठुकइयों, जी राज।।
सूतन के पलिका सौरि निहाली, मैया जाऐ सोमन दीजौ, जी राज।
सोने की थरिया में भोजन परोसे, मैया जाऐ जैमन दीजौ, जी राज।।

–(एक श्रावण गीत से)

देवी गीतों में भी यही 'हो राम', 'हो माइ' के रूप में परिवर्तित हो गया है। यथा–

धानू की माइ चतुर ऐ, जै जै हो माइ।
न्हाइ धोइ गूं गुर खेबै, जै जै हो माई।।

इस गीत में तुकान्त कार्य भी इसी 'हो माइ' पद से लिया गया है। यह प्रवृत्ति भी अनेक गीतों में मिलती है, जहां ऐसे पदों द्वारा ही तुकान्त का भी कार्य चला लिया जाता है। बच्चों के एक श्रावण गीत में यही प्रवृत्ति देखी जाती है–

मा ताते ताते पूआ करि लै, री माइ।
नये ढला में धरि दै, री माइ।।
नानी की गैल बताइ दै, री माइ।
नानी की गैल में स्यांपु पर्यौऐ, री माइ।।

कुछ रसियों और बहर गीतों के आदि में 'ए' या 'रे' अथवा 'अरे' तथा 'एजी' पदों से लय की पूर्ति में सहायता ली जाती है। कहीं–कहीं यह लय पूर्त्यर्थक पद लोकगीतों के बीच में भी देखी जाती है। 'मल्हार' गीतों में 'एजी कोई' व 'हम्बै कोई' ऐसे ही पद हैं, जो मल्हार के बीच में अंतरा पद को उभारने व निखारने के लिए प्रयुक्त होते हैं। नारी गीतों (भजनों में) 'रामा' पद से इसी प्रकार गीत के बीच में लय की पूर्ति की जाती है। ऐसे अनेक भजन हैं, जिनके मध्य में यह 'रामा' पद लय की पूर्ति करता है। उदाहरणार्थ–

ए दही ऐ लैकं लाऊगी बड़े भेर ।। टेक।।
नांइ मानौ चुंदरी ऐ धरि छोड़ौ रामा, तिहारे बिरज कौ मोल।।
नांइ मानौ इंडुरी ऐ धरि छोड़ौ रामा, ए श्री राधे रामा,
मोर पपइया चारों ओर ।। ऐ दही ऐ

– (कार्तिक के एक परभाती गीत से)

टिप्पणी

समान ध्वनि के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग – ब्रज प्रदेश के लोकगीतों में सादृश्य के लिए कुछ निरर्थक शब्दों को गढ़कर सार्थक शब्द के साथ प्रयोग किया जाता है। यह नाद–सौन्दर्य या वर्ण–मैत्री का सौन्दर्य कहा जाता है। यह प्रवृत्ति अनेक लोकगीतों में मिलती है। किसी गीत में रांग नामक एक धातु के 'रांग' शब्द के साम्य पर 'ढांग' शब्द, गढ़कर बैठा दिया गया है तो किसी में 'भरत' के सादृश्य में 'चरत' शब्द आयोजित है। इसी प्रवृत्ति के अंतर्गत 'गगरी' शब्द का सादृश्य मूलक 'अगरी' शब्द गढ़ा गया है। इसी प्रकार 'बट़ला' नामक पात्र के 'बटला' शब्द के सादृश्य में 'अटला' शब्द गढ़कर बैठाया गया है।

ऐसे साम्यमूलंक शब्द निरर्थक होते हैं। लोक जीवन की बोलियों में भी ऐसे निरर्थक शब्द साम्यमूलक होने के कारण बहुसंख्यार्थ में प्रयोग किये जाते है। ब्रज क्षेत्र की बोली में ऐसे शब्द 'फ' ध्वनि से गढ़े जाते है। जैसे – पानी का 'फानी' गांव के लिए 'फांव', हरू के साम्य में 'फरू' – आदि। खड़ीबोली के रूप में भी यह 'फ' – 'व' के रूप में मिलता है। जैसे – पानी–वानी, गांव–वांव, हल–वल आदि। यही नहीं, अन्य बोलियों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। पंजाबी में ब्रज के 'फ का स्थान 'स' ध्वनि ने ले लिया है। यथा– [illegible]–सानी, गांव–सांव, हल–सल आदि। चूंकि लोक जीवन की बोली ही लोकगीतों का ताना–[illegible] होती है, इसलिए ही लोकगीतों में भी निरर्थक किंतु ध्वनि–रूप में समान होने वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

एक ही अर्थ वाले दो शब्दों का प्रयोग – ब्रज प्रदेश के लोकगीतों में अनेक स्थलों पर एक ही अर्थ वाले दो शब्द पास–पास प्रयुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोक–कवि एक शब्द पर अधिक बल देने के लिए ही ऐसा करता है, अन्यथा एक ही अर्थ वाले दो शब्दों को एक स्थान पर पास–पास बिठाने का अन्य कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। प्रायः सभी जनपदों के गीतों में यह प्रवृत्ति मिलती है चूंकि इस प्रवत्ति के पीछे बल देने का उद्देश्य ही छिपा रहता है, इसलिए इसे बल संयोजन की प्रवृत्ति नाम दिया जाता है। ब्रज प्रदेश के लोकगीतों में ऐसे एक ही अर्थ वाले शब्दों में 'जहर–विसु' 'गज–हाथी' तथा 'जग–संसार' और 'कन्या धीय' जैसे दुहरे शब्दों का प्रयोग मिलता है।

संबोधन–परक शब्दों का प्रयोग – लोकगीतों में संवाद तत्त्व की योजना रहती है। भाई–बहिन, मां–बेटी, पिता–पुत्र, भाभी–देवर, पति–पत्नी तथा ननद–भावज आदि संबंधियों के वार्तालाप से लोकगीतों में जान फूंक दी जाती है। संवाद के ऐसे स्थलों पर संबोधनात्मक शब्दों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। यह संबोधन–परक शब्दों का प्रयोग भी एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में देखा जाता है। ब्रज प्रदेश के गीतों में संबोधन–परक शब्द लय की पूर्ति करते पाए जाते हैं जो गीत का ही एक अभिन्न अंग प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त संबोधनात्मक चिह्न जैसे 'री, रे,' आदि भी अनेक गीतों में मिलते हैं; यथा–

इतनी सुनिके बोले महादेव। सुनिलै री सकती मेरी।
ऐसे बोल मति बोलै री सकती। तेरे बोल धरती लरजै।।

– (महादेव के ब्याहुले से)

एक ही वर्ण से प्रारंभ होने वाले शब्दों का पास–पास प्रयोग – एक ही वर्ण से प्रारंभ होने वाले शब्दों का पास–पास प्रयोग करने की प्रवृत्ति यद्यपि अनुप्रास अलंकार कहलाती है, किंतु लोकगीतों में समान वर्णों से प्रारंभ होने वाले शब्दों का विचित्र प्रयोग मिलता है।

टिप्पणी

शरीर के अंगों, कूआ के अंगों, या वस्त्र बुनने की प्रक्रिया आदि से संबंध शब्दावली के आदि वर्ण से प्रारंभ होने वाले भगवान् के नामों, ब्रजधामों के नामों तथा धर्म के आचरणों से समानता दिखने की प्रवृत्ति अनेक गीतों में मिलती है। लोक कवियों ने लोकगीतों में ही नहीं, अपितु कवित्त, सवैयों की शैली में भी इस प्रवृत्ति का उपयोग किया है।

पुच्छ पदों की योजना –ब्रज प्रदेश के अनेक प्रकार के गीतों में पुच्छ पद जोड़ने की प्रवृत्ति मिलती है। इसका सूत्र वेदों में भी देखा गया है। वहां कई श्लोकों के बाद एक ही चरण पुच्छ पद के रूप में प्रयुक्त मिलता है। यह पुच्छ पद ब्रज प्रदेश के लोकगीतों में विभिन्न मात्राओं के छंदों द्वारा निर्मित होता है। यथा–

सात मात्राओं वाले छंद से

मैने जानी कुलमंतिनि नारि,
ग्वा में निकर्‌यौ संडफा यार, कै हारि गंगा।

– (एक 'हरिबोला' से)

दस मात्राओं वाले छंद से

(क) *बैठ्‌यों आसन मारिकें, सोवै पांव पसारि*
चारी पहर भजन में बीते, भयौ सकार्‌यौ आइ,
कृस्न गुन गाइये।

– (एक 'सोहले' गीत से)

(ख) *भर्‌यौ कटोरा दूध कौ (तो कोई) बूरे बिन पियौ न जाइ।*
सोल्है बरस की गोरली (सो कोई) पिया बिन रह्‌यौ न जाइ।।
दिखाइला रोसनी, दुपट्‌टा रेसमी, कै लड्‌डू बेसनी

– (एक नारीपथ गीत : ढोला से)

इसी प्रवृत्ति के दर्शन नंददास के भ्रमरगीत में 'सुनो ब्रज नारी' या 'सखा सुनि स्याम के' के रूप में किये जा सकते हैं। संभवतः लोकगीतों में मिलने वाली यह प्रवृत्ति ही नंददास को प्रेरणादायक सिद्ध हुई होगी।

निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग – कुछ लोकगीतों में सीधे–सादे ढंग से बात को उपस्थित करने के लिए निषेधात्मक शब्दों (न, ना) का प्रयोग किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि धुन की योजना के लिए, ऐसे नकारात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे–

फूल में फूल गुलाबी सूरज पैइयां लागू न हो।
सूरज तुम मोइ साददेऊ बहुत गुन गाऊं न हो।।

– (एक जच्चा गीत से)

ध्वन्यात्मकता की योजना हेतु बीच में तुक मिलाने की प्रवृत्ति – सामान्यतः लोकगीतों एवं शिष्ट साहित्य में पदान्त के साथ तुक मिलाने का नियम पाया जाता है। किंतु

कुछ लोकगीतों में एक चरण मध्य में दो–दो, तीन–तीन बार तुक मिलान है। ब्रज प्रदेश के संवादी भजनों तथा छोटी ढब के ढोला गीतों की झड़ों में इसी प्रकार दो–दो बार मध्य तुक मिलते हैं। झूलना गीतों और जिकड़ी भजनों की लावनी युक्त रंगत में इसी प्रकार की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। एक प्रकार के बारहमासी नामक लोकगीत में भी इस प्रवृत्ति का सफलतापूर्वक निर्वाह किया गया है।

2.2.5 लोकगीतों में संगीत का विधान एवं वाद्य यंत्र

लोकगीतों का वास्तविक सौंदर्य उनके संगीत के कारण होता है। गेयात्मकता को लोकगीतों का प्रारंभ कहा जा सकता है। लोक–जीवन में जब भावारितेक होता है, तब गीत का स्वर फूटा करता है और वह भी एक नैसर्गिक संगीत के साथ। शास्त्रीय संगीत जैसी नियमबद्धता लोकगीतों में नहीं होती है तथा सहज संगीत लोक–गीतों के साथ आवश्यक रूप से जुड़ा रहता है। इसीलिए लोकगीत के गायक स्वर को किसी विशेषज्ञ संगीत–शिक्षा–व्यवस्था की आवश्यकता नहीं थी। यह बिना प्रशिक्षण के उस गीत के गाने की लय को हृदयंगम कर जाता है और थोड़े से अभ्यास से ही वह पूर्ण रूप से गाने लगता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकगीतों में संगीत का पुट घुला–मिला रहता है, जिसके साथ लोक–जीवन के ही वाद्य प्रयुक्त रहते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों में व्याप्त लोक–संगीत की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार निम्न प्रकार प्रस्तुत किये हैं–

"लोकगीतों की आत्मा लोक–संगीत है, लोक–संगीत का इतिहास प्राचीन है। बहुत से विद्वानों का मत है कि शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति लोक–संगीत से ही है।"

डॉ. उपाध्याय लोक–संगीत की व्यापकता के विषय में भी विचार व्यक्त करते पाए जाते हैं–

"लोक–जीवन का सुंदरतम प्रतिबिम्ब लोकगीत और लोक–संगीत में दिखाई पड़ता है। क्योंकि लोकगीतों में शब्दों और स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। इनमें लोक–जीवन का सीधा–सादा चित्र भी रहता है, लोकगीत सरल, सुंदर, अनुभूतिमय तथा संगीतमय होते है। कदाचित् ही कोई ऐसा लोकगीत हो जो संगीत से अनुप्राणित न हुआ हो।"

कहना न होगा कि लोकगीतों में स्वर, लय या ध्वनि का इतना महत्व होता है कि उसके अभाव में लोकगीत के सौन्दर्य के स्वरूप की कल्पना नहीं की जा सकती। डॉ. सत्येंद्र ने एक स्थान पर अंग्रेज विद्वान Kenneth Rich Mand के कथन का हिंदी अनुवाद इस प्रकार दिया है कि उससे लोकगीतों में संगीत के समन्वय और समावेश पर प्रकाश पड़ता है–

"सभी लोकगीतों में सामान्यतः यह बात मिलती है कि शब्द लय से गौण होते हैं, और इसी कारण कभी–कभी यह कहा जाता है कि लय ही है जिसका सर्वापेक्ष अधिक महत्व था।"

लोकगीतों में मिलने वाले संगीत–विधान का नियमित रूप होता है, उसकी निर्धारित लय व्यवस्था के कारण ही उसके गाने की लय जिन्दा रहती है, स्वर का किसी नियम में

बंधे रहकर आरोह–अवरोह ही किसी लोकगीत की लय के निर्धारण का कारण होता है। यदि ऐसा न होता तो लोकगीतों का लय के आधार पर वर्गीकरण न होता और एक ही लोकगीत को विभिन्न लयों में गाया जाता।

टिप्पणी

संगीत तत्त्व का विस्तृत अध्ययन करने पर हमारा ध्यान उन कतिपय विशेषताओं की ओर जाता है, जो लोकगीतों के गाने के संबंध में हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। डॉ. उपाध्याय ने इन विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है–

1. लघु–गुरू का शिथिल बंधन
2. उपान्त्य स्वर को लुप्त स्वर में उच्चारण करना
3. स्तोभ की प्रणाली।

ये विशेषताएं हैं जो लोकगीतों के गाने में देखी जाती हैं, या यों कहिए कि लोकगीतों की गायन शैली का परिचय देती हैं। अब हम इन विशेषताओं का सोदाहरण परिचय प्रस्तुत करेंगे। पहले लघु और गुरू के शिथिल बंध को लें, तो कहा जा सकता है कि सरसता के कारण अनेक गीतों में गाते समय दीर्घ को लघु और लघु को दीर्घ कर देना एक सामान्य बात होती है। उदाहरण के लिए, ब्रज का एक लोकगीत लीजिए जिसमें चिड़िया के 'इकार' को 'ईकार' (चिड़ी) के उच्चारण के साथ प्रस्तुत किया जाता है–

"चिड़ी तोय चामरिया भावै"

उपान्त्य स्वर को लुप्त स्वर में उच्चारण करने की भी गति लोकगीतों को गाते समय देखी जाती है। इसं प्रवृत्ति के अनुसार लोकगीत के स्थाई या अंतरा के साथ तुक मिलाने वाले पद इस प्रकार गाए जाते हैं कि अंतिम स्वर का उच्चारण लघु हो जाता है और उपान्त्य का लोप। ब्रज लोकगीतों से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"उल्ली पार बसुरिया बाजै, पल्ली पार सखी लहराई।"

जहां तक स्तोभ प्रणाली का प्रश्न है, लोकगीतों में गाने का माधुर्य उत्पन्न करने के लिए बीच में या प्रारंभ में अथवा अंत में लघु पदों का आगम कर लिया जाता है। कहीं 'हो' तो 'रामा' या कहीं पर 'ऐजी कोई', 'हम्बै कोई' तथा कहीं पर पूरा वाक्य का वाक्य ही गायन–सौंदर्य उत्पन्न करने के लिए आता है। ये सभी प्रकार ब्रज लोकगीतों में मिलते हैं। मध्य में, प्रारंभ में या अंत में वर्ण, पद या वाक्य का प्रारंभ देखा जाता है। उदाहरणार्थ, ब्रज के रसिया शैली के गीतों में, गाते समय 'अरे' का आगम कर लिया जाता है। यथा–

'अरे' तू ब्रज कूं तजि के, कौन लोक रह्यौ छाय।'

ब्रज के कार्तिक मास के गीतों में नारियों द्वारा गाए गए भजन शीर्षक गीतों में 'रामा' पद का आगम देखा जाता है–

'ऐ दही ए लैकें आइजाऊंगी बड़े भोर'
नांइ मानौं गगरी ऐ धरि राखौ रामा बड़ौ दही कौ मोल।

इसी प्रकार ब्रज के पावस गीतों में से 'मल्हार' नाम से पुकारे जाने वाले गीतों में 'ऐजी कोई' 'हम्बै कोई' या 'अरी मेरी बहिना' जैसे लम्बे पदों का आगम जाता है, जिसे टेक भी कह सकते हैं–

टिप्पणी

"अरी मेरी बहिना सावन सूनौ ही जाए बीरन नहीं आये लैन कूं
बैन पपइया पीउ–पीउ रटि रह्यौ, अरि मेरी बहिना मोर मचावत सोर,
बीरन नहीं आये लैन कू

एक अन्य मल्हार में 'ऐजी कोई' का आगम निम्न प्रकार है–

बाग हिंडोले अम्मा मेरी परि रहे जी,
ऐजी कोई झूलत नन्द किसोर।।

अब हम संगीत की शास्त्रीय परिधि में लोकगीतों को गाने की पद्धति का अवलोकन करेंगे। शासकीय संगीत की भांति अनेक तालें भी लोकगीतों में प्रयुक्त रहती हैं। ताल दादरा ब्रज के अनेक लोकगीतों में बजाई जाती है। वैसे लोकगीतों को गाते समय प्रायः ताल कहरवा ही बजाई जाती है; जिसके स्थान पर द्रुतगति और अंतरे में वही ताल विलम्बित गति जाती है।

यह बात भी कुछ विद्वानों ने उठाई है कि शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त सात स्वरों में से लोक–संगीत में केवल 'गान्धार' और 'निषाद' का ही प्रयोग किया जाता है। डॉ. उपाध्याय ने भी ऐसा मत प्रकट किया है–

"भोजपुरी गीतों में प्रायः 7 शुद्ध स्वरों का और 2 विकृत स्वरों कोमल 'ग' और 'नि' का प्रयोग होता है। कुछ गीतों में अन्य विकृत स्वरों का भी प्रयोग मिलता है। अधिकांशतः लोकगीत में 3–4 स्वर ही प्रयुक्त होते हैं।"

विद्वान डॉ. उपाध्याय के इस मत का खंडन तो नहीं करते, परंतु ब्रज प्रदेश की गायन शैली के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अपार जन–समूह के सामने मनोरंजन के लिए गाए जाने वाले गीतों में सभी स्वरों का उपयोग मिलता है।

2.2.6 लोकगीत गायन में प्रयुक्त लोक–वाद्य

लोकगीतों को गाते समय जिन वाद्यों का प्रयोग होता है, उनके हम दो वर्ग निर्धारित कर सकते हैं। प्रथम प्रकार के अंतर्गत हम उन वाद्यों को ले सकते हैं, जो गायक के साथ संगत करते हैं। इन वाद्यों में से ब्रज प्रदेश में सारंगी वाद्य अधिक प्रचलित है। ब्रज संगीत के साथ बांसुरी के सहकार को कौन भुला सकता है। इसी प्रकार बीन नाम का वाद्य भी लोकगीतों में गायक के साथ संगत करता है। लोकगीत को गाते समय वादक एक विशेष प्रकार की बीन बजाते हैं। लोकगीतों के साथ बजाए जाने वाला सिंगी बाजा तो मध्यकालीन अनेक पदों में आया है। ऐसा ही बाजा तुरही भी है, जो आगे चलकर बीन के रूप में परिवर्तित हुआ है। ये लोकगीतों के साथ बजाए जाने वाले बाजे हैं। ब्रज प्रदेश में आजकल युग–प्रभाव के कारण हारमोनियम बाजा भी स्वर सहकारी वाद्य के रूप में बहुत प्रचलित हो चला है। परंतु लोक–वाद्यों के अंतर्गत इसको समाविष्ट नहीं किया जा सकता। वाद्यों के वर्गीकरण में उन वाद्यों को समाविष्ट किया जा सकता है, जो स्वर की संगत का ताल और ध्वनि–रूपक का सहकार करते हैं। ढप, ढोलक, मृदंग, खंजरी आदि ताल वाद्य इस कोटि में आते हैं। ताल–वाद्यों में सबसे अधिक आकृष्ट करता है, 'नक्कारा' जो अपार जन–समूह के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले लोक–संगीत में रहता है। नौटंकी, स्वांग और रसिया शैली के दंगल,

इस वाद्य के बिना सूने रह जाते हैं। ब्रज प्रदेश में इस लोक–वाद्य का उल्लेख इस प्रकार होता है–

"तड़बड़ तड़बड़ तासै बाजें, तोताराम भया से भाजै"

टिप्पणी

भंगियों के लोकगीत 'ढप' नामक ताल–वाद्य के साथ गाए जाते हैं। इस ढप नामक ताल–वाद्य को ब्रज प्रदेश के कृष्ण–भक्त कवियों ने भी लिया है तथा होली के पदों में उल्लेख किया है। होली से संबंधित लोकगीतों से तो ढप नाम के ताल वाद्य को बजाए बिना श्याम का मतवालापन भी अधूरा रह जाता है–

ढप बाजौ है, स्याम मतवारे कौ, ढप बाजौ है।।

इस लोक–वाद्य का प्रयोग ब्रज प्रदेश के जिकड़ी भजन नामक लोकगीत के गायन में भी किया जाता है। ऐसा उल्लेख जिकड़ी भजन–परंपरा के आदि गायक हरफूला के इस जिकड़ी भजन में हुआ है–

'ढप तोमें सार न पायौ,
अज की खाल का काठ कौ घेरौ बामन बरस बजायौ।'

ब्रज–लोकसाहित्य का अध्ययन करने वाले डॉ. सत्येंद्र ने 'लोकसाहित्यिक–विज्ञान' नामक ग्रंथ में ऐसे लोक–वाद्यों की एक सूची प्रस्तुत की है, जिसका प्रयोग उन्होंने लोक गायक के प्रसंग से किया है।

विद्वान डॉ. सत्येंद्र ने 'आइने अकबरी' और जायसी के काव्य और आधुनिक काव्य के आधार पर बड़ा विस्तृत विवेचन किया है। गायकों के बाजे के अनुसार वाद्यों के प्रयोग का एक चार्ट भी दिया है। इस सूची के अनुसार वाद्य इस प्रकार है–

1. नगाज	2. ढोलक	3. तबला	4. मजीरा	5. सारंगी
6. डमरू	7. झांझ	8. घट थाली	9. ढप	10. चिकाड़ा
11. मकशबीन	12. इकतारा	13. बेल या बेली	14. तुम्बी बीन	15. हारमोनियम
16. तम्बूरा	17. करतालें	18. खंजरी।		

लोक–संगीत के साथ मिलने वाले वाद्यों के संबंध में यह कह सकते हैं कि ये लोक–जीवन में प्राप्त होने वाली वस्तुओं से ही बना लिए जाते है। उदाहरण के लिए, नरकुल से बांसुरी, तुम्बी से बीन और एकतारा आदि। इसी प्रकार ढोल जैसे जीवन के साधारण उपकरणों को भी वाद्य के रूप में प्रयुक्त कर लिया जाता है।

2.2.7 लोकगायकों की भूमिका

साधारण रूप से विचार करने पर मानव समाज की संपूर्ण इकाई को लोकगायक की श्रेणी में रखा जा सकता है। मानव समाज में ऐसा कोई भी बालक वृद्ध, स्त्री–पुरुष न होगा जिसे एकाध लोकगीत याद न हो। आनन्द की उमंग प्रवाहित होने पर प्रत्येक स्त्री–पुरुष और बालक लोकगीत गाता हुआ देखा जा सकता है। ऐसा प्रत्येक पुरुष जिसे हम नितान्त नीरस कहते हैं, उसे भी कभी न कभी लोकगीत गाते हुए देख सकते है।

लोकगीत–संग्राहकर्ता के लिए लोकगीत एक ऐसी खुली पुस्तक के समान है जिसे आसानी से नहीं खोला जा सकता। वह लोकशास्त्र का अद्‌भुत भण्डार है, जिसमें ज्ञान

की अपार राशि छिपी पड़ी है। इसे कोई रसिक ही महान् प्रयास से प्राप्त कर सकता है। यदि किसी लोकगायक की गीत–पुस्तिका को खोलकर पढ़ने का अवसर प्राप्त हो जाए और उसे खोल पाना संभव हो जाए तो लोकशास्त्र की अपरिमित सामग्री उसके कलकंठ से प्राप्त की जा सकती है। लेकिन इस कार्य को कर पाना कितना कठिन है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इसके लिए अनेक तत्ववेत्ताओं को जीवन भर लोकगायकों की शरण में रहना पड़ेगा। कुछ काल तक उनके पास रहकर इस ज्ञानराशि को नहीं प्राप्त किया जा सकता।

लोकगायकों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (अ) स्त्री वर्ग, (आ) पुरुष वर्ग, (इ) बालक वर्ग।

लोकगीतों को सुरक्षित रखने तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचाने का श्रेय नारी वर्ग को दिया जा सकता है। नारी कंठ के अजस्र स्रोत में गीतों की स्वच्छंद धारा अविरल गति से प्रवाहित होती रहती है। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक, उसके पालन–पोषण में, दिन भर कार्य करने में, किसी विशेष अनुष्ठान अथवा व्रत के समय और तीर्थयात्रा के समय स्त्रियां गीतों के इस स्रोत को प्रवाहित किये बिना नहीं रहतीं। वे किसी भी रिक्त क्षण में यथा खेत–खलिहान में जाते समय, खेत से लौटते समय अपने कल–कंठ से मधुर गीत गाकर अपनी तरफ श्रोताओं को आकर्षित करती हैं। गीत गाने का यह क्रम वर्ष भर चलता है। पौष माह में स्त्रियां शीत लहरी की तेजी के कारण नहीं गा पातीं। श्रावण और फाल्गुन मास में रूप–सौंदर्य की आकर्षक छटा के समय स्त्रियां अधिक गीत गाती हैं। इसके गीतों में भावों की भी अनेकरूपता देखी जा सकती है। ऋतुओं का क्रम इनके भावों को अनेक रूपता प्रदान करता है। फाल्गुन मास के गीत श्रृंगार परक होते हैं। श्रावण माह के गीतों में भाई–बहन स्नेह, सास के अपनी वधू पर अत्याचार तथा उसका अपने भाई को पुकारना, विरहिणी का अपने प्रवासी पति को बुलाना अथवा पति को प्रवास के लिए न जाने देना, अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राण की बलि देना आदि अनेक भाव रूपांकित हुए हैं। जन्म और विवाह–संस्कार के गीत एक तरफ उसके आनन्द को प्रकट करते हैं तो दूसरी तरफ मानव के आदि मानस को प्रकट करते हैं। इस प्रकार नारी का कंठ लोकगीतों को संरक्षित करने का प्रबल साधन है।

पुरुष भी गीत गाकर अपने हृदय के आनन्द को प्रकट करते हैं। खेत बोते, निहाते, गाड़ी अथवा रहट हांकते, गाय अथवा भैंस चराते, पुरहा लेते अथवा रास्ता चलते समय वे भी गीत गाते हैं। काम करने वाला यंत्र ही इनके लिए लोकवाद्य है जिसकी ध्वनि अथवा चाल के साथ ताल मिलाते हुए वे गीत गाते हैं। पुरुष वर्ग ने लोकवाद्यों की परिधि को बहुत विस्तृत कर दिया है। गाय चराते समय हाथ की लाठी और पृथ्वी, पृथ्वी पर बैठकर गाते समय ताली अथवा जांघें, निराते समय खुरपी अथवा फावड़ा, अन्य कुछ नहीं तो ईंटों के दो टुकड़े आपस में बजाना, गाड़ी हांकते समय गाड़ी के पहियों और बैलों के पैरों की ध्वनि, रहट की बाल्टियों की ध्वनि आदि उसके लोकवाद्य हैं, जिनके साथ ताल देता हुआ वह आनन्द के साथ गाता है। भारतीय जन समुदाय में कुछ गीत पुरुषों के द्वारा उपचार के लिए गाए जाते हैं। भूत–प्रेत उतारने के लिए घटथाली वाद्य के साथ 'रामायन' अथवा 'सोइले', सर्पदंश को निर्मूल करने के लिए 'भरनी', भूत उतारने अथवा मानसिक चिकित्सा

के लिए 'जस', बर्र एवं ततैया के काटने अथवा सिर, दांत अथवा पेट में दर्द होने पर अनेक तंत्र–मंत्र के गीत पुरुषों द्वारा गाए जाते हैं। अनेक भिक्षार्थी यथा–भोपा, सरमन, गंगापंथी गीत गाकर भिक्षा मांगते हुए देखे जा सकते हैं। कुछ जातियों में विवाह संस्कार के समय पुरुष लोकगायकों की मंडली गीत गाकर विवाह का अनुष्ठान पूर्ण करती है। विविध देवी–देवाताओं की मनौती मनाने और देवी जागरण के लिए पुरुष गायकों की टोलियां गीत गाती हैं।

बच्चे भी आनन्द के क्षण में अपने हृदय के आनन्दोल्लास को प्रकट करते हैं। शिशुओं के गीतों को दो वर्गों में विभक्त किया है। प्रथम, वे गीत हैं जो नौरता, झेंझी, टेसू, चठ्टे आदि अनुष्ठानों के लिए गाए जाते हैं। दूसरे वे गीत हैं, जिन्हें वे खेलते समय गाते हैं। सावन में बालिकाएं अपनी ज्येष्ठ बहिन के आगमन की प्रतीक्षा में गीत गाती हैं।

आधुनिक समय में शिक्षा के प्रसार तथा नवयुवक और नवयुवतियों में अभिजात्य की भावना घर कर जाने के कारण लोकसाहित्य का अपार विलुप्त होता चला जा रहा है। लोकगायक और लोकगायिकाओं के वे सफेद बाल जो अपने में लोकशास्त्र की असीमित निधि पचाए बैठे हैं, उसे अपने साथ ही लेते चले जा रहें है। हमारे नवयुवक इस अमूल्य लोकशास्त्र को संरक्षित रखने में असफल प्रतीत हो रहे हैं। अतः लोकसाहित्य–प्रेमियों का यह परम कर्तव्य है कि ज्ञान के इस असीमित भण्डार को शीघ्रातिशीघ्र संचित करने का सफल प्रयत्न करें।

इन लोकगायकों का अनेक दृष्टियों से महत्व है। गीत गाकर और सुनकर मनोरंजन करना बाह्य और ऊपरी उद्देश्य है। इन गीतों में ज्ञान की जो अपरिमित राशि संचित है, उसे संकलित करने की दृष्टि से इनका अनुपम महत्व है। लोकसाहित्य हमारे प्राचीन इतिहास के लिए खुले पृष्ठों के समान है। अनेक लोक कथाओं और लोकगीतों में अनेक ऐतिहासिक तत्व समाहित हैं। नैतिक दृष्टिकोण तथा मानव समाज को एकता के सूत्र में संबद्ध रखने के लिए भी लोकसाहित्य का अनुपम महत्व है। लोकगायक और कथाकार श्रोताओं के सम्मुख नीति के कैसे आदर्श रखते हैं? उसी के कारण जनसमुदाय में नीति का आधार–स्तम्भ खड़ा होता है।

2.3 लोककथा

लोककथा के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है–

2.3.1 लोककथा की परिभाषा

मानव के जन्म के साथ ही लोककथा का जन्म हुआ है। लोक में कहानी कहने की कला सर्वाधिक प्राचीन है। आदिम युग से ही मानव ने अपनी अनुभूतियों को कथा के रूप में कहा। उसने अपने अस्पष्ट जीवन–दर्शन को भी लोककथाओं के माध्यम से कहा। यह अभिव्यक्ति दो रूपों में हुई –

1. पौराणिक कथाओं के रूप में,
2. लोककथाओं के रूप में।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. गीत...........लोकगीत भी होते हैं।
2. लोकगीतों में मानव सभ्यता एवं............ के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं।
3. लोकगीतों की आत्मा लोक.............है।
4. लोकगीतों को सुरक्षित रखने तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचाने का श्रेय........वर्ग को दिया जा सकता है।

सही/गलत बताइए–

5. जीवन के सुख, जीवन के दुख–ये लोक गीत के बीज हैं।
6. विभिन्न ऋतुओं और उत्सवों पर गाए जाने वाले गीत मानव के ज्ञान के विकास, उल्लास, संघर्ष और सामूहिकता की कहानी है।
7. लोकगीतों की विशेषताओं के संबंध में दो–चार लोकसाहित्यविदों ने ही प्रकाश डाला है।
8. किसी साहित्य के सर्वांगीण अध्ययन के लिए उसके विभिन्न प्रकारों एवं वर्गों का सम्यक रूप से विश्लेषण करना आवश्यक नहीं होता है।

टिप्पणी

जिस कथा में कथावस्तु और उसकी कथन–प्रणाली साहित्यिक सौंदर्य प्राप्त कर लेती है, वह लोककथा कहलाती है। लोककथा में लोकजीवन के सुख–दुख, रीति–रिवाज, आस्थाएं, विश्वास, परंपराएं अभिव्यक्त होती हैं।

विद्वानों ने अपने मतानुसार लोककथा की परिभाषाएं दी हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक–प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता रहा है, जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता है।"

लोककथाओं के संबंध में एक मत यह है कि ये मूलतः धर्मगाथाएं ही हैं। समय के प्रभाव और मूल स्रोत से दूर होकर इन्होंने धर्मगाथाओं के नाम, स्थान त्याग दिए हैं। लेकिन यह मत आज मान्य नहीं है। 'लोककथा' शब्द अंग्रेजी के 'फोक टेल' के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग होता है। अंग्रेजी में इस शब्द के बहुत व्यापक अर्थ हैं। इसमें अवदान, लोककथा, धर्मगाथा, पशु–पक्षियों की कहानियां, नीतिकथाएं आदि लोक प्रचलित वार्ताएं सम्मिलित की जा सकती हैं।

स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ फोक लोर में लोककथा के संबंध में इस प्रकार लिखा है– "लोककथा की सुनिश्चित परिभाषा देने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। सामान्यतः इस शब्द के अंतर्गत समस्त परंपरागत आख्यानों और उनके विभेदों को स्वीकार किया गया है।"

वास्तव में, 'लोककथा' शब्द की परिभाषा देना अत्यंत कठिन है। अतः लोककथा संज्ञा को एक साधारण अर्थवाचक संज्ञा के रूप ही प्रयोग किया गया है। जिसका प्रयोग परंपरागत, वृत्तात्मक, विविध व्यंजना–रूपों के लिए किया जाता है। इसमें मौलिकता का अभाव होता है। यह सुनी जाती हैं और बार–बार कही जाती हैं। कभी–कभी कंठस्थ की गई लोककथा में नए कथक्कड़ के द्वारा कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दिए जाते हैं।

2.3.2 लोककथा के उद्‌भव के सिद्धांत

लोककथा के उद्‌भव के संबंध में विद्वानों के अनेक मत प्रचलित हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. **प्रसारवाद का सिद्धांत** – इस सिद्धांत के अनुसार लोककथाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रसार होता है। जिस प्रकार भाषा का एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रसार होता है, उसी प्रकार लोककथाओं का होता है। इस सिद्धांत के समर्थक विद्वानों का कहना है कि जिस प्रकार भाषा की उत्पत्ति के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार लोककथाओं की उत्पत्ति भी अनिश्चित है। ये विद्वान भारत और मैसोपोटामिया को लोककथाओं का उद्‌गम स्थल मानते हैं।

   आलोचना – लोककथाओं का उद्‌गम स्थल एक स्थान नहीं माना जा सकता, लोककथाओं के कथानक में भिन्नता इसका प्रमाण है। यदि लोककथाओं का उद्‌गम स्थल एक ही होता तो विश्व भर की लोककथाओं के कथानकों में समानता होती। इसलिए यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है कि लोककथाओं की उत्पत्ति भारत या मैसोपोटामिया में हुई। इसका कोई निश्चित प्रमाण भी नहीं है। यह कथन तो

टिप्पणी

सत्य है कि लोककथाओं का प्रसार होता है और वे मनुष्य के साथ तीव्रगति से फलैती हैं। अतः लोककथाओं का उद्‌गम स्थल एक नहीं माना जा सकता।

2. **प्रकृतिरूपवाद** – इस सिद्धांत के अनुसार मानव प्रकृति के रूप एवं घटनाओं को अपनी कल्पना के माध्यम से लोककथाओं में मानवीकरण के रूप में वर्णन करता है। सूर्य का उदय और अस्त होना, वर्षा होना, बिजली गिरना, ओले एवं आंधी होना, चंद्रकलाएं आदि घटनाएं देखकर मानव इन्हें अपनी कल्पना का आधार बनाता है और इन्हें मानव की क्रियाओं के रूप में चित्रित करता है। वेदों में उल्लिखित इंद्र देवता वर्षा का रूपक है। वहीं देवता लोककथाओं में राजकुमार और राजकुमारी के रूप में परिणत हो गए हैं। एक लोककथा में सूर्य और वायु की होड़ लगना तथा एक वस्त्रधारी व्यक्ति के कपड़े उतारने में वायु को परास्त करना आदि में आंधी की प्राकृतिक घटना को लोककथा के रूप में परिणत किया गया है। यह कहानी कल्पना की सहायता से ही इस रूप में आई है।

   आलोचना – यह सिद्धांत पौराणिक कथाओं के उद्‌भव के संबंध में तो सत्य माना जा सकता है; लेकिन अन्य लोककथाओं के संबंध में सत्य नहीं माना जा सकता। अन्य लोककथाओं के उद्‌गम के लिए प्रसारवाद के सिद्धांत को मान्यता देनी पड़ेगी, क्योंकि ये कथाएं भी प्रत्येक स्थान पर मिलती हैं। अतः अकेले इसी सिद्धांत को लोककथाओं के उद्‌भव का सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

3. **मनोविश्लेषणवाद** – फ्रायड और उनके अनुयायी इस सिद्धांत के प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने लोककथाओं का उद्‌गम यौन प्रवृत्तियों से माना है। उनके अनुसार मन के दो भाग हैं– चेतन और अचेतन। मन का अचेतन भाग हमारे चेतन मन की अपेक्षा अधिक विस्तृत और प्रबल होता है। अचेतन मन का निर्माण हमारी दमित वासनाओं के कारण होता है। काम प्रवृत्ति एक विकृत और असामाजिक प्रवृत्ति है, जिसकी तृप्ति सामाजिक जीवन में असंभव है। यह दमित काम वासना हमें स्वप्नों में, दैनिक जीवन की भूलों में और अधिक प्रबल होने पर मानसिक रोगों में अभिव्यक्त हुआ करती है, जिसके कारण मुनष्य का व्यवहार असाधारण हो जाता है। इसका ज्ञान स्वयं मानव को भी नहीं होता। ये यौन वासनाएं बाहर निकलने का अवसर खोजती हैं। इस सिद्धांत के अनुयायियों के अनुसार लोककथाएं इन्हीं यौन वासनाओं के रूप बदलने से उत्पन्न होती हैं। लोककथाओं में एक राजा की एक से अधिक रानियों की कल्पना, एक रानी का अधिक सुंदर होना और उससे अधिक प्रेम करना आदि दमित कामवासना के ही रूपक हैं, जो राजा के माध्यम से आकार लेते हैं। सामाजिक अंकुश के कारण व्यक्ति स्पष्ट रूप में अपनी सात रानियां नहीं कहता। इस प्रकार कहकर वह अपने चेतन मन को छलता है। अतः मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार लोककथाएं इन्हीं दमित कामवासनाओं का परिणाम हैं, जो अचेतन मन में दबी रहती हैं।

   आलोचना – यह सिद्धांत भी कुछ लोककथाओं के संबंध में तो सही माना जाता है, सभी के संबंध में नहीं। पौराणिक और धर्म कथाओं के संबंध में यह सिद्धांत लागू नहीं होता।

4. **इच्छापूर्तिवाद** – मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव अपनी दमित इच्छाओं की पूर्ति के लिए साहित्य–सृजन करता है, अतः लोककथाएं भी उसकी दमित इच्छाओं की पूर्ति का परिणाम हैं। ये दमित इच्छाएं कामवासना से पृथक भी हो सकती हैं, जिनकी पूर्ति स्वप्न और कल्पना के माध्यम से होती है।

   आलोचना – इस सिद्धांत में अन्य सिद्धांतों की अपेक्षा अधिक बल है। राक्षस, भूत–प्रेत, परी, दानव, पशु–पक्षी आदि की लोककथाएं उसकी विभिन्न इच्छाओं की पूर्तियों का आधार हो सकती हैं। लेकिन अकेले इसी सिद्धांत को भी लोककथाओं के उद्भव का सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

5. **व्याख्यावाद** – इस सिद्धांत के अनुसार लोककथाएं अपने समय की रूढ़ियों, नीतियों, व्यवहारों, प्रथाओं और सामाजिक नियमों की व्याख्या करती हैं। यहां तक कि नैतिकता की व्याख्या भी लोककथाओं के माध्यम से होती है। उदाहरण स्वरूप– 'एक राजा सदैव अपने धर्म पर चलता है, उसकी धर्मावलम्बिता को देखकर इन्द्र डर जाता है कि यह कहीं इंद्रासन न छीन ले। इंद्र राजा के पास जाकर छल करके राज्य छीन लेता है। राजा राज्य से बाहर चला जाता है। अब उस पर विभिन्न आपत्तियां आती हैं। धर्म मानव का वेश धारण करके राजा की विपत्ति में सहायता करता है और उसकी रक्षा करता है।' यह कहानी अपने धर्म पर चलने के लिए नैतिकता की व्याख्या करती है। कहानी के अंत में कहा जाता है कि जिस प्रकार राजा अपने धर्म पर चलता है उसी प्रकार अपने धर्म पर सभी को चलना चाहिए। विपत्ति में गिरने पर धर्म ने जिस प्रकार राजा की रक्षा की, उसी प्रकार धर्म सबकी रक्षा करे।

   आलोचना – व्याख्यावाद को लोककथाओं के उद्भव का एक कारण माना जा सकता है। सभी प्रकार की कहानियों के उद्भव का कारण इस सिद्धांत को नहीं माना जा सकता।

6. **विकासवाद** – टायलर इस सिद्धांत के प्रबल समर्थक हैं। उनके अनुसार लोककथाओं का उद्भव एक स्थान पर नहीं हुआ। संपूर्ण विश्व में मानव समाज की आधारभूत मानसिक समानता और उनका समान चिंतन ही इसके मूल कारण हैं। इसी कारण विश्व की सभी लोककथाओं में आधारभूत समानता देखी जा सकती है। लोमड़ी का चालाक होना, सौतेली मां का संतान के साथ कटु व्यवहार करना, परी, दाने और भूत–प्रेतों की कल्पना आदि घटनाएं विश्व भर की लोककथाओं में समान रूप से व्याप्त हैं।

   आलोचना – 'प्रसारवाद' भी इस सिद्धांत की व्याख्या कर देता है, इसलिए इस सिद्धांत की उपयुक्तता न्यून हो जाती है।

7. **यथार्थवाद** – यथार्थ घटनाओं के बार–बार वर्णन करने, दुहराने तथा एक–दूसरे से कहने के कारण लोककथाएं परिवर्तित और परिवर्द्धित होती हुई इधर–उधर फैलती हैं। इनके इधर–उधर फैलने पर देशकाल की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है, जिससे इनका रूप इतना बदल जाता है कि लोककथा के आदि रूप का पता नहीं

टिप्पणी

चल पाता। उसके रूप–परिवर्तन और परिवर्तन में पात्र तथा शैली तक बदल जाते हैं, लेकिन कथा का मूल कोई यथार्थ घटना ही होती है।

आलोचना – यह सिद्धांत बहुत कम कथाओं के संबंध में सत्य प्रतीत होता है। अधिकांश लोककथाएं मानव की कल्पना–प्रसूत होती हैं। लोककथा की यथार्थ घटना के अभाव में यह सिद्धांत नितांत लंगड़ा है।

8. **समन्वयवाद** – लोककथाओं के उद्‌भव के संबंध में उपर्युक्त सिद्धांतों में से कोई एक सिद्धांत पूर्ण नहीं माना जा सकता, क्योंकि सिद्धांत में कुछ दोष तथा अपवाद हैं। इन सिद्धांतों में चार सिद्धांत प्रमुख हैं–

(क) प्रसारवाद

(ख) प्रकृतिरूपकवाद

(ग) मनोविश्लेषणवाद

(घ) विकासवाद

इन चारों सिद्धांतों को मिलाकर समन्वयवाद की स्थापना की जा सकती है। लोककथाओं की प्राचीनता के विषय में दो मत नहीं हैं। यह विधा सबसे प्राचीन मानी जाती है और भारतवर्ष इसका सर्जना–केंद्र। यहां हम लोककथा की ऐसी विशेषताओं का विवेचन करना चाहते हैं, जिनके आधार पर हम शिष्ट या साहित्यिक कहानियों से इन्हें पृथक रूप में पहचान सकें। इसलिए सर्वप्रथम हम साहित्यिक कथा या आख्यायिका अथवा आधुनिक कहानियों से लोककथाओं का पार्थक्य निर्धारण करना चाहेंगे।

2.3.3 लोक कथाओं की विशेषताएं

यहां कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है जिनके आधार पर किसी भी कहानी को पहचाना जा सके और यह निर्णय दिया जा सके कि अमुक कहानी शिष्ट साहित्यिक कहानी है अथवा लोककथा। इस संबंध में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के द्वारा वर्णित लोककथाओं की अग्रांकित आठ विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. प्रेम का अभिन्न पुट
2. अश्लीलता का अभाव
3. मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरंतर साहचर्य
4. मंगल कामना की भावना
5. सुख और संयोग में कथाओं का अंत
6. रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता
7. उत्सुकता की भावना
8. वर्णन की स्वाभाविकता

1. **प्रेम का अभिन्न पुट** – अधिकांश लोककथाओं में प्रेम का अभिन्न पुट है। लोककथाओं का जीवन से संबंध होने के कारण यह प्रेम का वर्णन स्वाभाविक है।

कहीं पर यह प्रेम भाई का बहिन के प्रति है तो कहीं पति का पत्नी के प्रति। कुछ लोककथाएं मां का अपने बेटे के प्रति उत्कृष्ट वात्सल्य पर प्रकाश डालती हैं। बहिन अपने भाई की रक्षा के लिए अन्न–जल का त्याग कर विक्षिप्तों के समान घूमती हुई यश–पात्र बनती है। मां गरीबी में अपने पेट को काटकर बेटे का पालन–पोषण करती हुई वात्सल्य का आदर्श उपस्थित करती है। पति और पत्नी का प्रेम–वर्णन जो इन कथाओं में मिलता है, वह एक दिव्य और आदर्श प्रेम है, जिसमें कहीं भी अश्लीलता की गंध नहीं है। सूफी कवियों के काव्य ऐसे ही आदर्श प्रेम को आधार बनाकर लिखे गए हैं।

2. **अश्लीलता का अभाव** – लोक कथाओं के विकास में अशिक्षित लोगों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है, लेकिन उनमें कहीं भी अश्लील प्रेम का वर्णन नहीं है। प्रेम का जैसा भद्दा प्रदर्शन आधुनिक कहानियों में मिलता है वैसा वर्णन इन कहानियों में नहीं पाया जाता। आधुनिक कहानियों का प्रेम काम–वासना अथवा सौंदर्य लोभ जनित है। लोककथाओं में वर्णित प्रेम दिव्य, अलौकिक और आदर्श है।

3. **मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरंतर साहचर्य** – जिस प्रकार आधुनिक कहानियां क्षणिक घटना अथवा किसी विशेष पात्र को आधार बनाकर लिखी जाती हैं, उस प्रकार लोककथाएं क्षणिक घटना पर आधारित नहीं होतीं। लोककथाओं में वर्णित घटनाओं का साहचर्य हमारी शाश्वत मूल प्रवृत्तियों से होता है। सुख–दुःख, आशा–निराशा, काम–क्रोध, मद–लोभ आदि ऐसी ही मूल प्रवृत्तियां हैं, जो लोककथाओं में अभिन्न रूप में अनुस्यूत हैं।

4. **मंगल कामना की भावना** – मंगल कामना की भावना इन कहानियों की मुख्य विशेषता है। लोककथाएं कहते समय प्रत्येक कथा के अंत में सभी के मंगल की कामना की जाती है। जिस समय का सुख अमुक पात्र को मिला, वैसा सुख प्रत्येक श्रोता को मिले। इस प्रकार का पद प्रत्येक कथा के अंत में कहा जाता है। प्रायः सभी कहानियां लोकमंगल की कामना से ही कही जाती हैं। इनमें व्याप्त व्यष्टिमंगल ही लोकमंगल है। लोक कथाकार अपनी कहानियों में आदर्श घटनाओं को कहकर संसार में मंगल की कामना करता है।

5. **सुख और संयोग में कथाओं का अंत** – लोककथाओं में दुःख, वियोग, विपत्ति, हानि, निराशा आदि अनेक प्रसंगों का वर्णन हुआ है। कथा का पात्र अपने धर्म की रक्षा के लिए अथवा अन्य किसी कारण से अनेक कष्टों को भोगता है, लेकिन अंत में उसे सुख और सफलता प्राप्त होती है। लोककथाओं की यह मुख्य विशेषता है कि उनका अंत दुःख में नहीं, सुख में होता है, वियोग में नहीं संयोग में होता है। नायक और नायिका में किसी कारण से वियोग हो जाता है, लेकिन नायक चेष्टा करता हुआ और दुःखों को सहन करता हुआ सुख और संयोग प्राप्त करता है। कहानियों के अंत में कथाकार श्रोताओं के सुख की कामना करता है। कहानियों का यह गुण भारतीय मनीषा पर आधारित है।

6. **रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की प्रधानता** – लोककथाओं में रहस्य, रोमांच और अलौकिकता का अंश होता है। कुछ पात्र तो ऐसे वीर हैं, जो अलौकिक

टिप्पणी

कार्यों को क्षण मात्र में कर देते हैं, जैसे – अमृत से प्राण लौटा लाना अथवा घाव ठीक कर देना, असंभव कार्य को करके दिखाना। इनके सुनने से श्रोताओं में अद्‌भुत रस की जागृति होती है। राजा नल के जीवन की घटनाएं इसका सुंदर उदाहरण हैं।

7. **उत्सुकता की भावना –** लोककथाओं का यह मुख्य गुण है। इनमें अद्‌भुत रस की प्रधानता के कारण श्रोताओं की जिज्ञासा आगे की कथा को निरंतर सुनने के लिए बनी रहती है। जिस समय कथाकार कथा को कहता है, उस समय श्रोताओं की भीड़, उनका बार–बार आगे की घटना को पूछना– फिर क्या हुआ, 'अच्छा' और 'हां' शब्द कथा सुनने में उत्सुकता को प्रकट करते हैं। आगे की घटनाओं को जानने की जिज्ञासा कहानियों की मुख्य विशेषता है, लेकिन लोक–कहानियों में यह विशेषता मुख्य रूप से पाई जाती है और आधुनिक कहानियों से अधिक होती है।

8. **वर्णन की स्वाभाविकता –** लोककथाओं के वर्णन में स्वाभाविकता होती है। कथानक की घटनाएं, पात्र और कथन शैली एक साथ इस प्रकार पिरोए रहते हैं कि उनमें कृत्रिमता का अनुभव नहीं होता। कथक्कड़ कथानक का बहुत सही और स्वाभाविक वर्णन करता है। इन कहानियों में आधुनिक कहानियों के समान अतिरंजना की प्रवृति नहीं होती।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त लोककथाओं में निम्नलिखित विशिष्टताएं और होती हैं, जिनका उल्लेख आवश्यक है –

1. आशावादी दृष्टिकोण,
2. भाग्यवाद एवं कर्मवाद का समन्वय,
3. प्रकृति–चित्रण का बाहुल्य
4. समानता की व्यापकता।

1. **आशावादी दृष्टिकोण–** लोककथाओं में आधुनिक कहानियों के समान न तो निराशावाद के स्वर हैं और न पलायनवाद की प्रवृति। कहानियों के पात्र परिश्रम और उत्साह के साथ कठिन से कठिन कार्यों को करते हैं। कोई भी शक्ति इन्हें उनके उद्देश्य से विलग नहीं कर सकती। वे परिश्रम से शेरनी का दूध प्राप्त करते हैं, भूत, प्रेत और राक्षसों से युद्ध करके उन्हें जीतते हैं, भयावह जंगल इन्हें हतोत्साहित नहीं कर पाते, वे कल्पवृक्ष को उखाड़ लाते हैं और कुद्ध हाथी को अपने वश में कर लेते हैं। मैक्सिम गोर्की के कथनानुसार, लोककथाओं में इस बात को समझ लेना जरूरी है कि उनमें निराशावाद का नाम तक नहीं है। यद्यपि लोककथाओं के रचयिता बहुत ही कठिन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करते थे, उनके कठिन और कमर तोड़ देने वाले परिश्रम को शोषण विफल बना देता था और उनका व्यक्तिगत जीवन भी सुरक्षित नहीं था, क्योंकि उन पर कोई भी अत्याचार किया जा सकता था, फिर भी पूरे समुदाय को अपने अमरत्व और अपने शत्रुओं पर भावी विजय का विश्वास था।

2. **भाग्यवाद एवं कर्मवाद का समन्वय** – लोककथाएं किसी भी संस्कृति की जीती–जागती तस्वीर होती हैं। उनमें भाग्यवाद तथा कर्मवाद का समन्वय है। भाग्य के समर्थन के साथ कर्म की उपेक्षा नहीं की गई है। भाग्य की पूर्णता के लिए कर्म को स्पृहणीय माना गया है। भाग्यवाद के साथ कर्मवाद की भी प्रशंसा की गई है।

3. **प्रकृति–चित्रण का बाहुल्य** – लोककथाओं का उद्भव प्रकृति के सुरम्य प्रांगण में हुआ है और वे वहीं पर सुनी–सुनायी जाती हैं। इन कहानियों में तोता बोलता है, मोर नाचता है, सिंह न्याय करता है और वृक्ष साक्ष्य देता है। मैना, कोयल, कबूतरी और पिंडकुलिया हूंका भरती हैं। कहानियों के श्रोता हैं – मुस्कराता हुआ चंद्रमा, हंसती हुई तारावलियां, हरे–भरे खेत, लता–वितान, वृक्ष–शावक, कोयल की कुहु कुहु, पपीहे की पी–पी, गोधूलि की बेला में चरागाहों से लौटती हुई गाएं और उनसे मिलने के लिए आतुर बछड़े, रहट चलाता हुआ किसान, घास की गठरी लाती हुई मजदूरिन, सिर पर पानी की गगरी ले जाती हुई ग्रामीण नारी कहानी के वातावरण को प्राकृतिक और सुरम्य बनाती हैं। लोक कथाओं में प्रकृति और मानव एकाकार हो गए हैं। वे आपस में हंसते–बोलते हैं और एक–दूसरे के दुःख–सुख में हाथ बंटाते हैं।

4. **समानता की व्यापकता** – विश्व भर की लोककथाओं में अद्भुत समानता है। जो कहानियां भारतवर्ष में सुनी–सुनायी जाती हैं, वही कहानियां पात्रों के नामों के अंतर से दूसरे देशों में कही जाती हैं। लोककथाओं की इस समानता के कई कारण हैं। भ्रमणशील मानव जब किसी देश में जाता है तो वह अपने यहां की कहानी को वहां के कथा–प्रेमियों को सुनाता है और उसकी कहानियों को स्वयं सुनता है। इस व्यापक क्रिया के कारण कथाएं एक–दूसरे देश में फैली हैं। मानव के मानसिक धरातल की समानता के कारण और उसमें कल्पना तत्व की व्यापकता के कारण भी समान लोककथाओं का विभिन्न देशों में जन्म हुआ है। बुंदेलखंड में प्रचलित सोने की चिड़िया ग्रिम्स की फेयरी टेल्स में गोल्डन वर्ड के रूप में प्रस्तुत की गई है। बेरियर ऐलविन के कथासंग्रह में 'ब्रेव चिल्ड्रन' के नाम से दी गई कथा बुंदेली लोककथा 'काग बिड़ारिन' से साम्य रखती है। इसी प्रकार बुंदेलखंड की विशेष लोकप्रिय कहानी 'तीसमार खां' पंजाब में 'फतेखां' के नाम से और ग्रिम बंधुओं के संग्रह में 'ब्रेव लिटिल टेलर' के रूप में प्रचलित है।

2.3.4 लोककथाओं का भारतीय वर्गीकरण

अब हम प्राचीन विद्वानों द्वारा लोककथाओं के किये गए वर्गीकरण पर विचार करेंगे। प्राचीन विद्वानों ने कहानी के अग्रलिखित दो भेद माने हैं – (1) कथा तथा (2) आख्यायिका।

उनके अनुसार कथा वह रूप है जो कवि की कल्पना पर आधारित है और आख्यायिका का आधार ऐतिहासिक तथ्य होते हैं। यह वर्गीकरण प्राचीनतम वर्गीकरण कहा जा सकता है और संभवतः संस्कृत साहित्य में प्राप्त कथा–साहित्य के दृष्टिपथ में रखकर ही यह वर्गीकरण किया गया है और ऐसा लगता है कि कादंबरी तथा दशकुमार–चरित ही

कथा रूप निर्धारित करते समय दृष्टिपथ में रहे हों या आख्यायिका का रूप निर्धारित करते समय बाण भट्ट का हर्ष चरित उनकी दृष्टि में रहा होगा। इस प्राचीन वर्गीकरण को प्रस्तुत करने वाले विद्वानों का नामोल्लेख नहीं मिलता है।

इस प्राचीन वर्गीकरण के बाद हमारा ध्यान आनंदवर्धनाचार्य के उस वर्गीकरण की ओर जाता है, जिसमें निम्नलिखित तीन कोटियां निर्धारित की गई हैं – (1) परि–कथा (2) सकल–कथा तथा (3) खंड–कथा

आनंदवर्धन के अनुसार परिकथा वह श्रेणी है, जिसमें वर्णन का वैचित्र्य ही प्रधान रूप से देखा जाता है और रस परिपाक जैसी वस्तु के लिए उसमें कोई स्थान शेष नहीं रहता। इसी प्रकार सकल–कथा वह रूप है, जिसमें कथा का आद्योपांत वर्णन रहता है। तीसरी कोटि में गिनाई गई खंड–कथा का लक्षण यह होता है कि वह किसी प्रदेश विशेष की विशिष्टताओं को प्रदर्शित करती है। आधुनिक युग के कथा साहित्य में जिसे हम आंचलिक तत्व कहते हैं, वह किसी खंड–कथा का प्रतिनिधित्व करता है। इस वर्गीकरण के संबंध में डॉ. सत्येंद्र का निम्न उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है –

आनंदवर्धनाचार्य ने कथा के 3 भेद और माने हैं – 1. परि–कथा, जिसमें इतिवृत मात्र हो, रस–परिपाक के लिए जिसमें विशेष स्थान न हो, 2. सकल–कथा, 3. खंड–कथा। अभिनवगुप्त ने परि–कथा में वर्णन वंचित्रययुक्त अनेक वृत्तांतों का समावेश आवश्यक माना है। सकल–कथा में बीज में फलपर्यंत तक की पूरी कथा रहती है, खंड–कथा एक देश–प्रधान होती है। हेमचंद्र ने सकल–कथा को चरित का नाम दिया है। उदाहरण में समरादित्य कथा का उल्लेख किया है, उपकथा में चरित के अंतर्गत किसी प्रसिद्ध कथान्तर का वर्णन रहता है, चित्रलेखा को हेमचंद्र ने उपकथा माना है।

आनंदवर्धनाचार्य के वर्गीकरण के उपरांत एक अन्य वर्गीकरण हरिभद्राचार्य के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस वर्गीकरण में एक नवीन दृष्टि से कार्य किया गया है। इसलिए यह वर्गीकरण अपने से पूर्व वर्गीकरणों की प्रतिच्छाया न होकर मौलिक वर्गीकरण हो सकता है। हरिभद्राचार्य के अनुसार कथाओं की निम्न कोटियां निर्धारित की गई हैं–

1. अर्थ कथा – जिसमें अर्थ (धन) की प्राप्ति पर विशेष दृष्टि रहती है।
2. काम कथा – जिसका मूल विषय काम विषयक अनुभूतियां होती है।
3. धर्म कथा – जिसमें धार्मिक आख्यानों का बाहुल्य होता है। धर्मप्रिय व्यक्तियों के द्वारा ये कथाएं कही–सुनी जाती हैं।
4. संकीर्ण कथा – ये कथाएं उन लोगों से संबंधित होती हैं, जो पारलौकिक उद्देश्य के स्थान पर लौकिक उपलब्धियों पर बल देते रहते हैं।

2.3.5 पौराणिक कथाएं एवं उनकी विशेषताएं

पौराणिक कथाओं के दो रूप होते हैं – (1) अंतरंग, (2) बहिरंग। किसी जनजाति की कथाओं को सभी व्यक्ति जानते हैं। यह कथा का बहिरंग वर्ग कहलाता है। कथा का एक रूप ऐसा भी है जिसमें कथा का वास्तविक रहस्य होता है, यह अंतरंग वर्ग कहलाता है। कथा के आंतरिक रहस्य को जानने वाला वर्ग पुरोहित है। यह अपना समय विधि–विधानों

तथा कथाओं को जानने में लगाता है। यही वर्ग इन विधि–विधानों के पीछे एक दैवी घटना को जोड़ता है, जिससे जनजाति की उनमें दृढ़ आस्था हो जाती है। जनता तो कथा के केवल बहिरंग रूप को ही जानती है। अंतरंग कथाओं के कथानक विधि–विधानों की पुष्टि करते हैं। इस रहस्य को साधारण जनता नहीं जानती। पुरोहित इस रहस्य को अपने उचित पात्र 'शिष्य' पर प्रकट करते हैं। यहीं पर गुरू की महत्ता प्रतिपादित होती है।

लोकवार्ता क्षेत्र में पौराणिक कथा का अत्यंत महत्व है। कुछ विद्वान इनमें लोकवार्ता तत्व नहीं मानते। डॉ. सत्येंद्र ने इस संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं – "कुछ विद्वानों ने धर्मगाथा को लोकवार्ताभिव्यक्ति नहीं माना। कुछ का कहना तो यह है कि धर्मगाथा का पूर्व में रूप कुछ भी रहा हो, हमारे समक्ष तो वह महान कवियों की रचना के रूप में आती है। इन विद्वानों का संकेत ईलियड तथा महाभारत जैसी रचनाओं की ओर रहता है। कुछ का विचार है कि लोकवार्ता तत्व का संबंध आदिम मानव के वर्तमान अवशेषों से होता है, किंतु धर्मगाथा तो अतीत काल से संबंध रखती है। यह भी कहा जाता है कि धर्मगाथा में आदिम मानस की अभिव्यक्ति नहीं, क्योंकि आदिम मानस का विकास कुछ निम्न क्रम से हुआ है –

1. **मन–** इस शब्द का प्रयोग एक रहस्यात्मक शक्ति के अर्थ में मेलेनेशियन द्वीप–समूह में होता है। यह वस्तुतः आत्मा अथवा आत्मशक्ति का भी मूल सार है। कुछ विद्वान इस क्रम–विकास से सहमत नहीं। वे आत्मवतवाद याऐनिमेटिज्म से ही लोकमानस का मूल मानते हैं।
2. **परा–प्रकृतिवाद–** प्राकृतिक पदार्थो के श्रद्धाभयोद्रे की व्यापारों में किसी शक्ति की उद्भावना।
3. **आत्मवतवाद** – आत्मवत सर्वभूतेषु – मेरे जैसी बुद्धि, शक्ति, विवेक पशु–पक्षियों तथा पदार्थों में है।
4. **पदार्थात्मवाद** – समस्त पदार्थों में आत्मा है।
5. **देववाद** – देवताओं की कल्पना।

इन विद्वानों के विचार से इस पांचवीं स्थिति पर पहुंचने पर ही धर्मगाथाओं का उदय हुआ। अतः यह मूल लोकमानस से संबद्ध नहीं।

डॉ. सत्येंद्र उक्त मत से सहमत नहीं हैं। वे धर्मगाथा में लोकवार्ताभिव्यक्ति मानते हैं। वे धर्मगाथा को महाकाव्य से पूर्वजन्मा मानते हैं। उसी पूर्व रूप के कारण ही वे धर्मगाथाएं हैं। उनका कथन है कि धर्मागाथाओं का संबंध उतना ही वर्तमान में है जितना लोकवार्ता के आदिम अवशेषों का वर्तमान से है। उनका तर्क है कि "यदि धर्मगाथा का अतीत से संबंध है तो लोकवार्ता के आदिम अवशेषों को क्या बिना अतीत से संबंधित किये आदिम अवशेष माना जा सकता है।" तीसरा मतभेद उनका यह है कि आदिम मानस के विकास क्रम में पांचवीं स्थिति में पहुंचने पर धर्मगाथाओं के उदय की स्थिति मानी गई है। यहां मानस की सत्ता मिट चुकी थी? देववाद क्या लोकमानस की ही उद्भावना नहीं? यह भी स्पष्ट हो गया है कि लोकवार्ता का मूल लोकमानस से संबंध अनिवार्य नहीं। लोकमानस

की जो दाय रूप में स्थिति है, उसकी अभिव्यक्ति भी लोकवार्ता का एक तत्व है। धर्मागाथाओं के विन्यास में लोकमानस व्याप्त हैं।

टिप्पणी

फ्रेजर का भी यही मत था कि लोकवार्ता का मूल–मानस मैजिक (जादू–टोना) भाव का परिणाम है। डॉ. सत्येंद्र भी इसी मत से प्रभावित हैं। अतः धर्मगाथाओं को लोकसाहित्य का अंग माना जाएगा। उसका अध्ययन भी लोकगाथा, लोकगीत और लोकनाट्य के समान आवश्यक है। अंतर केवल इतना ही है कि विकास की विविध अवस्थाओं में से गुजरती हुई ये गाथाएं धार्मिक अभिप्रायों से अधिक संबद्ध हो गई हैं।

पौराणिक कथा की उत्पत्ति तथा विशेषताएं

1. **मानवीकरण** – प्राकृतिक उपकरणों में मानवीय भावनाओं तथा क्रियाओं का आरोप मानवीकरण कहलाता है। पौराणिक कथाओं में वर्णित सूर्य, चंद्रमा, पशु, पक्षी आदि मानव के समान ही व्यवहार करते हुए दिखाए गए हैं। जब आदि मानव ने देखा कि इन पशु–पक्षियों में भी मानव से अधिक शक्ति है और उसी की तरह वे क्रियाएं करते हैं तो वह उनमें दैवी शक्ति की संभावना कर उन शक्तियों से आतंकित होने लगा। तब उसे विश्वास हुआ कि इन प्रकृति के तत्वों में भी असीम शक्ति है। वे भी मानव की तरह क्रोध–प्रेम, द्वेष–घृणा करते हैं। यही मांनवीकरण कहा जाता है।
2. **स्पष्टीकरण** – प्राकृतिक तत्वों की शक्ति को स्पष्ट करने के लिए पौराणिक कथाओं का जन्म हुआ। इस रहस्यमय जगत के रहस्य को समझने के लिए वह उत्सुक हुआ। वह सृष्टि की उत्पत्ति, रचना और विकास का स्पष्टीकरण जानने का प्रयत्न करने लगा। उसने देखा कि गिलहरी की पीठ पर तीन रेखाएं हैं – क्यों? सूरज, बादल आदि मानव की तरह क्रिया करते हैं। बादल क्रोध से गरजते हैं – क्यों ? इनका रहस्य स्पष्ट करने का यह प्रयत्न करता है। इस रहस्य का स्पष्टीकरण वह इन शक्तियों के मानवीकरण से करता है। इस प्रकार के स्पष्टीकरण के लिए की गई कथानक की रचना पौराणिक कथा कहलाती है।
3. **प्रतिनिधिकरण** – पौराणिक कथाओं में वर्णित घटनाएं अपने वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत होती हैं। जब वहां पर किसी लोमड़ी अथवा बंदर का वर्णन आता है तो वह संसार की किसी घटना का वर्णन है। यह लोमड़ी और बंदर अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह प्रतिनिधिकरण भी सांसारिक घटनाओं का स्पष्टीकरण ही है। एक बार आदिकाल में कुत्ता और बिल्ली आपस में लड़ पड़े। आदिकाल में उनका लड़ना ही सदैव के लिए उनके द्वेष का कारण मान लिया गया और उस द्वेष की यही कहानी बन गई। आदम और हव्वा ने एक बार पाप किया और फिर वही पाप आगे भी चलता गया। आख्यानों की इसी विचारधारा का आधार प्रतिनिधिकरण है।
4. **प्राचीनता अथवा पौराणिक काल** – पौराणिक कथाएं प्राचीन काल से प्रचलित हैं। इनका निर्माण कब हुआ ? और किसने किया ? इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह जनजातियों में प्राचीन काल से ही मौखिक परंपरा में

टिप्पणी

प्रचलित हैं। यह माना जाता है कि इन कथाओं में आने वाले व्यक्ति पौराणिक पात्र की भांति ही कार्य करते हैं। वे सृष्टि–रचना से पहले भी विद्यमान थे। ये पौराणिक पात्र ही सृष्टि की रचना करते हैं। ये पात्र– काल्पनिक और यथार्थ– दोनों प्रकार के होते हैं। लेकिन यह कहना नितांत असंभव है कि इनमें कौन–सा पात्र काल्पनिक है और कौनसा यथार्थ।

5. **दार्शनिक आधार –** पौराणिक कथाएं मनुष्य की काल्पनिक रचना नहीं है, बल्कि इसमें सृष्टि की उत्पत्ति, रचना, विधि–विधानों पर आदिम मानव ने गहन और दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार किया था, जो पौराणिक कथाओं का आधार है। इतना अवश्य है कि इन कथाओं में आने वाले सूर्य, पशु–पक्षी, बादल आदि पात्रों के मानवीकरण के कारण कथाएं काल्पनिक–सी लगती हैं। यह दार्शनिक दृष्टिकोण इस प्रकार कार्य करता है कि एक मनुष्य दूसरे से लड़ता है, अतः यह क्रिया प्राकृतिक उपकरणों पर भी आरोपित की गई। सूर्य और बादल आपस में लड़ते हैं। जब सूर्य अपने तीक्ष्ण वाणों से बादलों को बेधता है तब वर्षा होती है। यही दार्शनिक विचार इंद्र और वृत के युद्ध का आधार है। परंतु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि इसमें कल्पना का कोई स्थान नहीं। प्रारंभ में मानवीकरण के लिए कल्पना का ही आश्रय लिया जाता है। सूर्य–चंद्र को मानव के समान क्रिया करते हुए दिखाना कल्पना का ही कार्य है। अतः इन कथाओं की रचना में दर्शन के साथ–साथ कल्पना का भी पुट है।

6. **विधि–विधानों का आधार –** भारतीय समाज में विधि–विधान प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। विद्वानों का कथन है कि इन्हीं का कारण जानने के लिए पौराणिक कथाओं की उत्पत्ति हुई। विधि–विधानों में विधि और निषेध, दो बातें होती हैं। विधि का अर्थ है – यह करना है तथा निषेध का अर्थ है – यह नहीं करना है। इन विधि–निषेधों का संबंध जब पौराणिक कथा से जोड़ा जाता है तो मानव यह समझता है कि उसने मूल कारण का पता लगा लिया। परंतु आदिकालीन मानव इस कारण की खोज में अधिक दूर तक नहीं जाना चाहता। उदाहरणार्थ – होली का त्योहार क्यों मनाया जाता है ? इस पर कथा की रचना इस प्रकार हुई। एक बार शिवजी तपस्या में ऐसे मग्न हुए कि पार्वती को भूल गए। पार्वती ने कामदेव से शिवजी की तपस्या भंग करने के लिए प्रार्थना की। शिवजी के पास जाकर कामदेव ने अपने बाण छोड़े। शिवजी ने क्रुद्ध होकर अपना तीसरा नेत्र खोला और कामदेव को भस्म कर दिया। कामदेव को भस्म हुआ देखकर उसकी पत्नी रति विलाप करती हुई शिवजी के पास आई। शिवजी ने रति पर प्रसन्न होकर कामदेव को वर दिया कि तुम बिना शरीर के लोगों के मन में रहोगे। इसलिए कामदेव का दूसरा नाम अनंग हुआ। उसी समय से काम अनंग रहकर प्रत्येक व्यक्ति के मन को तरंगित करता रहता है। इसी उत्साह की ओर मन की तरंग की अभिव्यक्ति के लिए बसंत ऋतु में होली का पर्व मनाया जाता है। इसी प्रकार की पौराणिक कथाओं से विधि–विधानों का समाधान किया जाता हैं।

टिप्पणी

2.3.6 लोककथा व पौराणिक कथा में अंतर

पौराणिक कथा और लोककथा आदिकालीन मानव के मौखिक परंपरागत साहित्य हैं। दोनों में एक कथानक होता है, लेकिन उस कथानक का आधार पृथक होता है। पौराणिक कथाएं पुराणों में पाई जाती हैं। प्राचीन होने के कारण भी इन्हें पौराणिक कहा जा सकता है। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति, देवी–देवताओं का वर्णन और जल, आकाश, वायु, सूर्य, अग्नि आदि प्राकृतिक तत्वों का निरूपण होता है। इनका लक्ष्य सृष्टि के गंभीर रहस्य को सुलझाना होता है। आदिकालीन मानव के धार्मिक विधि–विधानों का रहस्य पौराणिक कथाओं में ही अंतर्निहित है। लोककथाओं का उद्देश्य मनोरंजन है। उनमें कल्पना की प्रधानता होती है। पौराणिक कथा में धार्मिकता की आवश्यकता है, लेकिन लोककथा में यह आवश्यक नहीं। पौराणिक कथाएं सत्य मानी जाती हैं, लेकिन लोककथाएं नहीं।

एक बात और ज्ञातव्य है कि पौराणिक शब्द का तात्पर्य पुराणों से नहीं है। इसका अर्थ 'प्राचीन' अधिक समीचीन है। युग–युगांतर से जनजाति या समाज की सृष्टि की रचना तथा उत्पत्ति के संबंध में मूल धारणा को पौराणिक कथा कहा जाता है। जिन कथानकों में सृष्टि की उत्पत्ति, रचना, विकास, नाश आदि का वर्णन हो, दैवी घटना या देवी–देवताओं का वर्णन हो, जिसे जनजाति सत्य मानती हो और प्राचीन काल में घटित मानी जाती हो, उन्हें पौराणिक कथा कहा जाता है।

2.3.7 लोककथा कथन में कथक्कड़ की भूमिका

लोककथा के संदर्भ में कथक्कड़ की भूमिका को नहीं भुलाया जा सकता। इन लोककथाओं को विनाश के गर्त में जाने से कथक्कड़ों ने ही बचाया है। मौखिक परंपरा में कहानियों को बनाए रखने वाले कथक्कड़ होते थे, जो राजाओं को कहानियां सुनाकर उनसे बहुत बड़ा वेतन प्राप्त करते थे। ये कथक्कड़ पुरानी कहानियों को सुनाने एवं नवीन कहानियां रचने एवं उनके परिवर्तन–परिवर्धन में अपनी भूमिका निभाया करते थे। ये कथक्कड़ राजकुमारों और रानियों को कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन करते थे और स्वयं आनंद का जीवन बिताया करते थे। इन काथिकों की स्मृति इतनी विलक्षण होती है कि वे किसी एक कथा को वर्षों के उपरांत अक्षरशः उसी रूप में पुनः सुना देते हैं, जिस रूप में उन्होंने कई वर्ष पूर्व सुनाई थी। आज भी कथक्कड़ों का ऐसा व्यवसाय है कि वे कथा कहकर अपना जीवन–निर्वाह करते हैं। गांवों में आज ऐसी अनेक वृद्धाएं हैं, जो रात को अपने बच्चों को बिना विश्राम के कथा सुनाती रहती हैं।

लोककथाओं के कथन में यह भी उल्लेखनीय है कि कथक्कड़ की मनोवृत्तियां, संस्कृति, आचार–विचार, आस्थाएं और धार्मिक मान्यताएं अभिप्रायों के परिवर्तन में बहुत सहायक होती हैं। यदि कोई लोककथा बुंदेलखंड से राजस्थान में पहुंचती है तो वहां की संस्कृति और सभ्यता का उस पर प्रभाव पड़ता है तथा कथक्कड़ अहिंसावादी और सरस्वती का उपासक है तो वह बलि संबंधी अभिप्राय को परिवर्तित कर फल–पुष्पादि के रूप में उस कथा–रूढ़ि का उल्लेख करेगा। इसी प्रकार शिवोपासक कथक्कड़ कथा में आए हुए देवी–देवताओं के साथ शिव की चर्चा अवश्य करेगा। ऐसे ही स्थानीय देवी–देवताओं को

मान्यता देने वाला कथक्कड़ दूर देशों में आने वाली कहानी में अपने प्रिय देवी–देवताओं का उल्लेख अवश्य करेगा।

लोककथा के रूप–परिवर्तन में कथक्कड़ के मानसिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। यदि एक ही कहानी को दो विभिन्न क्षेत्रों के कथक्कड़ कहें तो उसके कथन में शैलीगत भिन्नता अवश्य होगी। ब्लूम फील्ड का कथन है कि सर्वत्र प्रत्येक कथक्कड़ और संग्रहकर्ता, मानो ऐसा लगता है कि इन अभिप्रायों की समूची माला को उठाता है जिसकी तुलना हम मनके की माला से कर सकते हैं, उसे वह छिन्न–भिन्न कर देता है, जिससे मनके चतुर्दिक बिखर जाते हैं और फिर प्रारंभ से वह इन मनकों को पिरोता है। इस प्रकार अभिप्राय एक से होने पर भी कई प्रकार की लोककथाओं का जन्म हो जाता है। जबकि लोककथा का शैली–तत्व निर्भर करता है कथक्कड़ के मानसिक स्तर पर, तब कथक्कड़ का मानसिक धरातल निर्भर करता है देश और संस्कृति के ऊपर। साहित्य, समाज का दर्पण है, उतना ही सत्य सिद्ध होता है लोककथा के क्षेत्र में, जितना कि किसी अन्य क्षेत्र में।

लेकिन आदिवासी कथक्कड़ अपने पूर्वजों से प्राप्त कथाओं को अपरिवर्तित रूप में स्मरण करते हैं और उसी रूप में दूसरों को सुनाया करते हैं। उनका विश्वास है कि यदि पूर्वजों की बनायी गई कथाओं में कुछ परिवर्तित किया जाएगा तो वे अप्रसन्न होकर शाप दे देंगे। शाप के भय के कारण ये लोग परंपरागत कहानियों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करते। आदिवासियों की कहानियां आज उसी रूप में सुनी जा सकती हैं, जिस रूप में 40 वर्ष पूर्व सुनी गई होंगी। ये कथाएं पंचायती फैसलों में प्रमाण के रूप में कही जाती हैं। उनका विश्वास है कि उनके पूर्वजों ने विभिन्न विवादों में जो निर्णय दिए हैं, वे ही लोककथाओं के रूप में प्रचलित हैं। आज भी भीलों, वारेलाओं, गोड़ों, वैगाओं, कोलों, उरावों और संथालों में जब पंच फैसले देते हैं तो उसका समर्थन करती। इस कहानी को सुनने के उपरांत फैसले को प्रामाणिक रूप में स्वीकार किया जाता है। आदिवासियों के इन कथक्कड़ों की स्मृति बहुत विलक्षण होती है।

2.4 लोकगाथा

लोकगाथा के स्वरूप का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है–

2.4.1 लोकगाथा की परिभाषा

'बैलेड' शब्द के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी परिभाषाएं दी हैं। कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

- "Simple narrative songs that belong to the people and or handed on by word of mouth."

  - Frank Sidgwick

  सरल वर्णनात्मक गीत, जो लोक की संपत्ति हो और जिसका प्रचार मौखिक रूप से हो।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. आदिम युग से ही मानव ने अपनी अनुभूतियों को......... रूप में कहा।
10. प्रसारवाद सिद्धांत के अनुसार लोककथाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए ....होता है।
11. लोककथाओं में रहस्य,.........और अलौकिकता का अंश होता है।
12. पौराणिक कथा और लोककथा आदिकालीन........... के मौखिक परंपरागत साहित्य हैं।

सही/गलत बताइए–

13. लोककथाओं के संबंध में एक मत यह है कि ये मूलतः धर्मगाथाएं नहीं हैं।
14. व्याख्यावाद को लोककथाओं के उद्भव का एक कारण माना जा सकता है।
15. विश्वभर की लोककथाओं में अद्भुत असमानता है।
16. लोककथा के रूप परिवर्तन में कथक्कड़ के मानसिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है।

टिप्पणी

- "A simple spirited poem in short stanzas in which some popular story is graphically told." *-Dr. Murray*

(बैलेड छोटे पदों में रचित एक ऐसी स्फूर्तिदायक कविता है, जिसमें कोई लोकप्रिय कथा हो तथा जो अत्यंत ही सजीव रीति से कही गई हो।)

- "A poem meant for singing, quiet impersonal in material probably connected in its origin with the communal dance but submitted to a process of oral tradition among people who are free from literary influences and fairly monogenous in character."

- F. B. Gummere

(बैलेड गाने के लिए रचित ऐसी कविता है, जो सामग्री की दृष्टि से नितान्त अवैयक्तिक और संभवतः उत्पत्ति की दृष्टि से समूह–नृत्यों से संबद्ध हो, किंतु उसमें मौखिक परंपरा प्रधान हो गई हो।)

- "A form of narrative folk song." *- Mac Edward leach.*

(बैलेड आख्यानात्मक लोकगीत का एक प्रकार है।)

"The name given to a style of verse of unknown authore ship dealing with episode or simple motive rather than sustained theme written in a stanzoic form more or less fixed and suitable for the oral transmission and treatment showing litle or nothing of fineness of deliberate art."

(बैलेड ऐसी– शैली का नाम है जिसका रचयिता अज्ञात हो, जिसमें साधारण आख्यान हो और जो सरल मौखिक परंपरा के लिए उपयुक्त तथा ललित कला की सूक्ष्मताओं से रहित हों।)

- "A ballad is a simple narrative lyric, a song of known or unknown origin that tells a story."

(बैलेड एक साधारण कथात्मक गीत है, जिसकी उत्पत्ति संदिग्ध है।)

W.P. Kar नामक विद्वान ने जो परिभाषा दी है, उसका हिंदी रूपान्तरण निम्न प्रकार है–

"बैलेड वह कलात्मक गेय काव्य है, जो या तो लोककंठ में विकसित है या लोकगाथा के सामान्य रूप–विधान को लेकर किसी विशेष कवि के द्वारा रचा जाता है, जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकता दोनों होती है, जिनका प्रचार जन साधारण में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता रहता है।"

एक अंग्रेज विद्वान जॉसिफ स्टिफले ने 'बैलेड' शब्द के विभिन्न तीन रूपों का प्रयोग किये जाने का उल्लेख किया है– (1) साहित्य के क्षेत्र में सीमित और विशिष्ट अर्थ में; (2) सामान्य अर्थ में तथा (3) संगीत के क्षेत्र में।

इनमें पहले अर्थ में 'बैलेड' शब्द का अर्थ होता है– कथात्मक तथा गीतात्मक काव्य; जबकि दूसरे में इसका अर्थ होता है– किसी ऐसे लघुगीत के लिए भावात्मकता

को उभारना हो, तीसरे में इसका अर्थ है– ऐसा गीत जो वाद्यरहित या समवेत स्वर में गाया जाए।

2.4.2 लोकगाथा की विशेषताएं

लोकगाथाओं में कुछ सामान्य विशेषताएं होती हैं, जिनके कारण इसे लोकसाहित्य की अन्य विधाओं से पृथक किया जाता है। विश्व की समस्त लोकगाथाओं में ये विशेषताएं समान रूप में पाई जाती हैं। राबर्ट ग्रेब्स और डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय ने लोकगाथाओं की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. अज्ञात रचनाकार
2. प्रमाणिक मूलपाठ की कमी
3. संगीत तथा नृत्य का साहचर्य एवं सहयोग
4. स्थानीयता की गंध
5. मौखिक परंपरा
6. अलंकृत शैली का अभाव
7. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव
8. रचनाकार के व्यक्तित्व का अभाव
9. दीर्घ कथानक की विद्यमानता
10. टेकपदों की पुनरावृत्ति
11. इतिहास की संदिग्धता

इन विशेषताओं में तीसरी विशेषता 'संगीत एवं नृत्य का साहचर्य एवं सहयोग' भारतीय लोकगाथाओं में नृत्य का समावेश न होने के कारण सामान्य विशेषता भी भारतीय लोकगाथाओं पर पूर्णतः घटित नहीं होती। ब्रज प्रदेश की लोकगाथा' सरवर नीर से माता–पिता की सेवा, देश भक्ति, विशुद्ध प्रेम आदि उपदेश मिलते हैं। अन्य विशेषताएं भी संख्या में वृद्धि मात्र हैं।

भारतीय लोकगाथाओं में निम्नलिखित सामान्य विशेषताएं होती हैं–

1. रचनाकार और रचनाकाल का अज्ञात होना
2. सामूहिक व्यक्तित्व की समाहिति
3. लोककंठ पर अवस्थित और उत्पन्न
4. दीर्घकथानक की अभिव्यक्ति एवं उसकी ऐतिहासिक संदिग्धता
5. लोकबोली; मुहावरों, कहावतों और अलंकारों का प्रयोग
6. गेयता; लेकिन शास्त्रीय संगीत का अभाव
7. लोक छंद और तुक की लापरवाही
8. आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति

9. भावात्मकता और कल्पनागत सरलता का आधिक्य
10. यथार्थ चित्रण का प्राधान्य, चेष्टापूर्वक लाई जाने वाली कलात्मकता तथा वाग्जाल या अनावश्यक सामग्री का अभाव।

टिप्पणी

1. **रचनाकार और रचनाकाल का अज्ञात होना–** संसार में अनेक लोकगाथाएं गायी जाती हैं, लेकिन उनके रचनाकार और रचनाकाल के सामने अब तक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। ब्रज प्रदेश में हीर रांझा, ढोला, सरवर नीर, महादेव को ब्याहुलौ, राधाचरन कौ ढोला आदि अनेक लोकगाथाएं हैं; लेकिन इनके रचनाकार अज्ञात हैं। यह तो सर्वमान्य है कि लोकगाथाएं किसी एक व्यक्ति अथवा समूह द्वारा ही रचित की गई होंगी। लेकिन प्रश्न यह है कि इनमें रचनाकार का नाम क्यों नहीं होता। इसका उत्तर यही है कि इन रचनाओं में रचनाकार के नाम की छाया नहीं होती है। लोकगाथाएं लोक के कंठ पर बढ़ती, घटती अथवा सुधरती हुई जीवित रहती है और वे इतनी परिवर्तित हो जाती हैं कि वे किसी एक व्यक्ति द्वारा रचित प्रतीत नहीं होतीं। रचनाकार का व्यक्तित्व भी सामूहिक व्यक्तित्व में परिवर्तित हो जाता है। राबर्ट ग्रेब्स के अनुसार, "रचनाकार अपनी रचना को हेय समझता है। यही कारण है कि वह उसे समाज में प्रकट करने में सकुचाता है।" इस तथ्य में कोई बल नहीं। हेय रचना समाज में इतना सम्मान नहीं पा सकती। जनसमुदाय में उन्हें सुनने के लिए श्रोताओं की अपार भीड़ एकत्र होती है, यह उनकी लोकप्रियता का प्रमाण है। लोकगाथाओं में प्राचीन समाज का चित्रण अवश्य हुआ है, जिससे उनके प्राचीन होने का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है, लेकिन उससे उनका निश्चित रचनाकाल निर्धारित नहीं किया जा सकता।

2. **सामूहिक व्यक्तित्व की समाहिति–** यह तो निश्चित है कि लोकगाथा किसी व्यक्ति की रचना होती है। लेकिन उसमें रचनाकार के व्यक्तित्व की झलक नहीं होती। लोककंठ की खराद पर चलते–चलते रचनाकार का व्यक्तित्व विलीन होकर सामूहिकता प्राप्त कर लेता है। लोकगाथाओं में 'मैं' का तो नितान्त रहता है। इस संबंध में गूमर ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है, "परंपरा, विषय–प्रधानता तथा व्यक्तित्वहीनता से युक्त इन गाथाओं में कथानक होता है। मौखिक परंपरा के साथ वर्ण्य–विषय की प्रधानता होते हुए भी व्यक्ति का पता नहीं चलता।"

   वस्तुतः शिक्षित और काव्यशास्त्र के नियमों के ज्ञाता कवियों के अलावा कृतित्व में कवियों के व्यक्त्वि की झलक होती है। इसी व्यक्तित्व के निजीपन के कारण उसकी रचना अन्य कवियों से पृथक होती है। लोककवि संपूर्ण समाज को आत्मवत् समझता है, इसलिए उसके व्यक्तित्व में सामूहिकता की झलक होती है, उसकी वाणी में निजीपन नहीं होता। उसकी भाषा लोकबोली होने के कारण समुदाय द्वारा शीघ्र ही अपना ली जाती है।

3. **लोककंठ पर अवस्थित और उत्पन्न –** लोकगाथाएं लोककंठ पर अवस्थित होती हैं। आजकल शिक्षा के प्रसार तथा लोकसाहित्य के अध्ययन पर बल देने के कारण इन्हें लिपिबद्ध कर लिया गया है। आधुनिक लोककवियों ने भी लोकगाथाएं

अपनी लेखनी से पुनः रची हैं। लेकिन वे इतनी लोकप्रिय नहीं हैं, जितनी लोककंठ पर अवस्थित लोकगाथाएं।

टिप्पणी

हमारा वेदकालीन साहित्य भी मौखिक था। शिष्य वेदों की शिक्षा उनके श्रवण में ही प्राप्त करते थे, इसीलिए उन्हें श्रुति कहा जाता है। यह साहित्य उस समय लोकप्रिय था। लोकगाथाओं की लोकप्रियता का भी यही रहस्य है। जो साहित्य जितना लोककंठ पर अवस्थित रहता है, उतना ही लोकप्रिय होता है। सिजविक ने लिखा है कि, "यदि किसी लोकगाथा को आपने लिपिबद्ध कर दिया तो यह निश्चित है कि आपने उसकी हत्या करने में योग कर दिया।" लोकसाहित्य के अवरुद्ध होते ही उसका विकास, गति, परिवर्तन और परिवर्धन अवरुद्ध हो जाता है।

लोकगाथाओं के लोककंठ से उत्पन्न होने का अर्थ है कि इसका निर्माता 'लोक–इकाई' होता है और वह जन–समुदाय में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अवतरित होती रहती है। इसका जन्मदाता और धात्री लोककंठ ही है।

लोककंठ रूपी यान पर चलते–चलते यह दूसरे क्षेत्रों को जाती है, जहां इसमें स्थानीयता की गंध आ जाती है। वहां के लोकगायक भी इसमें कुछ परिवर्तन कर लेते हैं। इस परिवर्तन में रूप और वस्तु दोनों ही का परिवर्तन सम्मिलित है। लेकिन लोकगाथा के मूल स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। लोकगायकों के आचार–विचार, रहन–सहन तथा उनकी अभिव्यक्ति की शैली का प्रभाव अवश्य पड़ जाता है। इसे ही स्थानीयता की गंध कहा जाता है। एक ही क्षेत्र में विभिन्न लोकगायकों के आचार–विचार का लोकगाथा के स्वरूप पर प्रभाव पड़ता है।

प्रो. टिरेज ने कहा है कि "लोकगाथाएं किसी घटना के कारण ही निर्मित होती हैं और उसके निर्माण के साथ ही साथ उस विशेष प्रान्त के वातावरण और स्थानीयता का भी उसमें समावेश हो जाता है।" लोकगाथाओं का लोक–संस्कृति की दृष्टि से बहुत कम महत्व है। उसमें क्षेत्र–विशेष के रीति–रिवाज, लोक–विश्वास, जादू–टोना, शकुन–अपशकुन, वन–पर्वत, भूत–प्रेत आदि का उल्लेख होता है।

4. **दीर्घ कथानक की अभिव्यक्ति एवं उसकी ऐतिहासिक संदिग्धता –** लोकगाथाओं में एक दीर्घ कथानक होता है। दीर्घ कथानक के कारण ही वे लोकगीतों से पृथक की जाती हैं। लोकगीतों में एक ही अनुभूति की भावपूर्ण व्यंजना होती है, लेकिन लोकगाथा में जीवन की विभिन्न घटनाओं का वर्णन होने के कारण उसका आकार दीर्घ हो जाता है। उसके दीर्घाकार होने का दूसरा कारण यह है कि इसमें लोकगायक कुछ न कुछ अपनी तरफ से जोड़ लेता है। कथानक की दीर्घता एवं उसमें जीवन की विभिन्न घटनाओं और अनुभूतियों के चित्रण के कारण इसे लोक महाकाव्य कहा जा सकता है। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से लोकगाथा महाकाव्य की बराबरी नहीं कर सकती, लेकिन आकार और लोक संस्कृति की दृष्टि से इसका महत्व महाकाव्य से कम नहीं है। महाकाव्य के समान ही लोकगाथाएं कथा–पात्रों के चरित्र का सांगोपांग वर्णन करती हैं।

टिप्पणी

भारत में लाकगाथाएं दीर्घाकार और लघ्वाकार दोनो ही प्रकार की मिलती हैं। ब्रज प्रदेश में हीर–रांझा की लोकगाथा तीन सौ पृष्ठों की है। 'नल का ढौला' नामक लोकगाथा भी इससे कम आकार की नहीं है। भोजपुरी में 'आल्हा' 620 पृष्ठों में प्रकाशित हुई है। गोपीचंद, भरथरी, सरवर नीर, महादेव की ब्याहुलौ आदि लोकगाथाएं भी दीर्घाकार ही हैं।

लोकगाथाओं का यह कथानक ऐतिहासिकता की दृष्टि से संदिग्ध होता है। लोकगाथाकार कोई इतिहास–विशेष नहीं होता और न उसकी रचना के समय इतिहास का ध्यान रखा जाता है। लोकगाथा की रचना लोकरंजन की दृष्टि से होती है। मूल लोकगाथाकार अपनी प्रारम्भिक रचना के समय इतिहास की रक्षा करता भी है तो बाद में उसके रूप में इतना परिवर्तन हो जाता है कि इतिहास की रक्षा नहीं हो पाती। इस विषय में सभी विद्वान एकमत हैं कि लोकगाथाओं में या तो ऐतिहासिकता होती ही नहीं अथवा इसका इतिहास संदिग्ध होता है आल्हा–ऊदल, हीर–रांझा, सरवर–नीर, गोपीचंद आदि ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं लेकिन इनसे संबंधित कुछ घटनाओं को संदिग्ध कहा जा सकता है।

5. **लोकबोली, मुहावरों, कहावतों और अलंकारों का प्रयोग** – हडसन ने शैली की दृष्टि से महाकाव्य को दो वर्गों में विभक्त किया है। – (1) अलंकृत काव्य, 2. संवर्द्धित काव्य। अलंकृत काव्य काव्यशास्त्र के नियमों के ज्ञात शिक्षित कवि का काव्य है। रस, छंद, अंलकार आदि की दृष्टि से यह काव्य बहुत पुष्ट होता है। संवर्द्धित काव्य की रचना युग–युग में विभिन्न कवियों के द्वारा की जाती है। लोकगाथा को इसी वर्ग में रखा जा सकता है। लोकगाथाकार अशिक्षित और काव्यशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ सहृदय प्राणी होता है। इसलिए वह अपने कृतित्व में लोकबोली, लोक जीवन से उठाए गए अप्रस्तुत तथा लोक संस्कृति के प्रभावित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। इस दृष्टिकोण से लोकगाथाओं के सौंदर्य को सहज और स्वाभाविक कहा जा सकता है। अलंकृत काव्य के समान इनमें कृत्रिमता का प्रयोग नहीं होता। इस दृष्टिकोण से लोकगाथाओं के सौन्दर्य को सहज और स्वाभाविक कहा जा सकता है। अलंकृत काव्य और लोकगाथा में वही अंतर है, जो अंतर एक उद्यान और वनस्थली के विकास पुष्ट में होता है। यह माता और शिशु के वार्तालाप के समान सरल होता है। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम गीत को हृदय का धन तथा महाकाव्य को मस्तिष्क का धन कहा है। लोकगाथाएं लोक में निर्मित और परिवर्द्धित होती हैं। इसलिए उनमें लोक बोली, लोक विश्वास, रीति–रिवाज, मुहावरों, कहावतों एवं लोक जीवन से उठाए गए अप्रस्तुतों का प्रयोग होता है।

6. **गेयता; लेकिन शास्त्रीय संगीत का अभाव** – लोकगाथाएं गेय होती हैं; लेकिन इनमें शास्त्रोल्लिखित संगीत के नियमों का पालन नहीं किया जाता । अंग्रेजी में 'बैलेड' समवेत स्वर में नृत्य और संगीत के साथ गाए जाने वाले गीतों को कहते हैं। राबर्ट ग्रेब्स ने लोकगाथाओं को उत्तेजना और पुनरावृत्ति–मूलक संगीत के अभाव में 'अधूरी' कहा है। अंग्रेजी लोकगाथाओं में नृत्य का भी समावेश होता है।

टिप्पणी

लोकगाथाएं संगीत के कारण ही लोकप्रिय और प्रभावात्मक होती हैं। यह संगीत 'लोक संगीत' कहा जा सकता है, जिसकी गेयता शास्त्रीय संगीत से भिन्न है। लोकभाषा में संगीत के समावेश के कारण ही लोकगायक इन्हें झूम–झूम कर भावपूर्ण मुद्रा में गाते हैं। यह संगीत स्वरों के उतार–चढ़ाव पर अधिक निर्भर करता है। आल्हा गीत के समय भावों के ओज के साथ लोकगायक के स्वर में भी ओज आ जाता है; उसके हाथ और पैरों में गति उत्पन्न हो जाती है, आंखें ऊपर चढ़ जाती हैं, वह ढोलक को और अधिक तेजी से बजाने लगता हैं। इस प्रकार वह श्रोताओं में वीर रस जगाकर गायन को प्रभावात्मक बनाता है। गोपीचंद और भरथरी की लोकगाथाओं में करुणापूर्ण भावों के उदय के साथ गायक स्वर–परिवर्तन करके श्रोताओं का भी करुणासिक्त कर देता है। संगीत के माध्यम से लोकगाथाओं को जीवंत बनाया जाता है। गाथाएं गाने के लिए बकरबीन, सितार, ढोलक, सारंगी, चिकाड़ा आदि लोकवाद्य प्रयोग किये जाते हैं।

7. **लोकछंद और तुक की लापरवाही** – लोकगाथाओं में काव्यशास्त्र में वर्णित छंदों का प्रयोग नहीं होता। इनमें प्रयुक्त छंदों को लोकछंद कहा जा सकता है। लोककवि को मात्राओं का ज्ञान न होने के कारण छंदों में मात्राओं की निश्चित संख्या नहीं मिलती। कवि–कंठ पर किसी लोकगाथा के गायन की लय प्राकृतिक नदी की जलधारा के समान अविरल प्रवाह से चलती है। इसलिए उसमें लय का तो पूर्ण निर्वाह होता है, लेकिन मात्राओं की पूर्ण रक्षा नहीं हो पाती। किसी चरण में मात्राएं घट जाती हैं तथा किसी में बढ़ जाती हैं। यह अंतर कहीं–कहीं पर 6–6 अथवा 7–7 मात्राओं तक पहुंच जाता है। लेकिन लोकगायक इस अंतर को गायन के समय पूर्ण कर लेता है। कम मात्राएं होने पर धीरे–धीरे गाकर तथा अधिक मात्राएं होने पर शीघ्रतापूर्वक गाकर लय की रक्षा कर ली जाती है। लोकगाथाओं के छंदों में कहीं–कहीं पर तुकांत की समता की रक्षा नहीं हो पाती। इसे भी लोकगायक अपनी गायन कुशलता के कारण श्रोताओं को नहीं अखरने देता।

8. **आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति** – भारतीय लोकगाथाओं की प्रवृत्ति आदर्शोन्मुख होती है। यह प्रवृत्ति नीति वचनों की तरह उपदेश देने के समान नहीं होती है। लोकगाथाकार आदर्श चरित्रों को श्रोताओं के सम्मुख रखकर उन्हें भावान्दोलित और श्रद्धावनत करता है। श्रोतागण इन्हें बहुत श्रद्धा के साथ सुनते हैं। भारतीय लोकगाथाओं में आदर्श मातृ–पितृ–भक्ति, आदर्श प्रेम, आदर्श त्याग, आदर्श ईश्वर भक्ति, देशभक्ति, स्वाभिमान आदि प्रकट हुए हैं। गाथाओं के अंत में लोक मंगल की भावना भी होती है।

लोकगाथाओं में आदर्श व्यक्तियों के जीवन और उनके चरित्र का सांगोपांग वर्णन होता है। उसमें सदाचार और नीति की शिक्षा नहीं दी जाती, बल्कि आदर्श जीवन की घटनाएं सामने रखकर श्रोताओं के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया जाता है।

इसके विपरीत अंग्रेजी लोकगाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव होता है। राबर्ट ग्रेब्स का कथन है कि "यदि लोकगाथा का लोकगायक लोकगाथा को

नैतिक या उपदेशात्मक बनाता है तो इसका अर्थ है कि वह समुदाय से विच्छेद करके सुसंस्कृत रचनाओं का पक्ष लेता है। पक्षपात के कारण उसमें और समुदाय में एक प्रकार की पृथकत्व की भावना उत्पन्न हो जाती है।"

टिप्पणी

भारतीय संस्कृति आदर्शोन्मुख है। यहां जन समुदाय आदर्श चरित्रों को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। लोकगाथाओं में जब श्रोता आदर्श चरित्रों को क्रियान्वित होते हुए सुनते हैं तो श्रद्धावनत हो जाते हैं। लोकगाथाओं के इसी गुण के कारण भारत में व्यवसायी प्रकृति के मनुष्य उन्हें गाकर पैसा कमाने का व्यवसाय करते हैं।

9. **भावात्मकता और कल्पनागत सरलता का आधिक्य** – लोकगाथाओं का कथानक इतना सरल और स्वाभाविक होता है कि उन्हें सुनकर श्रोतागण भाव मग्न हो जाते हैं। महाकाव्यों के समान कल्पनागत जटिलता और आलंकारिकता यहां पर नहीं पाई जाती। यह प्राकृतिक वन्य कुसुम के समान सहज ही विकसित उद्यान है, जो अपनी स्वाभाविकता और सरलता से श्रोताओं को भाव विभोर कर देता है। इसे समझने के लिए बुद्धिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती। लोकगायक कथानक की मुख्य घटनाओं को श्रोताओं के सम्मुख इस प्रकार से गाता है कि वे भावानुरूप रसमग्न हो जाते हैं।

10. **यथार्थ चित्रण का प्राधान्य** – भारतीय लोकगाथाओं में यथार्थ घटनाओं के चित्रण की प्रधानता है, काल्पनिक घटनाओं का यहां कोई स्थान नहीं। कथानक मुख्य घटनाओं का वर्णन करते हुए तेजी से आगे बढ़ता है। उसे अलंकृत करने के लिए व्यर्थ की काल्पनिक घटनाओं का आश्रय नहीं लिया जाता। कथानक में वाग्जाल के प्रवेश से उसका लोकतत्व समाप्त हो जाता है तथा उसका सामूहिक व्यक्तित्व भी नहीं रहता। व्यर्थ ही कलात्मकता से लोकगाथा में रचनाकार के व्यक्तित्व का समावेश हो जाता है और वह शिष्ट साहित्य के अधिक समीप होता जाता है। कथानक का शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ना तथा यथार्थ चित्रण का प्राधान्य लोकगाथाओं की मुख्य विशेषता है।

2.4.3 लोकगाथाओं की उत्पत्ति

इस संबंध में एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि संसार में प्राप्त लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में कौन सा सिद्धांत कार्य करता रहा होगा? इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व; यह तो मोटे रूप से माना जा सकता है कि यह मानव समाज का आदिम साहित्य–रूप है। सामूहिक नृत्य–गीतों के साथ आगे चलकर पौराणिक पात्रों या देवी–देवताओं से संबंधित गाथाएं भी जुड़ गईं। इस प्रकार नृत्य–गीतों में समाविष्ट पौराणिक इतिवृत्तयुक्त स्वरूप ही लोकगाथाओं के निर्माण का मूल रूप कहा जा सकता है। परवर्ती युग में नृत्य, संगीत और गाथा इन तीनों कला–रूपों का स्वतंत्र रूप में पृथक–पृथक विकास हुआ। इसी आधार पर ऋग्वेद में प्राप्त नाराशंसी गाथाओं, संवादों तथा सूक्तों को हम भारत की प्राचीनतम लोकगाथाओं के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। मानव इतिहास का प्रथम पृष्ठ इस प्रकार की बातें बताता है कि आदि मानव सामूहिक इकाई में ही अपने जीवन की सार्थकता मानता था, इसलिए ऐसी

टिप्पणी

लोकगाथाओं की उत्पत्ति का स्वत्व भी लोकसमूह को ही प्राप्त रहा। इसीलिए समूह का प्रत्येक व्यक्ति इन्हें अपनी कृति मानकर आवश्यकता एवं रूचि के अनुसार परिवर्तन–परिवर्द्धन करता रहा और इस प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, एक स्थान से दूसरे स्थान और एक कंठ से दूसरे कंठ तक जाते–जाते मूल रूप में कुछ परिवर्तित होकर ही लोकगाथाएं जीवित रहीं। गेय तत्व की प्रधानता होने के कारण इनमें लोक–संगीत एवं नृत्य का समावेश भी हो गया। यही सामान्य रूप से लोकगाथाओं के उद्भव की परिस्थितियों का विचार माना जाता है।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में इतना तो इनके लक्षण निर्धारित करते समय ही बताया गया था कि इनके रचयिता का पता नहीं चल पाता। इस पर हम पहले विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने विचार किया है और अपने–अपने मत भी व्यक्त किये हैं। इसी आधार पर हम भी उन विद्वानों के नामोल्लेख के साथ उनके सिद्धांतों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

1. लोक–निर्मितिवाद या समुदायवाद
2. व्यक्तिवाद
3. जातिवाद
4. चारणवाद
5. व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद

इनका विस्तृत एवं क्रमिक परिचय इस प्रकार है–

1. **लोक–निर्मितिवाद या समुदायवाद** – इस सिद्धांत को मानने वाले पाश्चात्य विद्वानों में जैकब ग्रिम और विल्हेम ग्रिम का नाम उल्लेखनीय है। इसी सिद्धांत को मानने वाले स्टीन पाल भी हैं। इन विद्वानों का मत है कि लोकगाथाओं की रचना समग्र जन–समूहों द्वारा हुई है और इसीलिए उन्हें अपौरूषेय भी माना जाता है।

   आलोचना – इस सिद्धांत की आलोचना में दो बातें कही जा सकती हैं–

   (अ) इसको सर्वमान्य सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

   (आ) सभी गाथाओं को समुदाय की रचना इसलिए नहीं माना जा सकता है कि कुछ गाथाएं मूल रचयिता ने जिस रूप में रची होंगी, उनमें बहुत थोड़ा ही परिवर्तन हो पाया, ऐसी गाथाओं पर यह सिद्धांत लागू नहीं हो पाता।

2. **व्यक्तिवाद** – श्लेगेल का मत है कि कोई लोकगाथा किसी समूह की कृति नहीं है, उसकी रचना के पीछे किसी लोककवि विशेष का हाथ अवश्य रहता है, उसकी आत्मा उस रचना में पग–पग पर मुखर होती है। लोकगाथा ही नहीं, लोकसाहित्य के अन्य रूपं भी किसी–न–किसी व्यक्ति की रचना तो होते हैं, जिसमें उसके रचयिता के व्यक्तित्व की स्पष्ट प्रतिच्छाया दृष्टिगत होती है। फिर लोकगाथाओं को किसी व्यक्ति की रचना न मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। किसी

टिप्पणी

लोकगाथा में उसके रचयिता की व्यक्तिगत रुचि, उसकी व्यक्तिगत अद्भुत गहराई इत्यादि की छाया अवश्य पड़ती है। यह बात द्रष्टव्य है कि श्लेगल का यह सिद्धांत ग्रिम के सिद्धांत के ठीक विपरीत है।

आलोचना – व्यक्तिवाद का सिद्धांत एक दृष्टि से पूर्णरूपेण उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि लोकसाहित्य वस्तुतः लोक–मानस की प्रतिकृति होता है और लोक–मानस चूंकि व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व को अपने में पचा लेता है, अतः लोक–साहित्य की कोई भी विधा लोक–मानस की उपज ही कही जाती है, भले ही उसकी रचना किसी व्यक्ति ने की हो। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लोकगाथाओं के रचयिता का हमें पता नहीं होता और वह व्यक्ति द्वारा रचित होने पर भी अनेक व्यक्तियों के द्वारा किये गए परिवर्तन–परिवर्द्धन के उपरांत उस विकसित रूप या अवस्था में आ जाती है, जो हमें देखने को मिलता है या प्रकाशित होने पर संसार के समक्ष आता है।

3. **जातिवाद** – यह सिद्धांत अंग्रेजी विद्वानों ने प्रतिपादित किया और यह मान्यता स्थापित की गई कि कोई भी लोकगाथा किसी जाति–विशेष के द्वारा ही निर्मित होती है। किसी जाति के मेले या उत्सव पर एकत्रित जन–समूह की सामान्य कृति, अनुभूतियों की अभिव्यक्ति लोकगाथाओं में होती है। आदिम युग में एक जाति विशेष के इकट्ठे होने पर उनकी वाणी का सम्मिलित रूप ही लोकगाथा कहा जाता है, ऐसा विश्वास है। विचारपूर्वक देखने पर ग्रिम के समुदायवाद के सिद्धांत से यह पर्याप्त मेल खाता है और यहां समुदाय के स्थान पर लोकगाथा के रचयिता के रूप में जाति विशेष को माना गया है। इस स्थापना में विशेष सहायता इस सिद्धांत से ली गई है कि किसी जाति–विशेष का चिंतन, उसकी रूढ़ियां, परंपराएं और अनुभूति की दिशाएं समान होती हैं। इसलिए किसी जाति के प्राणियों में संस्कार–गत साम्य की प्रवृत्ति के कारण एक जाति ही लोकगाथा की सृष्टि करती है। भारतवर्ष की लोकगाथाओं में भी ऐसी अनेक गाथाएं देखने को मिलती हैं, जिनकी रचना किसी जाति–विशेष के मेलों या पर्वों के अवसर पर की जाती है। उदाहरण के लिए नैनीताल और अल्मोड़ा जिले में नन्दाष्टमी के अवसर पर नन्दादेवी के पास लगने वाले मेले में या भोजपुरी के कजली गीतों में यही सिद्धांत कार्य कर रहा होता है। ब्रज प्रदेश में भी अहीरों, जोगियों और भीख मांगने वाली अन्य जातियों के द्वारा रचित सरवन, भरथरी, गोपीचंद इत्यादि लोकगाथाएं इसी सिद्धांत के अनुसार निर्मित प्रतीत होती हैं।

आलोचना – जातिवाद के सिद्धांत से यदि लोकगाथा की उत्पत्ति मानी जाती है तो कहना न होगा कि जितनी भी लोकगाथाएं हैं, वे किसी जाति–विशेष की कृति मानी जाएंगी। यह सिद्धांत चूंकि स्वीकार्य नहीं है, इसलिए हम यह निष्कर्ष तो निकाल सकते हैं कि कुछ लोकगाथाएं जाति–विशेष की कृति हो सकती हैं, परंतु सभी लोकगाथाएं नहीं हो सकतीं।

4. **चारणवाद** – जैसा कि इस सिद्धांत के नाम से विदित होता है, लोकगाथाएं चारणों की कृति के रूप में स्वीकृत हुई हैं। इस मत के प्रवर्त्तक विद्वान हैं– बिशप

परसी और समर्थक हैं– जोसिफरिट्सन और प्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट। इसके अतिरिक्त इस सिद्धांत के पोषक के रूप में प्रो. पॉल का नाम लिया जा सकता है। इस मान्यता के अनुसार लोककथाओं का निर्माण चारणों के द्वारा माना जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि चारण और भाट विरुदावलि और यशोगान या अनुनय करते हुए राजे–महाराजों और सामंतों की प्रशंसा के लिए कुछ कविताओं का निर्माण करते रहे हैं। संयोग से वीरगाथाओं का प्रणयन भी ऐसे चारणों ने किया है। जब हम हिंदी साहित्य के आदिकाल पर दृष्टिपात करते हैं तो हमारा ध्यान ऐसी वीरगाथाएं प्रस्तुत करने वाले काव्यों की ओर जाता है, जिनमें किसी आश्रयदाता राजा की प्रशंसा रहती है अथवा किसी शौर्यपूर्ण घटना का चित्रण होता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल में प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' का रचयिता चंद्र चारा ही था। इस सिद्धांत के पृष्ठपोषक बिशप परसी का कथन तो यह भी सिद्ध करता है कि छोटे–छोटे वर्णनात्मक गीत भी चारणों द्वारा निर्मित होते रहे हैं।

आलोचना – लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में यह कहना कि इन गाथाओं की रचना के पीछे चारणों का ही हाथ रहा है, यह पूर्णतः में सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अनेक रचनाएं ऐसी हो सकती हैं, जिन्हें चारणों ने न रचा हो और वे किसी अन्य वर्ग के लोककवियों के द्वारा रची गई हों। इसलिए निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मात्र चारणों ने ही सभी लोकगाथाओं की रचना नहीं की होगी। इसलिए इस सिद्धांत को सर्वमान्य सिद्धांत के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता है।

5. **व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद** – लोकगाथाओं के संबंध में यह पूर्ण सिद्धांत है जिसे प्रो. चाइल्ड ने सर्वप्रथम हमारे समक्ष उपस्थित किया। प्रो. स्टेनस्ट्रीप ने इसका समर्थन किया। इन विद्वानों ने वस्तुतः एक समन्वयवादी दृष्टिकोण की व्याख्या की है, जिसमें व्यक्ति और समुदाय दोनों का समन्वित रूप ही स्वीकार किया गया है। इन विद्वानों का मत है कि किसी लोकगाथा की रचना के पीछे किसी व्यक्ति–विशेष की प्रतिभा का ही हाथ रहा होगा, तथापि उसकी प्रतिभा में वैयक्तिकता की छाप नहीं पड़ पाती है, उसकी रचना एक व्यक्ति द्वारा ही की गई हो। तथापि उसका मन या हृदय लोक का मन और हृदय हो जाता है। लोक का मन और हृदय हो जाने पर यह संभव है। इस प्रकार इस सिद्धांत में एक तरह से जाति समुदाय द्वारा लोकगाथा की रचना मानने वाले सिद्धांत का भी समाहार हो जाता है, दूसरी ओर उस व्यक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, जो काव्योदय की पृष्ठभूमि में कार्य करता रहा हो। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस सिद्धांत का मूल्यांकन करते समय इस प्रकार का संकेत किया है कि यह सिद्धांत दोनों प्रकार के विरोधों का शमन करते हुए अग्रसर हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांतों ने अपना–अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है और इसीलिए उनमें से किसी एक को अपने में पूर्ण या समर्थ सिद्धांत नहीं कहा जा सकता है।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त हमारा ध्यान उन विद्वानों की ओर जाता है, जिन्होंने इस समस्या को हल करने के लिए कुछ प्रयत्न किया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का नाम इस दिशा में उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने 'समन्वयवाद' के नाम से एक नया सिद्धांत दिया है, इस मत के पीछे उनका विचार यही रहा कि अंग्रेजी विद्वानों ने जिन 5 सिद्धांतों का उल्लेख किया है, उन सबका यत्किंचित् योगदान रहता है। कुछ लोकगाथाएं तो समुदाय विशेष के द्वारा रचित होती हैं। किंतु वे किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा ही रची गई होती हैं। कुछ गाथाएं जाति विशेष के जन–समूह के एकत्र होने पर उन सब के द्वारा रची गई होती हैं और कुछ चारणों के द्वारा भी। डॉ. उपाध्याय ने कुछ ऐसी लोकगाथाओं का उल्लेख किया है, जिनमें लोककवियों के व्यक्त्वि का प्राधान्य है, जैसे – भोजपुरी का 'विदेशिया' गीतनाट्य, बुंदेलखंड में ईश्वरी नामक लोककवि के 'फागें' तथा ब्रज में मदारी का 'ढोला' और सनेही राम इत्यादि के गीत। इसके अतिरिक्त जातियों के द्वारा निर्मित गाथा के प्रसंग में अहीरों के 'विरहा' और दुसाध लोगों के 'पचरा' गीतों का उल्लेख किया जाता है। चारणों के द्वारा रचे जाने वाले प्रबंध–काव्यों की तो एक सुव्यवस्थित परंपरा ही रही है। साथ ही रचयिता के व्यक्तित्व का लोप होने पर लोक–मानस का प्रधान स्वर भी प्रस्फुटित होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी सिद्धांतों का मिला–जुला रूप ही लोकगाथा की उत्पत्ति के पीछे कार्य कर रहा होता है। डॉ. उपाध्याय के शब्दों में, "लोकगीतों तथा लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में पूर्वोक्त सभी सिद्धांतों का समन्वय अपेक्षित है। सभी पांचों सिद्धांत मिलकर गाथाओं की उत्पत्ति के कारण हैं, न कि पृथक–पृथक।" अतः लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में डॉ. उपाध्याय का सिद्धांत समन्वयवाद ही अधिक समीचीन ज्ञात होता है।

2.4.4 लोकगाथाओं की विभिन्न श्रेणियां

लोकगाथाएं लोकसाहित्य का एक विशिष्ट प्रकार का काव्य–रूप होती हैं जो प्रबंध तत्व का निर्वाह करते हुए रोचकतापूर्ण वातावरण में लोककवियों का वाणी–विलास कही जा सकती हैं। इसी आधार पर यह काव्य–विधा लोकगीतों से पृथक मानी जाती है। यही नहीं, लोकगाथा की भावभूमि भी लोकगीतों की भाव–भूमि से भिन्न होती है। लोकगाथाओं के विभाजन के पूर्व हम प्रसंगतः लोकगीतों एवं लोकगाथाओं का अंतर स्पष्ट करना भी आवश्यक समझते हैं। इसलिए इन दोनों विधाओं की पार्थक्य–भेदक रेखाओं का निर्धारण किया जाता है। डॉ. शंकरलाल यादव के इस संबंध में निम्न विचार द्रष्टव्य हैं–

"लोकगाथा एक लोक महाकाव्य होता है। महाकाव्यों में मिलने वाली विशेषताओं–

1. सक्रियता
2. चरित्र
3. पृष्ठभूमि
4. कथा – में से लोकगाथा में प्रथम पर विशेष बल रहता है। अतः गाथा में गीतों की भांति प्रेम के लिए विशेष स्थान रहते हुए भी संघर्ष की प्रधानता रहती है"

अब लोकगाथाओं के वर्गीकरण पर विचार करें। यह तो अत्यंत प्रमुख प्रश्न है कि लोककथाओं में कोई लंबी प्रेम–कथा या वीर–कथा रहती है जो आश्चर्यजनक तत्वों को

साथ लेकर कुतूहल की सृष्टि करने में समर्थ होती है। इसलिए सरल विभाजन तो विषय–वस्तु के आधार पर किया जा सकता है।

टिप्पणी

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगाथाओं के प्रथम प्रकार का श्रेणी–विभाजन तो उनमें प्रतिपादित विषय–वस्तु या आकार के आधार पर हो सकता है। इनमें से आकारगत विभाजन उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि आकार के आधार पर मोटी विभाजक–रेखा तो खींची जा सकती है, किंतु इस आधार पर किया गया वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। अतएव विषयगत भेद के आधार पर किया गया वर्गीकरण ही उचित माना जा सकता है।

वर्गीकरण की संभावना एवं औचित्य पर विचार करने के उपरांत कुछ विद्वानों के द्वारा किये गए वर्गीकरणों का संक्षेप में उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। लोकगाथाओं का वर्गीकरण डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने भी किया है, जिन्होंने जनता में चिरकाल में चली आने वाली गाथाओं को परंपरागत कहकर पुकारा है। पंजाब की लोकगाथाओं का संग्रह करने वाले अंग्रेज सिविलयन विद्वान सर आर. सी. टैम्पुल ने इन्हें लीजेण्ड्स कहकर पुकारा है और निम्नांकित चक्रों में लोकगाथाओं को विभक्त किया है–

1. रसालू चक्र (शौर्यपूर्ण, चमत्कारपूर्ण एवं साहसिक कार्यों वाली लोकगाथाएं)
2. पाण्डव चक्र (पौराणिक गाथाएं)
3. गूगा चक्र (इसमें शौर्य एवं सिद्धि का सम्मिश्रण रहता है। योद्धा संतों की गाथाएं इस वर्ग में ली गई हैं)
4. सिद्ध चक्र (पूरनमल या धन्ना भक्तों से संबद्ध गाथाएं)
5. सखी–सरवर चक्र (इसमें शृंगार प्रधान गाथाएं हैं)
6. स्थानीय प्रवीर चक्र (इसमें पंजाब के स्थानीय साहसी पुरुषों के किस्से समाविष्ट किये गए हैं।)

इसी विभाजन–शृंखला में डॉ. शंकरलाल यादव के द्वारा किया गया वर्गीकरण देना भी उपयुक्त होगा। उन्होंने लोकगाथाओं में प्राप्त तत्वों के प्राधान्य के आधार पर निम्न तीन वर्गों में लोकगाथाओं को विभक्त किया है– 1. प्रेम गाथाएं 2. वीर गाथाएं, 3. अद्भुत गाथाएं।

कहना न होगा कि लोकगाथाओं में प्रेम, वीरता एवं अद्भुतता जैसे तीनों तत्वों का ही दर्शन किया जाता है।

लोकगाथाओं के वर्गीकरण की शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रो. गूमर का उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि यह वर्गीकरण अंग्रेजी की लोकगाथाओं को आधार मानकर किया गया है, तथापि यह इतना विस्तृत एवं सांगोपांग है कि इसमें भारतीय लोकगाथाओं के सभी प्रकार अंतर्भुक्त किये जा सकते हैं। यह वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–

1. प्राचीनतम गाथाएं
2. कौटुम्बिक गाथाएं
3. अलौकिक गाथाएं

4. पौराणिक गाथाएं
5. सीमांत गाथाएं
6. आरण्यक गाथाएं

टिप्पणी

1. **प्राचीनतम गाथाएं** – इन लोकगाथाओं का मुख्य विषय शुद्ध दाम्पत्य प्रेम है। ये गाथाएं आदिकाल से चली आ रही हैं । इनकी उत्पत्ति 'ग्रीस' देश में मानी जाती है। इन गाथाओं में समस्यामूलक गाथाओं का प्रमुख स्थान है। प्राचीनकाल में ये गाथाएं प्रश्नोत्तर शैली में सामूहिक रूप में गायी जाती थीं। यथा– 'गिल ब्रेन्टन' की गाथाएं, स्काटलैंड की गाथाएं, लोकिनवार की गाथाएं।
2. **कौटुम्बिक गाथाएं** – ये परिवार से संबंधित लोकगाथाएं हैं जिनमें किसी परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों और व्यवहारों का चित्रण किया जाता है। पंजाब की लोकगाथाओं में उसका सुंदर चित्रण है। इनमें सास–वधू और ननद–भावज के संबंधों की झांकी मिलती है। यूरोप की लोकगाथाओं में भाई और बहिन के संबंधों का चित्रण है जो पर–पुरुष के साथ व्यभिचार तथा बलात्कार तक सीमित है। यह प्रेम भारतीय भाई–बहिन के संबंधों के समान सात्विक और उच्चकोटि का नहीं है।
3. **अलौकिक गाथाएं** – इन लोकगाथाओं में मृत्यु–गीत, जादू द्वारा शरीर का बदलना, अंध विश्वास आदि से संबंधित गीत गाए जाते हैं। यूरोप में इस प्रकार की लोकगाथाएं गायी जाती हैं। कर्सिका टापू पर बहुत मार्मिक मृत्यु गीत गाए जाते हैं। पति की मृत्यु होने पर उसकी विधवा का विलाप बहुत हृदय–विदारक होता है, जिसे सुनकर अन्य स्त्रियां भी दुःख से अभिभूत हो जाती हैं। यूरोप में परियों की प्रेमकथाएं बहुत प्रचलित हैं। मनुष्य परियों के प्रेम में फंसकर परिस्तान पहुंच जाता है। भारतीय लोकगाथाओं में इस प्रकार की अलौकिकता, जादू–टोने और भूत–प्रेत के वशीभूत होने की भावना नहीं है।
4. **पौराणिक गाथाएं** – किसी पौराणिक कथा के आधार पर लोक प्रचलित गाथा को पौराणिक गाथा कहते हैं। भारत में भी इस प्रकार की गाथाएं गायी जाती हैं 'नल–दमयंती' तथा 'महादेव कौ ब्याहुलौ' ऐसी ही लोककथाएं हैं। शेटलैंड में 'औरिफिन्स' की लोकगाथा प्रचलित है, जो प्राचीनकाल से मौखिक रूप में गायी जाती है। एक गाथा में किसी किसान के खेत बोने का उल्लेख है जिसमें हास्य रस का स्रोत प्रवाहित हो रहा है। अवधी में 'धनि धनि रे पुरिस तोर भागि, करकसा नारि मिली' हास्य रस का उत्कृष्ट गीत है।
5. **सीमान्त गाथाएं** – इंग्लैंड और स्काटलैंड के सीमान्त भागों में प्रचलित होने के कारण इन लोकगाथाओं को सीमान्त गाथाएं कहा जाता है। इनमें सीमान्त पर होने वाले छोटे–छोटे युद्धों का उल्लेख होता है। अवधी बोली में सन् 1857 ई. के विद्रोह से संबंधित अनेक गीत गाए जाते है। राजस्थान में राय जगदेव की वीरगाथा इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। वीर कुंवरसिंह का पंवारा इसी प्रकार की लोकगाथा है। इन लोकगाथाओं को ऐतिहासिक लोकगाथाएं कहा जा सकता है।

6. **आरण्यक गाथाएं** – इंग्लैंड में राबिन हुड नामक व्यक्ति हुआ है, जो धनी व्यक्तियों की लूट–पाट करके उस धन से दीन–दुखियों की सहायता करता था। लूटपाट करता हुआ वह ग्रीनवुड नामक जंगल में रहता था, इसलिए उससे संबंधित लोकगाथा को भी ग्रीन के नाम से कहा जाता है। शासन के नियमों की अवहेलना कर लूट करने के कारण वह लुटेरा कहलाया, लेकिन दीन–दुखियों के हृदय में उसके लिए अपरिमित स्थान था और इसी कारण वह जन–समुदाय में इतना प्रसिद्ध हुआ। इंग्लैंड में राबिन हुड से संबंधित लोकगाथा गायी जाती है। इसमें राबिन हुड को लुटेरे के रूप में नहीं, बल्कि एक साहसी, वीर और दीन–दुखियों के सहायक एवं रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें उसका चरित्र बहुत उदात्त और दिव्य प्रदर्शित किया गया है। इंग्लैंड में राबिन हुड से संबंधित अनेक लोकगाथाएं गायी जाती हैं, इसलिए उनका एक पृथक वर्ग बन गया है।

भारतवर्ष में भी इस प्रकार की अनेक लोकगाथाएं पाई जाती हैं। ब्रज प्रदेश में 'राधाचरन कौ ढोला' ऐसी ही लोकगाथा है जिसके नायक राधाचरन ने डकैतिया डाककर दीन–दुखियों की सहायता की और अंत में वह अपने मित्र के विश्वासघात से पुलिस द्वारा पकड़ा गया। यहीं पर 'सुल्ताना डाकू' की गाथा गायी जाती है, जिसने अमीरों का धन लूटकर गरीबों की सहायता की। गरीबों की सहायता करने के कारण वह इतना लोकप्रिय हुआ कि उससे संबंधित गीत उसके जीवनकाल में ही गाए जाने लगे और नौटंकियां भी खेली जाने लगीं। आगरा और ग्वालियर में यही स्थिति डाकू मानसिंह की है। राजस्थान में जोरावर सिंह डाकू संबंधी गाथा गायी जाती है। काठियावाड़ में डाकुओं से संबंधित अनेक गीत गाए जाते हैं।

इस प्रकार की लोकगाथाओं में साहस, वीरता, उदारता का वर्णन होता है इसलिए इन्हें साहसिक लोकगाथाएं कहा जा सकता है।

इस वर्गीकरण के संबंध में यह तथ्य भी विचारणीय है कि इसमें अंग्रेजी लोकगाथाओं को ही दृष्टिपथ में रखा गया है। इसीलिए इनकी व्यापकता एवं सांगोपांग दृष्टि के रहते हुए भी यह आलोचना का विषय है कि सीमांत और आरण्य गाथाएं भारत वर्ष में तो मिलती नहीं, क्योंकि सीमान्त गाथाएं तो इंग्लैंड के विशिष्ट संदर्भ में ही सटीक ठहरती हैं। फिर भी इस वर्गीकरण को उचित वर्गीकरण माना जा सकता है।

भारतीय विद्वानों में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण भी उल्लेखनीय है। इस वर्गीकरण का आधार भी प्रेम, वीरता एवं रोमांचकारी तत्वों की प्रधानता ही रहती है। इसलिए डॉ. उपाध्याय का वर्गीकरण भी डॉ. शंकरलाल यादव की भांति तात्विक दृष्टि से किया गया है। यह वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–

1. प्रेम–कथात्मक गाथाएं,
2. वीर–कथात्मक गाथाएं,
3. रोमांस कथात्मक गाथाएं।

1. **प्रेम कथात्मक गाथाएं** – डॉ. उपाध्याय ने प्रेम से संबंधित गाथाओं को प्रेम कथात्मक गाथा कहा है। भारतवर्ष तथा अन्य देशों में प्रेम से संबंधित अनेक

लोकगाथाएं गायी जाती हैं। अधिकांश लोकसाहित्य प्रेम से परिपूर्ण है। इस प्रेम में वासना की गंध नहीं, बल्कि यह एक विशुद्ध और असाधारण प्रेम है। इसी कारण प्रेम कहानी में विषम वातावरण और संघर्ष उत्पन्न होता है। भोजपुरी में कुसमा देवी, भगवती देवी और लचिया की प्रेमगाथा ऐसी ही हैं, जिनमें एक ओर प्रेम पलता है और उसका परिणाम भी बहुत दुःखद होता है। बिहुला की प्रेम कथा में बिहुला का सौंदर्य–द्रष्टा मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ता है। उसके अप्रतिम लावण्य को देखकर अनेक युवक मोहित हुए, लेकिन उससे पाणिग्रहण में कोई भी सफल न हो सका। अंत में लखन्दर नामक युवक अपने विशुद्ध प्रेम और आत्मीयता से उसे प्राप्त कर सका। 'शोभा नयकवा बनजारा' भी एक प्रणय आख्यान है, जिसमें पति–पत्नी के संयोग और वियोग तथा आत्मीयता का मार्मिक वर्णन है। 'भरथरी–चरित' में राजा का गुरू के उपदेश से जंगल में जाना तथा उनके वियोग में उनकी पत्नी की करुण कथा बहुत मार्मिक है। राजस्थान में प्रचलित 'ढोलामारू' की लोकगाथा विशुद्ध प्रेम का अजस्र स्रोत है, जो श्रोताओं को रस–निमग्न कर देता है। पंजाब में प्रसिद्ध 'हीर–रांझा' विशुद्ध प्रेम का ज्वलंत उदाहरण है।

अंग्रेजी साहित्य में भी प्रेम कथात्मक लोकगाथाएं पाई जाती हैं जिनसे वहां की सामाजिक परिस्थितियों का परिचय मिलता है। 'निर्दयी भाई' नामक लोकगाथा में एक बहिन अपने भाई की बिना आज्ञा के अपने प्रेमी से विवाह कर लेती है, इसलिए भाई अपनी बहन को जान से मार डालता है।

2. **वीर–कथात्मक गाथाएं** – जिन गाथाओं में किसी वीर के शौर्य और पराक्रम का वर्णन होता है, उन्हें वीर गाथाओं की श्रेणी में रखा गया है। किसी गाथा में यह वीर किसी अबला का उद्धार करता है तो किसी में वह न्याय पक्ष को ग्रहण करता हुआ शत्रुओं को पराजित करता है। अलौकिक वीरता का वर्णन करना ही इन गाथाओं का उद्देश्य है। 'आल्हा' नामक लोकगाथा में आल्हा–ऊदल के पराक्रम और वीरता का वर्णन है, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए राजा पृथ्वीराज से युद्ध किया। 'लोरिकायन' लोकगाथा में लोरिकी चाव से सुनी जाती है। वह भी अपने समय का वीर था, जिसके सम्मुख शत्रु नहीं टिक पाते थे।
3. **रोमांस कथात्मक गाथाएं** – इन गाथाओं में रोमांस का वर्णन होता है। 'सोरठी' की गाथा इसी वर्ग में आती है। 'सोरठी' एक मातृ–परित्यक्ता कन्या है, जिसे उसकी माता ने विवाह से पहले पैदा होने के कारण लोकजाल के भय से पालने में सुलाकर नदी में प्रवाहित कर दिया था। सोरठी पालकी में बैठी नदी में बहती हुई जा रही थी कि उसे एक मल्लाह ने देख लिया। मल्लाह ने उसे नदी से निकाला और घर लाकर उसका पालन–पोषण किया। युवा होने पर सोरठी का विवाह हो गया। यह गाथा बहुत रोमांसपूर्ण है। अंग्रेजी साहित्य में भी इस प्रकार की अनेक लोकगाथाएं हैं।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

17. संसार में अनेक लोकगाथाएं गायी जाती हैं, लेकिन उनके रचनाकार और.......के सामने अब तक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है।
18. आधुनिक लोककवियों ने भी लोकगाथाएं अपनी ....में पुनः रची हैं।
19. हडसन ने शैली की दृष्टि से महाकाव्य को........वर्गों में विभक्त किया है।
20. लोकगाथाओं में काव्य शास्त्र में वर्णित छंदों का........ नहीं होता।

सही/गलत बताइए–

21. यह तो निश्चित है कि लोकगाथा किसी व्यक्ति की रचना होती है।
22. हमारा वेदकालीन साहित्य मौखिक नहीं था।
23. पं. रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम गीत को हृदय का धन तथा महाकाव्य को मस्तिष्क का धन कहा है।
24. भारतीय लोकगाथाओं की प्रवृत्ति आदर्शोन्मुख नहीं होती है।

2.5 लोकनाट्य

टिप्पणी

लोकनाट्य के स्वरूप का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है–

2.5.1 लोकनाट्य का अर्थ एवं परिभाषा

शब्दकोश के आधार पर 'लोकनाट्य' शब्द 'लोक' और 'नाट्य' दो शब्दों से बना है। 'लोक' शब्द की व्याख्या हम अन्यत्र कर चुके हैं। उसी जन–समूह की कृति जब नाट्यरूप में कथोपकथनों के माध्यम से किसी कथावृत को उपस्थित करे तो उसे लोकनाट्य कहा जाता है। इस कथोपकथन के माध्यम से इस विधा के स्वरूप को निखारने के लिए नृत्य, संगीत, अभिनय तथा वेशभूषा आदि का योगदान रहता है। यहां कुछ विद्वानों की परिभाषाएं देना भी उचित प्रतीत होता है। सर्वप्रथम डॉ. श्याम परमार के द्वारा निर्धारित परिभाषा प्रस्तुत है–

लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने–अपने क्षेत्र के जन–समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।

डॉ. श्याम परमार ने अपनी लोकनाट्य की परिभाषा में नाट्य की सीधी परिभाषा न करके, उसके संबंध और स्वरूप का उल्लेख मात्र कर दिया है, इस दृष्टि से उनकी परिभाषा भी थोड़ी अधूरी लगती है।

डॉ. श्याम परमार ने लोकनाट्य और शिष्ट नाटक का अंतर निर्धारित करते हुए एक परिभाषा इस प्रकार दी है –

"लोकनाट्य लोक–रंजन का आडंबरहीन साधन है, जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हर्षोल्लास से संबंधित है। ग्रामीण जनता में इसकी परंपरा युगों से चली आ रही है। चूंकि लोक में ग्रामीण एवं नागरिकजन सम्मिलित हैं, अतः लोकनाट्य एक मिले–जुले जन–समाज का मंच है। परिष्कृत रुचि के लोक के लिए जिन नाटकों का विधान है, उसकी आधार–भूमि यही लोकनाट्य हैं।

डॉ. नगेंद्र ने लोकनाट्य में लोकवार्ता तत्व की प्रधानता पर बल देते हुए उसे निम्न प्रकार परिभाषित किया है –

लोकनाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोककथानाकों, लोकविश्वासों और लोकतत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।

हमारी दृष्टि से लोकनाट्य की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है –

लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य–रूप, जो अपने–अपने क्षेत्र के लोकमानस को आह्लादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोकनाट्य कहलाता है।

इन परिभाषाओं में पूर्णत्व की प्रतीति नहीं होती।

2.5.2 लोकनाट्य की विशेषताएं

टिप्पणी

लोकनाट्य की विशेषताओं के संदर्भ में लोकसाहित्य के सिद्धांत–पक्ष पर प्रकाश डालने वाले विद्वानों में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय तथा डॉ. सत्येंद्र के मत इसलिए उद्धृत करना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इन्होंने लोकनाट्यों को अपने दृष्टि–पथ में रखकर विशेषताओं का इंगन नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके समक्ष शास्त्रीय आधार ही रहता है, किसी लोकनाट्य–रूप का गहन अध्ययन नहीं। उदाहरण के लिए डॉ. सत्येंद्र ने लोकनाट्यों की विशेषता के संबंध में बस इतना कहा है कि – लोक रंग–मंच का नाट्य संगीतात्मक होता है। गेयता की इसमें प्रधानता रहती है। इस गेयता का रूप शास्त्रीय नहीं होता है। सहज लोक–संगीत के तत्वों से युक्त होते हैं। नगाड़े जैसे लोक–वाद्य का इनमें उपयोग होता है। वेश–भूषा में लोकप्रियता का ध्यान रखा जाता है।

डॉ. उपाध्याय ने जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है, उनको देखकर यह प्रतीत होता है कि शास्त्रीय नाट्यों के तत्व उनके मस्तिष्क में कार्य करते रहे होंगे, इसीलिए तो भाषा, पात्र, कथानक, संवाद, चरित्र–चित्रण जैसे तत्वों पर आधारित विशेषताएं उन्होंने दी हैं। हां, सहजता एक ऐसी विशेषता मानी जा सकती है, जो उनके कथानक से लेकर रूप–सज्जा, रंगमंच आदि सभी तत्वों में मिलती है। अधिक शास्त्रीय साज–संवार का अभाव ही तो लोकसाहित्य की मूल पहचान है। तब फिर डॉ. श्याम परमार द्वारा दी गई विशेषताओं की ओर दृष्टि जाती है, क्योंकि उनकी दृष्टि भारतवर्ष के अनेक जनपदों के लोकनाट्यों के सूक्ष्म अध्ययन एवं विवेचन की ओर रही है। उन्होंने पहले तो कथा, मंच तथा अभिनयगत शास्त्रीय ज्ञान का अभाव ही ऐसी मूल एवं सामान्य विशेषता बताई है, जो लोकनाट्यों का लक्षण निर्धारण करने में कार्य करती है। उन्होंने भाषा और संवाद के विषय में लोकनाट्यों की निम्न विशेषताएं बताई हैं–

"लोकनाट्यों की भाषा काव्यमयी होती है। चूंकि ये नाटक सामूहिक अभिव्यक्ति के साधन हैं और पद्यात्मक संवादों के द्वारा समूह की कल्पना शक्ति भावों को ग्रहण करने की सामर्थ्य रखती है, इसलिए इनमें गद्य का प्रभाव कम ही होता है। गद्य का प्रयोग भांडों के हास्यात्मक अभिनय अथवा इतिवृत्तात्मक प्रसंगों में किया जाता है। ऐसा गद्य भी प्रायः पद्यात्मक होता है, जहां शब्दों की लड़ियां एक–दूसरे से गुंथी हुई द्रुतगति से आगे बढ़ती हैं। पद्यबद्ध संवादों की परंपरा मध्यकाल के पूर्व से निरंतर चली आ रही है। ऐसे अनेक अंश इन नाटकों में होते हैं, जो लोकगीतों की धुनों में गाए जाते हैं और लोक–भाषा की पुरानी शब्द योजना में अवगुंठित होते हैं।"

लोकनाट्यों के कथानक के संबंध में भी डॉ. श्याम परमार ने जो अपने विचार व्यक्त किये हैं, वे ज्यों के त्यों उद्धृत किये जा रहे हैं–

"लोक–नाटकों में कथानक–जैसा कि बताया गया है, अधिकतर पौराणिक, ऐतिहासिक और बहुत कम सामाजिक होते हैं। कथानकों के प्रायः दो रूप सर्वत्र मिलते हैं। प्रथम कोटि में उन कथानकों का स्थान है, जो मुख्य कथा के सहारे देर रात तक चलते रहते हैं। कथानक के घुमाव जहां नहीं होते, पर छोटे–छोटे प्रसंगों के द्वारा उनमें विस्तार होता है। दूसरी कोटि में लघु प्रहसनों को महत्व दिया जा सकता है। लोकपरक अनुभूति और

मनोरंजन का स्वस्थ स्वरूप इनमें उपलब्ध है। लोकनाट्कों से कथानकों में एक प्रकार की कसावट का अभाव पाया जाता है। लोक–बुद्धि, शिल्प–कौशल के परिष्कृत स्तर तक पहुंची हुई नहीं होती।"

टिप्पणी

डॉ. परमार के उपरांत हम ऐसे दो विद्वानों के विचार इस संबंध में प्रस्तुत करना उचित समझते हैं, जिन्होंने किसी जनपद के लोकनाट्यों का विशेष अध्ययन करने पर ही वहां की स्थानीय विशेषताओं का उल्लेख किया है। निश्चय ही ऐसी विशेषताएं स्पष्ट, सार्थक एवं तथ्यावलंबी होंगी। पहले विद्वान हैं – डॉ. शंकरलाल यादव, जिन्होंने हरियाणा जनपद के संगीत या स्वांगों के अध्ययन के आधार पर निम्न विशेषताएं इंगित की हैं –

1. व्यक्ति–विशेष की कल्पनाओं और अनुभवों को अनुकृति नहीं।
2. गीति प्रधानता।
3. खुला मंच, पट–परिवर्तन नहीं।
4. अंकों का अभाव, दृश्यों का क्रमपूर्वक आयोजन, बीच में गीत, नृत्य आदि का आयोजन।
5. अनेक बार भाषा के स्थान पर संकेतों का प्रयोग करके अकृत्रिमता की समायोजना।
6. एक–सा रूप नहीं (पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक प्रेम–कथाओं पर आधारित आदि)
7. कथानक शिथिल, पूर्वार्द्ध में गति–शैथिल्य, उत्तरार्द्ध में द्रुतगति। आनंद कथानक में नहीं घटनाओं के घटित होने में आता है।
8. मंडली का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक कार्य कर लेता है। साधारण अभिनेता ही निर्देशक और पुनः साधारण अभिनेता।

इस प्रयास में हरियाणा का लोकनाट्य ही विद्वान लेखक की दृष्टि में रहता है और ऐसा उसने स्पष्ट उल्लेख भी किया है कि ये विशेषताएं हरियाणा जनपद के लोकनाट्य संगीत की ही हैं।

दूसरे विद्वान हैं– डॉ. महेंद्र भानावत, जिन्होंने लोकनाट्य के प्रदर्शन में अत्यंत सक्रिय संस्था, लोककला मंडल, उदयपुर में रहकर राजस्थान के लोकनाट्यों का गहन अध्ययन किया है। उन्होंने निम्नांकित 15 विशेषताएं बताई हैं –

1. सामाजिक प्रतिभा की उपज, व्यक्ति प्रतिभा की निर्मिति नहीं।
2. लोकधर्म एवं लोकधर्मी परंपराओं की पीठिका पर आधारित।
3. लोक–रूढ़ियां एवं लोक–विश्वासों की सबलता पर आधारित।
4. धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कार्य करती है।
5. गेय एवं नर्तय गुणों की प्रधानता एवं अभिनेय गुणों की न्यूनता।
6. नित्य नवीनता।
7. पूर्णाभ्यास, प्रवीणता एवं प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता का अभाव।

टिप्पणी

8. असल की नकल होते हुए भी नकल में असल की प्रतिच्छाया।
9. इनका शास्त्र नहीं, पर शास्त्र संगत होते हैं।
10. प्रस्तुतिकरण की फुर्ती एवं सुस्ती ही इनका प्राण।
11. दर्शक–प्रदर्शक की समान रूप से आत्मानुभूति की एकरसता।
12. प्रदर्शकों की तन्मयता, उनके व्यक्ति का विलीनीकरण।
13. दर्शकों में भेद–भाव का अभाव।
14. नग्नता, अशोभनीयता और अश्लीलता भी निखारते हैं, बुरा असर नहीं।
15. स्त्री–नाट्यों में दर्शक–प्रदर्शक स्त्रियां ही। पर पुरुष–नाट्यों में प्रदर्शक पुरुष और दर्शकों पर प्रतिबंध नहीं।

इस विशेषता–ज्ञापन की अंतिम कड़ी के रूप में जगदीश चंद्र माथुर के विचार इसलिए दिए जा रहे हैं, कि उन्होंने बड़े व्यवस्थित ढंग से लोकनाट्यों की विशेषताओं को उपस्थित किया है। श्री माथुर ने अग्रांकित आठ विशेषताएं बताई हैं, जिनमें ऊपर गिनायी हुई लगभग सभी मुख्य विशेषताएं अंतर्भुक्त हो जाती हैं –

1. लोक–रंगमंच समूह या समाज की अनुभूतियों, भावनाओं एवं प्रवृत्तियों की अभिव्यंजना करता है, व्यक्ति की कल्पना और अनुभावों की नहीं। लोक की स्वाभाविक भाषा पद्य होती है, तथा लोकनाट्य के संवाद पद्यात्मक होते हैं।
2. टाइप चरित्र (प्रवृत्ति–विशेष या समूह–विशेष के द्योतक पात्र)।
3. खुला रंगमंच, दृश्य परिवर्तन का अभाव (प्रायः एक पर्दा पीछे, टंगा रहता है)
4. अभिनय में संकेत, नृत्य के हाव–भाव युक्त अभिनय।
5. पौराणिक कथा, विदूषक का आविर्भाव बीच–बीच में, मर्मस्पर्शी अभिनयों के बीच में आदर्श उपदेश या सम–सामयिक विषमताओं का दुखड़ा रोना या उच्च वर्ग पर छींटे कसे जाते हैं।
6. कथानक का महत्व कम, रसानुभूति द्वारा तृप्ति का महत्व, क्योंकि कथाएं प्रायः परिचित रहती हैं।
7. नाटक–मंडली का प्रत्येक सदस्य आवश्यकतानुसार प्रत्येक कार्य–विदूषक, नायक, निर्देशक सभी कार्य कर सकता है।
8. लोक–जीवन के रीति–रिवाज या उत्सवों का उल्लेख आवश्यक है। उसमें लोक–प्रचलित गीत एवं कहावतों का समावेश भी अवश्य रहता है।

2.5.3 लोकमंच के स्वरूप

लोकनाट्यों के रंगमंच के संबंध में यह तो स्पष्ट रूप से कहा ही जाता है कि वह खुला होता है। कहीं भी दो–चार तख्त डालकर या किसी चौपाल के चबूतरे का ही उपयोग मंच के रूप में कर लिया जाता है। उसमें पर्दों का प्रयोग नहीं होता, दृश्य–परिवर्तन की अपेक्षा न होने के कारण पात्रों के प्रसाधन की पृथक कक्ष में या प्रेक्षागृह में व्यवस्था नहीं होती।

सभी पात्र मंच पर एक साथ आ जाते हैं और नाटक के अभिनीत किये जाने में अंत तक वहीं बैठे रहते हैं। लोक–रंगमंच के संबंध में इतना ही विचार पर्याप्त नहीं।

लोकमंच के संबंध में डॉक्टर सत्येंद्र ने कुछ संकेत मात्र किया है। रंगमंच के संबंध में जिन बातों पर ध्यान दिया जाता है, उनका उन्होंने नामोल्लेख मात्र करके छुट्टी पा ली है। वे निम्न प्रकार हैं –

(1) स्थान का अनुष्ठान, (2) रंगमंच का स्वरूप, (3) नैपथ्य का स्वरूप, (4) रंगमंच की सज्जा, (5) प्रकाश विधान, (6) वादित्र, (7) अभिनय प्रकार, (8) भूल–मार्जन के साधन (प्रांप्टर), (9) आरंभ और उसकी शैली, (10) अंत और उसकी शैली।

प्रतीत होता है इन विशेष तथ्यों का ज्ञापन करते समय विद्वान लेखक की दृष्टि भगत नामक लोकनाट्य पर विशेष रूप से केन्द्रित रही। क्योंकि लोकनाट्यों के रंगमंच की तैयारी पर वहीं इतना बल दिया जाता है और वहीं इसको इतना महत्व भी दिया जाता है। सामान्यतः चाहे रामलीला हो या नौटंकी, स्वांग हो या रामलीला, प्रायः रंगमंच के विषय में अधिक चिंता करना लोकनाट्य की प्रकृति के भी विरुद्ध है। फिर भी हम उस रूप को एकदम उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखना चाहते। ब्रज क्षेत्र में भी रामलीलाओं के आयोजन होते हैं या भगत खेली जाती हैं तो रंगमंच का इतना ध्यान रखा ही जाता है कि वह दर्शकों की सुविधा के अनुसार निर्मित हो।

लोकनाट्यों के अभिनय के समय रंगमंच की निर्मिति के पूर्व रंगमंच स्थापन का अनुष्ठान आवश्यक समझा जाता है। यह ध्यान रहे कि यह सभी लोकनाट्यों के रंगमंच के संबंध में लागू होने वाला तथ्य नहीं है। इसके पीछे संचालकों का यही विश्वास कार्य करता है कि नाटक की निर्विघ्न संपन्नता संभव हो सके। अनेक बार कुछ संचालक टोने–टोटके भी करते हैं। यह सब नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए किया जाता है।

रंममंच के स्वरूप के संबंध में यही कहा जा सकता है कि यह दर्शकों की उपस्थिति और तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। रंगमंच ऊंचा भी बनाया जाता है, जब दर्शकों की संख्या अधिक रहने का अनुमान होता है। बड़े–बड़े नगरों की रामलीला, रामलीला, स्वांग, नौटंकी और भगत– सभी में ऊंचा मंच ही बनाया जाता है, जिससे दूर तक बैठकर अधिक से अधिक दर्शक उसे देख सकें। किंतु इस संबंध में लोकनाट्यों की एक विशेषता यह भी है कि यदि दर्शक थोड़े रहने का अनुमान हो तो छोटे से गांव में एक तख्त डालकर चौपाल के चबूतरे के एक कोने को ही रंगमंच के रूप में प्रयुक्त कर लिया जाता है और ऐसी स्थिति में इसकी कुछ साज–सज्जा भी नहीं की जाती। हां, पहली स्थिति में, रंगमंच चांदनी इत्यादि तानकर उसे फूल, कृत्रिम फूल, गुब्बारों आदि या पत्तों, डालियों आदि से सजाकर तैयार किया जाता है।

नैपथ्य का स्वरूप

लोकनाट्यों की विशेषताएं बताते समय यह सर्वमान्य विशेषता के रूप में स्वीकार किया गया था कि इसका रंगमंच खुला होता है, तब नैपथ्य की कल्पना करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। किंतु जैसा कि हमने कहा था, डॉ. सत्येंद्र की दृष्टि भगत नामक ब्रज–लोकनाट्य की ओर रही है, जहां साज–सज्जा का महत्व बहुत अधिक होता है, ऐसी स्थिति में नैपथ्य

टिप्पणी

मुख्य मंच पर कनातें लगाकर तैयार किया जाता है– जहां से पात्रों का आना–जाना या आकाश–भाषित आदि का नियोजन किया जाता है।

रंगमंच की सज्जा – ऐसे अवसर पर, जब दर्शकों की अपार संख्या का अनुमान किया जाता हो तो बहुत ऊंचा मंच बनाया जाता है और उस पर साजिन्दों के बैठने की पृथक व्यवस्था रहती है। पात्रों के विशेष सिंहासनों आदि की व्यवस्था की जाती है।

प्रकाश–विधान – यह भी लोकनाट्य के स्तर और दर्शकों की अनुमानित संख्या के आधार पर ही व्यवस्थित किया जाता है। लोक–जीवन में जहां विद्युत या गैस के हंडों की व्यवस्था नहीं हो सकती, वहां मशाल जलाकर प्रकाश व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त, बड़े–बड़े सकोरों में अंडी (एरण्ड) के बीजों को डालकर उसमें आग लगा दी जाती है तथा उससे प्रकाश व्यवस्था कर ली जाती है। यदि लोकनाट्य का प्रदर्शन जाड़ों में किया जा रहा हो तो ग्राम्य जीवन में अलाव पर अग्नि प्रज्जवलित करके भी प्रकाश व्यवस्था में योगदान किया जाता है।

वादित्र – लोकनाट्यों में वाद्य वृंद की जैसी भी योजना होती है, वह रंगमंच की ओर रहती है। हारमोनियम भी अब तो इनके वाद्य–वृंद में सम्मिलित होने लगा है, अन्यथा पहले सारंगी, मृदंग, नक्कारा, नफीरी, ढोलक, ढफ (स्थानीय भेद से) आदि वाद्य–यंत्रों के अतिरिक्त झांझ, मंजीरा, चीमटा आदि झंकृत वाद्य भी रहते हैं। इन वाद्यों के बजाने वाले रंगमंच की भांति ही ऊंचे स्थान पर (या तो एक तख्त डालकर या ऊंचे चबूतरे पर) बैठते हैं।

अभिनय प्रकार – भरतमुनि ने अभिनय के चार प्रकार बताए हैं, इनमें से आहार्य और सात्विक का उपयोग तो लोकनाट्यों में नहीं होता। हां, आंगिक और वाचिक अभिनय का उपयोग किया जाता है। आंगिक अभिनय के अंतर्गत ही हावभाव मुद्राएं आती हैं, जिनका प्रचुर प्रयोग लोकनाट्यों में किया जाता है। यह अभिनय एकांकी न होकर गीत एवं नृत्य से समन्वित होता है।

भूल मार्जन के साधनों में नाटक मंडली का मुखिया या संचालक इतना अनुभवी एवं समृति का धनी होता है कि उसे पूरा लोकनाट्य याद होता है और जब भी कोई पात्र अपना संवाद भूल रहा होता है या अशुद्ध बोल जाता है, तो वह प्रायः महत्वपूर्ण वाद्ययंत्र पर बैठा–बैठा ही उसे संभाल लेता है।

आरंभ और उसकी शैली – लोकनाट्यों के प्रारंभ की शैली अत्यंत रोचक होती है। उसके प्रारंभिक परिचय एवं माहात्म्य आदि पर निर्देशक प्रकाश डालता है और फिर लोकनाट्य का प्रारंभ किया जाता है। प्रायः लोकनाट्य के प्रदर्शन के पूर्व किसी देवी–देवता का स्तवन किया जाता है, जिसे ब्रज–जनपद में 'भेंट' कहकर पुकारा जाता है। रामलीला में रामायणजी तथा गणेश की प्रार्थना की जाती है, तब मुख्य नाटक प्रारंभ होता है।

अंत और उसकी शैली – लोकनाट्यों का अंत प्रायः सुखांत होता है और नाट्य के प्रदर्शन के उपरांत स्थानीय देवी–देवताओं या परमात्मा के किसी अति प्रचलित स्वरूप का नाम लेकर जयकारा बोला जाता है। रामलीला के अंत में हनुमान को आदरपूर्वक विदा किया जाता है। रामलीला के संबंध में यह विश्वास प्रचलित है कि जहां रामलीला का

प्रदर्शन होता है, वहां हनुमान जी अवश्य ही सुनने आते हैं। इसलिए अभिनय समाप्त होने पर उन्हें विदा किया जाता है – (कथा विसर्जन होता है, सुनो वीर हनुमान..)।

टिप्पणी

2.5.4 लोकनाट्यों की लोकप्रियता के कारण

लोकनाट्यों की विशेषताओं के संदर्भ में जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया था, वे ही सब ऐसे मूलाधार हैं, जिनके कारण लोकनाट्यों को लोकप्रियता प्राप्त होती है। लोकनाट्य वास्तव में सहज मानव–जीवन से ही रस प्राप्त करते हैं, इसलिए उनकी आत्मा का लोक–दर्शकों की आत्मा के साथ ऐसा सहज एकात्म्य हो जाता है, जिसमें प्रदर्शक एवं दर्शक का भेद ही समाप्त हो जाता है। लोकनाट्यों की रचना लोकरुचि के सर्वथा अनुकूल ही होती है। इसलिए भी सामान्य दर्शक लोकनाट्यों की प्रकृति में एकरस होकर रुचिपूर्वक सुनता–देखता है। लोकनाट्यों में संगीत का पुट भी आकर्षण उत्पन्न करने में सहायक होता है। नक्कारे की कड़–कड़–धम जहां तक अपनी धाक जमाए रहती है, वहीं तक सुनने वालों के कानों में एक अजीब जीवनी–शक्ति का संचार होने लगता है। लोकनाट्यों में जान डाल देने वाला तत्व है– नृत्य, जो उनका प्राण ही कहा जाए, तो अत्युक्ति न होगी। विविध श्रृंगारोत्तेजक भाव–मुद्राओं से युक्त नृत्य–प्रदर्शन के जादू से कौन बच सकता है? लोकनाट्य इतना सहज एवं अकृत्रिम ढंग से प्रदर्शित किया जाता है कि उसमें डूबने में सर्वसाधारण दर्शकों को देर नहीं लगती। वहीं की लोक–भाषा का प्रयोग, पात्रों की उल्लासपूर्ण भाव–मुद्राएं, लोक–संगीत की लहरी का सहकार प्राप्त लोकगायकों का ऊंचा–पैना स्वर और लोक धुनों की उत्ताल स्वर–लहरी– सब मिलाकर दर्शक का मन मोह लेती हैं।

2.5.5 लोकनाट्यों के प्रकार

भारतवर्ष के विभिन्न जनपदों में प्रचलित नाट्यरूपों का वर्गीकरण करने की दृष्टि से अनेक विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से विचार किया है। लोकनाट्यों के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते हैं। ये आधार निम्नलिखित हैं :–

1. **बोली अथवा भाषा** – बोली अथवा भाषा के आधार पर किसी जनपद के लोकनाट्यों का नामकरण किया जाता है। भले ही एक जनपद में लोकनाट्यों के विविध प्रकार एवं नाम प्रचलित हों, किंतु उस जनपदीय बोली के आधार पर उन सभी नाट्य–रूपों को उसी के नाम से पुकारा जा सकता है, जैसे – हरियाणावी लोकनाट्य, ब्रज लोकनाट्य आदि। किंतु यह वर्गीकरण उचित नहीं माना जा सकता, कारण यह है कि – अनेक मूक–अभिनय, जिनमें संकेतों से ही काम लिया जाता है, उन्हें बोली के नाम के आधार पर संबोधित नहीं किया जा सकता।
2. **भौगोलिक परिस्थितियां** – इस आधार पर पठानी, मैदानी, पहाड़ी, जंगली आदि विशेषणों से लोकनाट्यों को अभिषिक्त कर सकते हैं। किंतु यह विभाजन भी उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि मैदानी क्षेत्रों में भी ऐसे अनेक प्रकार के लोकनाट्य होते हैं, उनके विभाजन का अवसर ही नहीं मिल पाएगा।
3. **रंगमंच** – रंगमंच को भी वर्गीकरण का आधार बनाया जा सकता है, जिसको दृष्टिपथ में रखकर सभी दिशाओं के, तीन–दिशाओं के, मंडप वाले रंगमंचों के

लोकनाट्य आदि वर्ग निर्धारित किये जा सकते हैं, जो उचित नहीं प्रतीत होते। इसमें ऐसे लोकनाट्यों को कहां, किस वर्ग में समाविष्ट किया जाए, जिनका रंगमंच ही नहीं होता या रंगमंच का कोई विशिष्ट रूप नहीं होता।

टिप्पणी

4. **लोकनाट्य के तत्व –** नृत्य, गीत, कथा, अभिनय, वेशभूषा, वाद्य, काव्य में से जिसकी प्रधानता हो, उसी के आधार पर जब नामकरण कर दिया जाए, तो इस वर्गीकरण का रूप प्रकट होता है। किंतु तत्व–प्राधान्य का निर्धारण भी सरल काम नहीं।
5. **पर्व या उत्सव –** कुछ विशेष पर्वों या उत्सवों पर आयोजित किये जाने वाले लोकनाट्यों का नामकरण एवं वर्गीकरण इन पर्वोत्सवों के आधार पर किया जा सकता है। किंतु अनेक प्रकार के वे लोकनाट्य, जिनका दूर का भी संबंध इन पर्व, उत्सवों से नहीं होता है, किस वर्ग में रखे जाएंगे।
6. **उद्देश्य –** उद्देश्य के आधार पर भी एक प्रकार का ऐसा वर्गीकरण किया जा सकता है, जिसका प्रदर्शन किसी समुदाय–विशेष, जाति विशेष या व्यवसाय विशेष के आधार पर किया जाए। किंतु लोकनाट्यों में अधिकतर समुदाय विशेष के लिए ही प्रदर्शित किये जाने का उद्देश्य निहित रहता है। अतः इसके और भेद उचित नहीं जान पड़ते।
7. अभिनय, वाद्य, रंगमंच, गायकी आदि के आधार पर भी विशिष्ट शैलियों को दृष्टि पथ में रखकर भी लोकनाट्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है। किंतु अनेक प्रकार के लोकनाट्यों में रंग–शैली मिलती जुलती होती है, तब उनका वर्गीकरण करने की समस्या सामने आएगी।

2.5.6 भारत के प्रसिद्ध लोकनाट्यों का परिचय

भारत के सभी जनपदों के लोकनाट्यों को दृष्टि–पथ में रखें तो प्रायः तीन प्रकार के लोकनाट्य पाए जाते हैं :– (क) नृत्य–प्रधान लोकनाट्य, (ख) संगीत–प्रधान लोकनाट्य, तथा (ग) स्वांग–प्रधान लोकनाट्य।

जैसा कि हम पहले कह आए हैं, नृत्य वह प्रधान तत्व है, जो लोकनाट्यों पर छाया रहता है। राजस्थानी भीलों का गबरी, आन्ध्र के पहाड़ी आदिवासियों का कुरबंजि, बिहार का विदेसिया, असम का अंकिया, ब्रज का रास, बंगाल का नकाब, मिथिला का कीर्तनिया आदि लोकनाट्य इसी वर्ग में आते हैं।

दूसरा प्रकार है – संगीत प्रधान लोकनाट्यों का, जिनमें शास्त्रीय संगीत, चलती गजल–कव्वालियां या लोक–संगीत की प्रधानता रहती है। शेखावटी, चिढ़ावी एवं हेला जैसे दंगलों के आधार पर खेले जाने वाले राजस्थानी लोकनाट्य, महाराष्ट्र का तमाशा तथा तमिलनाडु का तेरुकूत्तु नामक लोकनाट्य इसी वर्ग में आते हैं।

लोकनाट्यों में अभिनय, नकल, स्वांग का प्राधान्य रहता है। संगीत एवं नृत्य के स्थान पर ऐसे लोकनाट्यों में एक या एक से अधिक पात्र स्वांग भरते हैं, नकल करते हैं। ब्रज का भगत तथा उत्तर प्रदेश का नकल, हिमाचल का करियाला, हरियाणा का स्वांग, गुजरात का

भवाई वेश, उत्तर बिहारी महिलाओं के जट–जटिन, राजस्थान का बहुरूपिया आदि लोकनाट्य इसी वर्ग में वर्गीकृत किये जा सकते हैं।

टिप्पणी

भारतीय लोकनाट्यों के संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि धार्मिक एवं अनुष्ठानिक तत्वों का इन पर व्यापक प्रभाव देखा जाता है। कथा भी पुराणों या धर्म–ग्रंथों से चयन की जाती है, नाटक के प्रारंभ में किसी देवी–देवता की प्रार्थना अवश्य की जाती है और यही नहीं, ऐसे लोकनाट्यों का प्रदर्शन मंदिर आदि धार्मिक स्थान में किया जाता है। समूचे राष्ट्र के सशक्त लोकनाट्यों पर इस धार्मिकता का गहरा रंग पाया जाता है। उदाहरणार्थ–कीर्तनियां (मिथिला) बयलार (उत्तर कर्नाटक), दशावतार (तंजौर), गंधर्वी ख्याल (राजस्थान), तेरूकुत्तू (तमिलनाडू), जात्रा (बंगाल), रामलीला (उत्तर प्रदेश), गबरी (मेवाड़) आदि, इसी प्रकार के लोकनाट्य हैं।

इन्हीं लोकनाट्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं–

(क) नृत्य–प्रधान वर्ग

1. **गबरी** – गबरी नाट्य पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है – डॉ. महेंद्र भानावत ने, जिन्होंने अपने शोध–प्रबंध में गबरी नाट्य के उद्भव और विकास से लेकर उसका साहित्यिक–सांस्कृतिक मूल्यांकन भी किया है। इसी प्रकार अन्य राजस्थानी लोकनाट्यों से उसकी तुलना करके गबरी नाट्य के महत्व की स्थापना बड़े विस्तार से की है। गबरी राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा क्षेत्र के भीलों का लोकनाट्य रूप है। प्रमुख पात्रों को माजी और अन्य गौण पात्रों को खेल्वे कहा जाता है। इसका सूत्रधार कूटरकड़िया कहा जाता है। गांव के चौराहों अथवा खुले चौकों में ही यह खेला जाता है। भाद्रपद के प्रारंभ से ही इसके आयोजन प्रारंभ हो जाते हैं। प्रत्येक भील परिवार इसमें आवश्यक रूप से भाग लेता है। इसका प्रदर्शन दिन भर चलता रहता है। इस रूप में गबरी एक विलक्षण अनूठा लोकनाट्य है। इसके मूल में शिव–भस्मासुर की कथा रही है।

2. **कुरवंजि** – नृत्य प्रधान लोकनाट्य वर्ग का दूसरा लोकनाट्य है – आंध्र के पहाड़ी आदिवासियों का लोकनाट्य कुरवंजि, जो उत्तर नैल्लोर (तमिलनाडु) से लेकर समूचे आंध्र प्रदेश में खेला जाता है। कौरव दक्षिण भारत की पहाड़ी जाति है, जिसके नृत्य (अंजु) को कुरवंजि कहा जाता है। डॉ. श्याम परमार ने कुरवंजि लोकनाट्य का परिचय इस प्रकार दिया है –

   इसमें पुरुष पात्र का अभाव रहता है। लगभग 6–7 स्त्री–पात्र मिलकर इसका अभिनय करते है। रंगस्थल मंदिर का खुला प्रांगण अथवा प्रेक्षकों के बीच में खुला स्थान होता है। परंपरागत रूप से कात्तियकार नाट्य की उद्घोषणा करता है। उद्बोधन के पूर्व गणेश की वंदना की जाती है, तत्पश्चात् नायिका अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती है। इसमें नायक कभी मंच पर नहीं आता। हास्य के लिए कभी–कभी सिंगी का पति सिंगा अपनी पत्नी को खोजता हुआ मंच पर आकर श्रोताओं का मनोरंजन करता है।

टिप्पणी

3. **विदेसिया** – बिहार जनपद के विदेसिया नामक लोकनाट्य की समस्त देश में ख्याति प्राप्त कराने वाले उसके नाट्य एवं संगीत तत्व ही हैं। विदेसिया लोकनाट्य के क्षेत्र में भिखारी ठाकुर का योगदान उल्लेखनीय है। नृत्य–संगीत समन्वित नाट्य से भिखारी ठाकुर ने कोटि–कोटि जनों का मनोरंजन कर विदेसिया की कीर्ति की स्थापना की है। विदेसिया नाम एक लोककथा पर आधारित है, जो नायक के प्रवास (विदेश) जाने पर नायिका की दयनीय स्थिति का चित्रण करता है। इसका मंच बल्लियों पर पृथ्वीतल से 10–11 फीट ऊंचा तख्तों से बनाया जाता है, जिस पर नृत्य की भंगिमा अधिक निखर जाती है। नाटक का आरंभ भवानी मैया की प्रार्थना से होता है।

4. **अंकिया** – इसी नृत्य–सौंदर्य–प्रधान लोकनाट्य वर्ग का प्रसिद्ध लोकनाट्य है – अंकिया, जो एक अंक का लोकनाट्य होता है। संभवतः इसीलिए इसका नाम भी अंकिया (अंक वाला) पड़ा होगा। असम के कोटि–कोटि जनों का मनोरंजन करने वाला यह नृत्य–सौंदर्य प्रसिद्ध लोकनाट्य मठों एवं मंदिरों का आवश्यक अंग है। एक सुंदर–मंडप का निर्माण करके उसके नीचे त्रिदिशीय मंच तैयार किया जाता है। मंच पर सामने सिंहासन रहता है और उसके इधर–उधर दोनों ओर नायक और नायिका की अट्टालिकाएं निर्मित की जाती हैं, जिससे उन्हें परस्पर दर्शन का लाभ प्रत्येक क्षण प्राप्त हो सके। संवादों में गद्य का प्राधान्य रहता है, किंतु बीच–बीच में शास्त्रीय संगीत में निबद्ध रचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं।

इस लोकनाट्य में नाट्य–शास्त्रीय परंपराओं का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। सूत्रधार, नांदी–पाठ, पात्रों की सूचनाएं एवं अंत में भरत वाक्य–सभी कुछ शास्त्रीय नियमों के अनुसार। मंडली (गायन–वादन) भाओनाघर (मंच) के पीछे बैठती है। श्रीकृष्ण एवं श्रीरामचंद्र के जीवन से संबंधित कथानकों पर आधारित नाटक ही इस मंच से खेले जाते हैं।

5. **रास** – यह ब्रज मंडल का नृत्य–संगीत प्रधान लोकनाट्य रूप है। श्रीकृष्ण और गोपियों के वृत्ताकार मंडल में नृत्य करने के आधार पर इसका नामकरण हुआ होगा, ऐसा कुछ लोगों का विचार है, क्योंकि हल्लीसक और रास नाम के नृत्यों का उल्लेख नाट्यशास्त्र में मिलता है। इसके संबंध में यहां अधिक कुछ नहीं कहा जा रहा, क्योकि आगे ब्रज के लोकसाहित्य का विस्तृत अध्ययन करते समय विस्तार से इसका परिचय दिया जाएगा।

6. **नकाब**– बंगाल के मेमनसिंह जिले का यह नृत्य–प्रधान लोक नाट्य धार्मिक पृष्ठभूमि में ही खेला जाता है। किसी देवता का प्रधान नायकत्व इसका प्राण है। बढ़ई तथा रंगेरे जाति के लोगों में ही इसके खेलने का उत्साह पाया जाता है। डाक नामक ताल–वाद्य पर नृत्य प्रारंभ करके इसका शुभारंभ किया जाता है। नृत्य को विलंबित गति से उठाकर द्रुतगति में पर्यवसान इसकी अपनी एक प्रमुख विशेषता है। बूड़ा–बूढ़ी और गंभीरा नामक लोकनाट्य भी इसी (नकाब) प्रकार के अंतर्गत आते हैं।

टिप्पणी

7. **कीर्तनिया** – मिथिला जनपद के नृत्य–प्रधान लोकनाट्यों में कीर्तनिया का उल्लेख किया जा सकता है। जैसा कि पहले कहा गया है कि ये सभी लोकनाट्य धर्म–तत्व से परिपूर्ण होते हैं, इसलिए इस लोकनाट्य रूप में भी धार्मिक भावना ही प्रधान रूप से कार्य करती है। कीर्तन शब्द भगवद्–स्मरण के गायन रूप को कहते है, इसी पर आधारित यह लोकनाट्य कीर्तनिया नाम से अभिहित किया जाता है। नेपाल दरबार की परंपराओं से प्रभावित होने कारण दरभंगा के महेश ठाकुर ने इस कीर्तनिया लोकनाट्य को पर्याप्त प्रश्रय दिया और इसका प्रचार–प्रसार कराया। इसी परंपरा के प्रभावस्वरूप नाट्य को अभिनीत किये जाने से पूर्व, पात्रों का परिचय भी कराने की परंपरा पाई जाती है। इस लोकनाट्य का प्रधान विषय चुना जाता है – श्रीकृष्ण या शिवशंकर कैलाशपति से संबद्ध किसी पौराणिक गाथा के आधार पर।

(ख) संगीत–प्रधान वर्ग

संगीत–प्रधान लोकनाट्यों के संबंध में संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। इस वर्ग के अंतर्गत विविध जनपदों के लोकनाट्य निम्न प्रकार हैं :–

1. **शेखावटी** – चिड़ाबी एवं हेला नामक ख्याल कहे जाने वाले लोकनाट्यों को इसी वर्ग में रखा जा सकता है। डॉ. महेंद्र भानावत के अनुसार, ख्याल के प्रधान लक्षण इस प्रकार हैं–

   लोकनाट्य का वह रूप जो परंपरागत बंधी–बंधाई रंग–शैली में लोक–जीवन में प्रचलित आख्यानों का प्रदर्शन कर, सामान्य जनता का मनोरंजन करता है, ख्याल कहलाता है।

   इन ख्याल नामक लोकनाट्यों की विशेषताओं के नाम पर यह कहा जा सकता है कि इसमें लोकनाट्यों की परिष्कृत शैली में परंपरा (राग, रंगत, धुन, गायकी, रूप, प्रकार, चाल, छंद, तंत्र विशेष) का निर्वाह करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। लोक–जीवन की कोई प्रेम–गाथा ही इसका विषय बनती है और ख्याल नामक लोकनाट्यों का प्रमुख उद्देश्य होता है– जन मनोरंजन। शेखावटी के ख्याल अपनी उच्च स्तरीय संगीतात्मक गायकी के लिए बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। प्रारंभ में इनमें ढोलक तथा सारंगी का प्रयोग होता था। बाद में हारमोनियम तथा नगाड़ों की संगत भी दी जाने लगी। साजिंदों के साथ टरिये भी प्रारंभ किये। चौबोला के साथ इनमें ताल लगाई जाती है। खेल की समाप्ति पर भैरू की स्तुति की जाती है। रंगमंच के लिए साधारण तख्तों का मंच बनाया जाता है और ऊपर चंदोवा तान दिया जाता है।

2. **तमाशा** – तमाशा महाराष्ट्र का ऐसा लोकनाट्य है, जो शुद्ध रूप से ग्रामीण, पिछड़ी, अर्द्धसभ्य जनता के बीच खेला जाता है। संभ्रांत, सुशिक्षित वर्ग से इसका दूर का भी संबंध नहीं रहता। ऐसा खुला रंगमंच, जिसके तीन ओर दर्शकों के बैठने का प्रावधान हो, इसके लिए निर्मित किया जाता है। गणेश की प्रार्थना के पूर्व साजिंदे अपनी वाद्यवृंद की धुन से संगीत–लहरी का आनंद जुटाते हैं और बाद में

टिप्पणी

गोपी–नृत्य का आयोजन तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उससे छेड़छाड़ का वातावरण निर्माण किया जाता है। अश्लील नृत्य एवं भौंडे संवादों के ढांचे पर खड़ा, यह लोकनाट्य लावणियों के सवाल–जवाब पर प्रधान रूप से निर्भर करता है। वाद्यवृंद का संगीत–विधान ही इस लोकनाट्य का प्रधान आकर्षण कहा जा सकता है।

3. **तेरूकूत्तु** – तमिलनाडु का तेरूकूत्तु लोकनाट्य भी इस संगीत–प्रधान वर्ग का अत्यन्त महत्वपूर्ण लोकनाट्य माना जाता है। यह द्रौपदी हरण की घटना को प्रधान रूप से प्रदर्शित करता है। इस धर्म–प्रधान लोकनाट्य की रंगस्थली मंदिरों के प्रांगण ही होते हैं, जहां पूर्व रंग, प्रारंभ में गणेश वंदना एवं रूप–सज्जा की जटिलता की प्रवृतियां देखी जाती हैं। डॉ. सुरेश अवस्थी के शब्दों में राजसी पात्र छोटे–छोटे रंग–बिरंगे शीशे जड़े ऊंचे–ऊंचे मुकुट पहनते हैं। सभी पात्र ढीली कमर तक की बंडी पहनते हैं और चुस्त काले पायजामे के ऊपर ऊंचे घेरदार घाघरे पहनते हैं। विदूषक कोमाली चहल–पहल के वातावरण में हनुमान जैसा अभिनय करके भगदड़ मचाता है।

(ग) स्वांग प्रधान वर्ग

1. **भगत** – इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे लोकनाट्य आते हैं जिनमें अभिनय, व्यंग्य–विनोदात्मक वार्तालाप का प्राधान्य होता है। ब्रज प्रदेश का 'भगत' नामक लोकनाट्य इसी वर्ग के अंतर्गत आता है, जो आगे चलकर ख्याल परंपरा के साथ जुड़कर अखाड़ों के रूप में सामने आया। भक्ति–भावना से युक्त लोगों के द्वारा खेले जाने के कारण इसका नाम 'भगत' पड़ा होगा। जिस स्थान पर यह लोकनाट्य खेला जाता है, वहां एक बल्ली गाड़ दी जाती है और उसका मंच पृथ्वी से 8 फीट ऊंचाई पर विविध प्रकार की सजावट के साथ तैयार किया जाता है। नाटक के प्रारंभ में चौमुखा दीपक जलाकर यज्ञ और गणेश–पूजा इत्यादि की रचनाएं गायी जाती हैं। इस लोकनाट्य रूप में दोहा, चौबोला, कड़ा, बहरे तबील, उड़ान और दौड़ इत्यादि लोक–छंद प्रयुक्त होते हैं। जिन देवताओं का प्रारंभ में आह्वान किया जाता है, उन्हें नाटक के अंत में विदा किया जाता है। ब्रज में आगरा और हाथरस इस प्रकार के भगत खेले जाने के क्षेत्र रहे है और इनके विभिन्न अखाड़े वहां मिलते हैं। प्रत्येक अखाड़े में एक खलीफा (गुरु) होता है।
2. **नकल** – नकल नामक स्वांग – प्रधान लोकनाट्य उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध लोक नाट्य है। काश्मीर से नक्कालों के घरानों से कुछ घराने उत्तर प्रदेश में लखनऊ और बनारस में आ गए। महफिलों में ये नक्काल लोग बड़े सुंदर ढंग से हास्य व्यंग्य एवं विनोद की नियोजना करते हैं। समाज के विभिन्न वर्गों के कुछ व्यक्तियों की नकल करने के कारण ही इस नाट्य रूप को नकल कहा जाने लगा होगा। इन नक्कालों की मंडलियां भांड–मंडली कही जाती हैं।
3. **करियाला** – हिमाचल प्रदेश का स्वांग–प्रधान लोकनाट्य है– करियाला। समाज में विभिन्न वर्ग के ढोंगों का पर्दाफाश करने का यह अत्यंत सफल माध्यम है। मंदिरों के पास दो पहाड़ियों के बीच समतल भागों पर तीन ओर बैठकर दर्शक इसे

देखते हैं। उनके बीच में एक वीथिका होती है, जिसमें होकर पात्र मंच तक पहुंचते हैं। जंगताल से प्रारंभ होने वाली नाट्य–परंपरा के अनुसार आरती की थाली लेकर करियाला ताल में आग की परिक्रमा करके चंद्रावली नृत्य करती है। इसी ताल के प्राधान्य के कारण इसे 'करियाला' नाम से पुकारा गया होगा।

4. **स्वांग, सांग या सांगीत** – जैसा कि इस वर्ग के लोकनाट्यों से स्पष्ट है कि इस वर्ग के सभी लोकनाट्य स्वांग प्रधान हैं। यह हरियाणा प्रदेश का प्रसिद्ध लोकनाट्य भी है। स्वांग का अर्थ है – ढोंग रचना, नाटक करना, नकल करना। पद्यमय संवादों के माध्यम से एक लंबा कथानक इनमें अभिव्यक्त होता है। प्रेम–गाथा से लेकर धर्म–गाथाओं से संबंधित कथाओं को इनका विषय बनाया जाता है। नीले आकाश के नीचे खुले मंच पर गीतिनाट्य रूप वाले सांग खेले जाते हैं।

डॉ. शंकरलाल यादव ने इस सांग, स्वांग या सांगीत नाम से पुकारे जाने वाले लोकनाट्य की निम्न विशेषताएं बताई हैं :–

1. जन–भावनाओं की अभिव्यक्ति।
2. पद्य–प्रधानता।
3. तीन ओर दर्शकों वाला खुला मंच।
4. गीत, नृत्य, वार्ता आदि के क्रम से दृश्यों की शृंखला, अंकों का अभाव।
5. संकेत–विधान से अकृत्रिमता की सृष्टि।
6. पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों पर आधारित कथानक।
7. घटनाओं का उतार–चढ़ाव, रस स्रष्टा, कथानक–शैथिल्य एवं प्रारंभ में शिथिल किंतु बाद में (उत्तरार्द्ध में) द्रुतगति पूर्ण कथानक तथा
8. मंडली के प्रत्येक सदस्य की क्रियाशीलता एवं दक्षता।

5. **भवाई** – यह गुजरात के तरागाणा जाति के लोगों द्वारा खेला जाने वाला हास्य–व्यंग्य प्रधान लोकनाट्य है। इसे वेश भी कहा जाता है। नृत्य–प्रधान एवं संवादों की क्षिप्रता के लिए यह प्रसिद्ध नाट्य–रूप है। कांचलिया नाम से पुकारे जाने वाले पात्र नाना वेश धारण करते हैं। विदूषक रंगलों कहलाता है। प्रारंभ में खुले मंच पर माता, गणेश की पूजा और वंदना की जाती है, तभी अन्य वेशधारी मंच पर उपस्थित किये जाते हैं।

6. **जट–जटिन**– बिहार के उत्तरी क्षेत्र में खेला जाने वाला यह लोकनाट्य नारी–पात्रों द्वारा ही अभिनीत किया जाता है। संगीतज्ञ, अभिनेताओं के साथ ही साथ इसके दर्शक भी स्त्री जाति के ही होते हैं। पारिवारिक सदस्यों का अभिनय, विभिन्न संस्कारों का वर्ण्य सावन–भादों की रातों में निखरता है।

7. **बहुरूपिया** – बहुत से रूप–परिवर्तन करने वाले पात्र के नाम पर ये नकल प्रधान लोकनाट्य चित्तौड़ क्षेत्र में प्रधानतः खेले जाते हैं। विवाहादि उत्सवों पर बधाई देकर, बरातियों का मनोरंजन कर, वर के पिता से पुरस्कार प्राप्त करने वाली भांड जाति ही इसके अभिनय के लिए प्रसिद्ध है।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

25. शब्दकोश के आधार पर लोकनाट्य शब्द 'लोक' और.......दो शब्दों से बना है।
26. डॉ. महेंद्र भानावत ने लोकनाट्य की.......... विशेषताएं बताई हैं।
27. भरतमुनि ने अभिनय के.............प्रकार बताए हैं।

सही/गलत बताइए–

28. प्रकाश विधान लोकनाट्य के स्तर और दर्शकों की अनुमानित संख्या के आधार पर ही व्यवस्थित रहता है।
29. मध्य प्रदेश का सर्वांग प्रधान लोकनाट्य है–करियाला।
30. नकल नामक स्वांग प्रधान लोकनाट्य उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध नाट्य–मंच है।

2.6 लोक सुभाषित साहित्य

टिप्पणी

लोक सुभाषित साहित्य का वर्णन इस प्रकार है–

लोकसाहित्य की प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त ऐसी छोटी–मोटी विधाएं इस वर्ग में समाविष्ट की जाती हैं, जो आकार में लघुरूपी हैं। लोकतुक्का, लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां, लोरियां, शिशु–खेल गीत आदि सभी विधाएं आकार में लघु होने के कारण स्फुट वर्ग के अंतर्गत ही विवेचन का विषय बनायी जाती हैं। इसी वर्ग को डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक–सुभाषित नाम देकर भी पुकारा है। किंतु सुभाषित की परिधि में लोकोक्ति, मुहावरे तथा पहेलियां ही आ सकती हैं, अन्य लघुगीत आदि इस शीर्षक के अंतर्गत समाविष्ट नहीं किये जा सकते। अतएव हमने इस शीर्षक को प्रकीर्ण साहित्य नाम ही दिया है। वैसे तो इन गीतों को शिशु गीत नाम देकर लोकगीतों के अंतर्गत ही समाविष्ट किया जा सकता था, परंतु कुछ विद्वानों ने इस शिशु–गीतों को लोक–सुभाषित शीर्षक के अंतर्गत ही समाविष्ट किया है। ऐसा करते समय उनकी प्रधान दृष्टि रही होगी– इन गीतों के लघु आकार पर। नन्हे–मुन्ने शिशुओं के गीतों को चाहे, वे पालने में मन–बहलाने के लिए गाए गए हों अथवा सुलाने के लिए थपकियां देते समय या उनके विभिन्न खेलों में आनन्द–मग्न होते समय गवाया–गाया जाए, किंतु ये सभी प्रकार के शिशु गीत होते हैं – जो अत्यंत छोटे छंद में लघु आकार वाले ही होते हैं। इसलिए आकार साम्य के आधार पर लोकोक्ति, मुहावरों, पहेलियों आदि को लघु आकारीय विधाओं के साथ ही प्रकीर्ण वर्ग में वर्गीकृत किया गया है।

अब हम विवेचन की सुविधा के लिए इस वर्ग में आने वाले विभिन्न साहित्य रूपों का स्वरूप–विवेचन प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम लोकतुक्का को लें। तुक तो प्रायः प्रत्येक काव्यात्मक रचना में रहती है। परंतु तुक्का का अर्थ तुक वाला ही नहीं, साथ ही साथ ऐसी अभिव्यक्ति से है जो आकार में अत्यंत लघु, भाव में गंभीर तथा तुक के साथ निर्मित लोकसाहित्य रूप होता है। लोकोक्ति और लोक–तुक्का में प्रधान अंतर इतना ही है कि लोकोक्ति कभी–कभी बड़े आकार में भी मिल जाती है, जबकि लोक–तुक्का अत्यंत लघु आकार में ही मिलते हैं। दूसरा अंतर यह भी होता है कि अनेक बार लोकोक्तियों में गेयात्मकता के बावजूद तुकांत नहीं मिलता। वहां संगीत की एक लय होती है– परंतु अनेक बार तुक नहीं मिलता। किंतु तुक्का में संगीत की आवश्यकता नहीं होती और न लय की आवश्यकता रहती है। लोक–तुक्का में तुकांत आवश्यक रूप से मिलना चाहिए।

2.6.1 लोकोक्ति

प्रकीर्ण लोकसाहित्य की दूसरी सशक्त विधा है– लोकोक्ति, जिसकी व्युत्पत्ति करने पर लोक की उक्ति कहना पड़े तो इसका रूढ़ अर्थ नहीं निकल पाता। लोक की उक्ति वैसे तो लोकनाट्य, लोकगाथा, लोकगीत आदि सभी रूप हो सकते हैं, किंतु प्रकीर्ण–साहित्य के अंतर्गत कहावतों के अर्थ में यह शब्द–प्रयोग रूढ़ हो गया है। प्रकीर्ण साहित्य–रूप के अंतर्गत पहेलियां और मुहावरे आदि भी तो लोकोक्ति शब्द के बड़े उदर में समा सकते हैं। ऐसे लम्बोदर शब्द का कहावतों के अर्थ में प्रयोग ही यहां ग्राह्य है। एतदर्थ कहावतों के पर्याय रूप में इस लोकोक्ति शब्द को यहां प्रयोग किया गया है।

टिप्पणी

लोकोक्तियां अद्भुत ज्ञान की रत्नाकार हैं। इनका प्रयोग विश्व की सभी भाषाओं में होता है और जन–समुदाय के सामान्य ज्ञान और निरीक्षण को प्रकट करता है। यह मानव–प्रकृति और उसके व्यावहारिक ज्ञान की द्योतक हैं, जो उसे उत्तराधिकार में सदैव से प्राप्त होती चली आ रही हैं। दैनिक समस्याएं सुलझाने के लिए ये अद्भुत साधन हैं। लोकोक्तियों के माध्यम से किसी देश की जनता की विचारधारा, ज्ञान और संस्कृति का सुगमता से पता लगाया जा सकता है। बड़े–बड़े विचारकों ने लोकोक्तियों से ज्ञान प्राप्त किया है।

संस्कृत में लोकोक्ति के समानार्थी अनेक शब्द प्रचलित हैं, यथा–पवाद, आभाणक, पायोवाद, लोक प्रवाद, लौकिकी गाथा। ये शब्द लोकोक्ति की विभिन्न विशेषताओं को प्रकट करते हैं। विदेशी भाषाओं में भी इसके लिए पृथक–पृथक नामों का प्रयोग होता है, यथा – लैटिन में, ग्रीक में, स्पेनिश में, तुर्की में, रूसी में, अरबी में, हिब्रू में, और अंग्रेजी में भारतीय भाषाओं में भी इसके लिए पृथक नाम है, यथा हिंदी में लोकोक्ति, कहावत, उपखान, उर्दू में जबुंल मिस्ल, लंहदा में अखाण, राजस्थानी में ओखाणो, गढ़वाली में पखाणा, गुजराती में कहेवत, बंगला में प्रवाद, प्रवचन, मराठी में आणा, न्याय और तेलगु में समीटा आदि।

परंपरा

लोकोक्तियों की परंपरा हमारे प्राचीन साहित्य में मिलती है। वेद और उपनिषदों में अनेक लोकोक्तियां देखी जा सकती हैं, जो हमारे प्राचीन समाज की ज्ञान की परंपरा पर प्रकाश डालती हैं। संस्कृत साहित्य में सभी कवियों ने इनका सुंदर प्रयोग किया है। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि सभी कवियों ने लोकोक्त्यों का प्रयोग करके अपनी भाषा को प्रभावोत्पादक बनाया है। प्राकृत और पालि ग्रंथों में भी बहुत आकर्षक और अनुभूतिपूर्वक लोकोक्तियां हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश में नीति संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इनका प्रयोग किया गया है।

लोकोक्तियों में किसी समाज के आचार–विचार, रीति–रिवाज, धार्मिक और नैतिक संबंधों का पूर्ण विवरण मिल सकता है। ये सार्वभौमिक और सार्वकालिक हैं। जन–समुदाय में यह नीतिशास्त्र के सूत्रों का काम करती हैं। इसलिए यह समाज की अक्षय संपत्ति हैं। ये आदिम समाज से लेकर शिष्ट समाज के नित्य व्यवहार में आती है। इनसे प्रत्येक काल में समाज का पथ–प्रदर्शन होता रहता है।

उद्भव और विकास

लोकोक्तियों का निर्माण–स्थल यह विशाल जगत ही है। जीवन की वास्तविक घटनाओं और मानव की निरीक्षण शक्ति ने इन्हें जन्म दिया है। लोकोक्ति का निर्माण प्रारंभ में कोई व्यक्ति ही करता है, लेकिन उस निर्माता का व्यक्तित्व इतना लोकमय होता है कि उसकी व्यक्तिगत उक्ति लोक की उक्ति हो जाती है। लोकोक्तियों के निर्माता जीवन–दृष्टा थे। उसके प्रतिदिन के अनुभवों की सरस और सारपूर्ण अभिव्यक्ति ही लोकोक्ति है। उन्होंने किसी घटना को सामान्य जीवन में घटित होते हुए देखा होगा। उसकी संक्षिप्त और लयात्मक उक्ति ही लोकोक्ति कहलाई और एक गंभीर अध्ययन और सूत्र के रूप में समाज की संपत्ति बन गई।

टिप्पणी

लोकोक्तियों के जन्म के संबंध में डॉ. कन्हैयालाल सहल ने अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये हैं –

जो घड़ा पूरा भरा नहीं होता, वह कुछ छलकता है और उसके छलकने से कुछ आवाज होती है। इसके विपरीत जो पूरा भरा होता है, वह न छलकता है और न उसमें से कोई आवाज होती है। पानी का घड़ा लेकर आती हुई स्त्रियों के संबंध में यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है, किंतु यह तो मात्र नेत्रानुभव है। न जाने कितने लोग इस दृश्य को देखते हैं किंतु किसी प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया उनमें नहीं होती। किंतु किसी दिन किसी विचारशील व्यक्ति के मन में यह दृश्य उस व्यक्ति का चित्र सामने खड़ा कर देता है जो बोलता बहुत है किंतु जिसका ज्ञान अधकचरा है, जिसकी विद्या अधूरी है। ऐसी स्थिति में नेत्रानुभव मन के अनुभव के रूप में परिणित हो जाता है और उसके मुख से सहसा निकल पड़ता है – अधजल गगरी छलकत जाए। यद्यपि यह वाक्य प्रसंग–विशेष पर व्यक्ति के मुख से निकला था, तथापि समान प्रसंग आने पर अन्य लोग भी इस प्रकार की आवृत्ति करने लगते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति की उक्ति लोक की उक्ति बन जाती है, कहावत का रूप धारण कर लेती है।

लोकोक्तियों की उत्पत्ति के संबंध में डॉ. सहल की दूसरी कल्पना इस प्रकार है – कल्पना करिए कि किसी शिकारी ने बंदूक के निशाने से एक पक्षी को मार डाला और उसे हस्तगत कर लिया। यह हस्तगत पक्षी हवा में उड़ते हुए अथवा झाड़ियों में छिपे हुए अनेक पक्षियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है, किंतु कभी–कभी शिकारी दूसरे अनेक पक्षियों के लोभ में इस हस्तगत लाभ को छोड़ देते हैं। यह प्रायः सभी शिकारियों का नेत्रानुभव है, किंतु किसी शिकारी के मुख से कभी पहले–पहल जब यह विचार निकल पड़ा होगा हस्तगत एक पक्षी झाड़ी में छिपे दो पक्षियों के बराबर है। तब यह समझना चाहिए कि उनके नेत्रानुभव ने मानसिक अनुभव का रूप धारण कर लिया था। नेत्रानुभव और मानसिक अनुभव की इस एकाकारिता में ही कहावत का प्रादुर्भाव होता है। इस कहावत की उद्भावना का श्रेय शिकारी जगत को जा सकता है, किंतु इसका प्रयोग शिकारियों तक ही सीमित नहीं है। कहावत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अभिधेयार्थ को लेकर प्रवृत नहीं होती, उसका प्रयोग अन्योक्ति अथवा अन्योपदेश रूप में होता है। हम भी अपने जीवन में अनेक बार जब प्रस्तुत अथवा प्रकृत लाभ को छोड़कर अनिश्चित अप्रस्तुत लाभ की ओर उन्मुख होते हैं तो चेतावनी के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग किया जा सकता है।

डॉ. सहल के उपुर्यक्त विचारों से स्पष्ट है कि लोकोक्ति की उत्पत्ति जन–जीवन की किसी घटना और उसके संबंध में किसी व्यक्ति की संपूर्ण संक्षिप्त वाणी से होती है। इसकी उत्पत्ति के लिए घटना तथा तीव्र मानसिक अनुभूति की व्यंजना आवश्यक है। गढ़वाली और राजस्थानी में लोकोक्ति को अखाणो अथवा ओखणा कहना उसमें किसी घटना के समाहित होने को सार्थक सिद्ध करता है। लोकोक्ति को सिद्ध वाक्य भी कहा जा सकता है। क्योंकि उससे संबंधित घटना का पूर्ण अनुभव किसी व्यक्ति द्वारा कर लिया गया होता है यथा ब्रज में एक लोकोक्ति है –

परदेसी की प्रीति, झोल को तापनो,
दीये प्राण गंवाइ, तऊ न भयौ आपनो।

टिप्पणी

परदेशी से प्रेम करना निराधार है, क्योंकि वह प्रेमी को छोड़कर कभी भी जा सकता है। परदेशी से प्रेम करने से अंत में पछतावे के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता है। दूसरी घटना झोल पर तापने की है। झोल में अग्नि जलाने पर वह बहुत कम समय तक रहती है। यदि कोई व्यक्ति उससे अपना कोई कार्य सिद्ध करना चाहे तो असंभव है। इस लोकोक्ति में दो घटनाएं हैं, जो लोकोक्ति के रूप में आने पर सिद्ध वाक्य बन गई हैं। जीवन में कोई समान घटना आने पर उनकी उत्पत्ति के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। इनसे शिक्षा भी मिलती है। लोकोक्तियां भावी जीवन को पूर्ण बनाती हैं।

कुछ कहावतों की उत्पत्ति ऐतिहासिक व्यक्तियों के मुख से निकले हुए वाक्यों से होती है। उनका आधार भी कोई न कोई घटना ही होती है। तानाजी की मृत्यु पर शिवाजी का कथन 'गढ़ आला, पण सिंह गेला' लोकोक्ति बन गई है।

कुछ लोकोक्तियों का जन्म किसी स्थान की संस्कृति के प्रभाव से भी होता है। भारत में भाग्यवाद और कर्मवाद में विश्वास की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। उसी के संबंध में अनेक कहावतों का निर्माण हुआ है। 'विधि अंकूर मिटे न मिटाएं, जब दिन खोटै आवते मिट न कोई तदबीर' ऐसी ही लोकोक्तियां हैं। 'बामन कुत्ता हाथी, जे कबऊ न जाति के साथी' जैसी लोकोक्तियां भारत की जाति–प्रथा और समाज–व्यवस्था के कारण उत्पन्न हुई हैं।

लोकसाहित्य की अन्य विधाओं की तरह लोकोक्तियों का रचनाकार भी अज्ञात होता है। ये लोकोक्तियां दैनिक जीवन की तरह काव्य में भी प्रयोग की जाती हैं। लेकिन उस समय का पता लगाना कठिन है कि काव्य में इनका प्रयोग कब से प्रारंभ हुआ।

लोकोक्ति की परिभाषा

लोकोक्ति पर विचार करते समय सभी विद्वानों ने इसकी परिभाषा निर्धारित की है। इन सभी परिभाषाओं में, चाहे वे भारतीय विद्वानों की हों अथवा पाश्चात्य विद्वानों की, अधिक मतभेद या विचार–भेद नहीं है।

लोकोक्ति की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं–

टी. शिप्ले के अनुसार, "लोकोक्ति किसी विशेष समूह में प्रचलित कोई ऐसा वाक्य है जो लोकानुभव पर आधारित जीवन की एक सारभूत समीक्षा है।"

डॉ. श्याम परमार ने बोरकाटे के द्वारा लोकोक्ति की दी गई परिभाषा को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–"जनता की अपनी भाषा में किसी सर्वमान्य सत्य को थोड़े से शब्दों में प्रकट करने वाला लोक प्रचलित कथन ही लोकोक्ति है।"

रवींद्र भ्रमर के अनुसार, "लोकोक्ति लोक में प्रचलित वह वाक्य, कथन या लघु वार्ता ही ठहरती है, जिसे लोक मानस के अंतराल से प्रस्फुटित जान की कोई किरण माना जा सकता है।"

बेकन के अनुसार, "भाषा के वे तीव्र प्रयोग, जो व्यापार और व्यवहार की गुत्थियों को काटकर तह तक पहुंच जाते हैं, लोकोक्ति कहलाते हैं।"

डॉ. जॉनसन के अनुसार, "वे संक्षिप्त वाक्य जिनको लोग प्रायः दोहराया करते हैं, लोकोक्ति कहलाते हैं।"

इरैस्मस के अनुसार, "वे लोक प्रसिद्ध और लोकप्रचलित उक्तियां, जिनकी एक विलक्षण ढंग से रचना हुई हो, लोकोक्ति कहलाती है।"

ऑक्सफोर्ड कन्साइज़ डिक्शनरी के अनुसार, "सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त संक्षिप्त और सारपूर्ण उक्ति को कहावत कहते हैं।"

चैम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार, "लोकोक्ति वह संक्षिप्त और लोकप्रिय वाक्य है जो एक कल्पित सत्य या नैतिक शिक्षा अभिव्यक्त करता है।

ऐग्रीकोला के अनुसार, "कहावतें वे संक्षिप्त वाक्य हैं जिनमें आदिपुरुषों ने सूत्रों की तरह अपनी अनुभूतियों को भर दिया है।"

सर्वन्टीज के अनुसार, "कहावतें वे छोटे वाक्य हैं जिनमें लंबे अनुभव का सार हो।"

संक्षेप में लोकोक्ति तो वही हो सकती है जिसमें व्यापक अर्थव्याप्ति हो। लोकोक्ति वह उक्ति हो सकती है, जिसमें कोई गंभीर आशय छिपा हो। लोकोक्तियों का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और उसका संगठन कम से कम अर्थवान शब्दों में होता है।

लोकोक्तियों, कहावतों के लक्षण

लोकोक्तियों और कहावतों की सामान्य विशेषताओं पर विचार करते समय डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने समास–शैली, अनुभूति और निरीक्षण तथा सरलता का उल्लेख किया है, जिनकी लोकोक्तियों के लक्षण–निर्धारण में भी सहायता ली जा सकती है। डॉ. शंकरलाल यादव ने हरियाणा प्रदेश की लोकोक्तियों के विशेष संदर्भ में लोकोक्तियों के निम्न लक्षणों का उल्लेख किया है – 1. लाघव, 2. सच्चाई एवं अनुभव का सत्व, 3. घरेलू भाषा, 4. अनाम रचयिता, 5. लोकप्रियता एवं लोक चयन।

उन्होंने इन विशेषताओं का उल्लेख ही नहीं किया, अपितु डॉ. सत्येंद्र द्वारा संकेतित तुकांतता एवं अन्योक्तिरूपत्व का जो उल्लेख किया गया है, उसका खंडन करते हुए उन विशेषताओं के संबंध में अपनी आलोचना इस प्रकार की है–

उनका तर्क है कि तुक से कहावत का लयांश खिल उठता है, किंतु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं, जहां लयांश होता ही नहीं है। दूसरे, अन्योक्ति अंश को भी पृथक विशेषता मानने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वास्तविक कहावतों में अन्योक्ति ही उनका प्राण है। सामान्यार्थ की प्रतीति ही लोकोक्ति को गति देती है। विशेष की प्रतीति होती अवश्य है, किंतु कुछ ही स्थानों पर।

ऊपर जिन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, उनमें अनेक बार तो कुछ ऐसी बातें कही गई हैं जो लोकोक्तियों की ही विशेषता नहीं हैं, अपितु लोकसाहित्य की सभी विधाओं के लिए आवश्यक होती हैं। अनाम की स्थिति या घरेलू भाषा के आधार पर जो विशेषताएं बताई गई हैं, वे ऐसी ही विशेषताएं हैं जो लोकोक्ति–साहित्य के अतिरिक्त लोकसाहित्य के समस्त रूपों पर भी लागू होती हैं। इसलिए डॉ. दक्षिणामूर्ति द्वारा विवेचित निम्नलिखित लक्षणों को ही प्रस्तुत विवेचन का आधार माना जाता है –

1. **लघुत्व** – जैसा कि प्रायः सभी परिभाषाओं में संकेतित है, आकारगत लघुता लोकोक्ति का सर्वप्रथम एवं नितांत आवश्यक गुण है। सूत्रात्मक पद्धति में गठित

लोकोक्तियों में बड़ा प्रभाव देखा जाता है। इसलिए डॉ. सत्येंद्र ने लोकोक्तियों की परिभाषा निर्धारित करते समय गागर में सागर भरने की बात का संकेत किया है। ऊंट के मुंह में जीरा, अंधों में काना राजा, चोर की दाढ़ी में तिनका आदि ऐसी ही लघु आकारीय कहावतें हैं।

टिप्पणी

2. **लय या गति** – लोकोक्तियों में लय अथवा गति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रायः सभी लोकोक्तियां लयात्मक अभिव्यक्ति के रूप में ही निर्मित रहती है। प्रत्येक जनपद की लोकोक्तियों में अनेक ऐसी लोकोक्तियां प्राप्त होती हैं, जो अपने में गेय होती हैं और इसीलिए उन्हें काव्य–रूप में गठित लघु आकारीय विधा कहा जा सकता है। ब्रज जनपद की दो लोकोक्तियां नीचे उद्धृत हैं, जिन्हें इसी लयात्मकता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. *आलस नींद किसानयै खोबै, चोरयै खोबै खांसी।*
   टका ब्याज वैरागीयै खोबै, रौड़यै खोबै हांसी।।
2. *उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान।*

3. **तुक या अनुप्रास** – जैसा कि ऊपर भी संकेत किया जा चुका है, लोकोक्तियों में अनेकशः तुक और अनुप्रास का ध्यान रखा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप लोकोक्तियों की भाषा संगीतमय स्वरूप धारण करती है। यही नहीं, उसमें प्रभावक शक्ति का भी संवर्धन हो जाता है। ब्रज जनपद की कुछ लोकोक्तियों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करके इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। एक लोकोक्ति में आनुप्रासिक सौंदर्य देखिए –

सांच कू आंच न

इसी प्रकार एक अन्य ब्रज जनपदीय लोकोक्ति में तुकमयता का रूप इस प्रकार देखा जा सकता है –

एक बार जोगी द्वै बार भोगी
तीन बार रोगी, जंगल कूं जात हैं।

4. **निरीक्षण और अनुभूति की अभिव्यंजना** – मानव–जीवन की अनेक प्रकार की सूक्ष्म अनुभूतियां ही लोकोक्तियों के निर्माण में आधारशिला का कार्य करती हैं और ऐसी लोकानुभूतियां गहन निरीक्षणों पर आधारित होती हैं। ब्रज–जनपद की एक लोकोक्ति इसी प्रकार के लोकानुभव और सूक्ष्म निरीक्षण की परिचायक है–

सांझ कौ आयौ पाहुनौ, औरू सबेरे कौ मेहु

5. **प्रभावशीलता और लोक–रंजकता** – यद्यपि यह विशेषता प्रत्यक लोकोक्ति में नहीं होती, तथापि अधिकांश लोकोक्तियों के संबंध में यह सत्य सिद्ध होती हैं। ब्रज–जनपद में भी ऐसी लोकोक्तियां प्राप्त होती हैं, जिनमें लोकानुरंजन के साथ–साथ अपार प्रभावमयता की क्षमता होती है। ब्रज जनपद की दो–तीन लोकोक्तियां उद्धृत हैं – 1. अंधी पीसे कुत्ता खंइ। 2. चिराय के नीचे अंधेरों। 3. धोबी को कुत्ता घर कौ न घाट कौ।

टिप्पणी

6. **सरल शैली** – यह लोकोक्तियों की अनूठी विशेषता है कि उनकी अभिव्यक्ति इतनी सरल होती है कि अत्यंत शीघ्र ही बोधगम्य हो सकें। ब्रज की एक लोकोक्ति लीजिए –

1. सौकीन डुकरिया चटाई को लहंगा ।
2. अरहर की टटिया गुजराती तारौ।

लोकोक्तियों की विशेषताओं के इसी क्रम में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने जिन तीन विशेषताओं का और उल्लेख किया था, उनके संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि वे तीनों बातें डॉ. दक्षिणामूर्ति द्वारा विवेचित उपर्युक्त विशेषताओं में ही अंतर्भुक्त हो जाती हैं।

लोकोक्तियों का वर्गीकरण

लोकोक्तियां मानव–जीवन के विविध अंगों पर आधारित होती हैं। इसलिए इनका प्रयोग किसी को शिक्षा देने या सचेत करने के लिए किया जाता है। कहीं–कहीं लोकोक्तियों के प्रयोग का उद्देश्य यह रहता है कि प्रयोगकर्ता अपने कथन की पुष्टि इनके द्वारा करता हैं। कहीं व्यंग्य या हंसी उड़ाने के उद्देश्य से इनका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्य की भिन्नता, आधारभूत जीवन के पक्ष की भिन्नता, स्वरूप की भिन्नता और विषय की भिन्नता के आधार पर लोकोक्तियों के विभिन्न वर्ग निर्धारत किये जा सकते हैं। लोकोक्तियों के वर्गीकरण पर लेखनी चलाने वाले विद्वानों में सर्वप्रथम डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण प्रस्तुत हैं – 1. स्थान संबंधी, 2. जाति संबंधी, 3. प्रकृति तथा कृषि संबंधी, 4. पशु–पक्षी संबंधी तथा 5. प्रकीर्ण।

इस वर्गीकरण के तुरन्त उपरांत डॉ. उपाध्याय ने लोकोक्तियों के कुछ विशेष प्रकारों का उल्लेख डॉ. सत्येंद्र का संदर्भ देते हुए किया है, जो इस प्रकार हैं – 1. अनमिल्ला, 2. भेरि, अचका, 4. औठपाउ, 5. गह गड्ड, 6. ओलना तथा 7. खुंसि।

लोकोक्तियों के वर्गीकरण के संबंध में डॉ. महादेव साह, डॉ. श्याम परमार, डॉ. सत्या गुप्ता, डॉ. सरोजिनी रोहतगी, डॉ. मोहनलाल बाबुलकर, डॉ. शंकरलाल यादव इत्यादि अनेक विद्वानों ने अपने अध्ययन–क्षेत्र की लोकोक्तियों के आधार पर वर्गीकरण दिए हैं। डॉ. शंकरलाल यादव ने हरियाणा प्रदेश की लोकोक्तियों का विवेचन करते समय निम्न प्रकार की लोकोक्तियों का उल्लेख किया हैं – 1. जातिपरक, 2. देश या स्थानपरक, 3. इतिहासपरक, 4. कृषिपरक, 5. नीतिगर्भित तथा 6. व्यंग्यात्मक।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा किये गए वर्गीकरणों की शृंखला में सबसे महत्वपूर्ण स्थान डॉ. कन्हैयालाल सहल का है, जिन्होंने राजस्थान की लोकोक्तियों का अनुसंधानपरक अध्ययन करते समय, निम्न प्रकार की लोकोक्तियों का उल्लेख किया है – 1. ऐतिहासिक कहावतें, 2. स्थान संबंधी कहावतें, 3. समाज–चित्रण विषयक कहावतें, 4. शिक्षा–ज्ञान और साहित्यिक कहावतें, 5. धर्म और जीवन दर्शन संबंधी कहावतें, 6. कृषि संबंधी कहावतें, 7. वर्षा संबंधी कहावतें तथा 8. प्रकीर्ण।

लोकोक्तियों के वर्गीकरण पर विचार करते समय डॉ. कृष्णलाल हंस का नाम इसलिए स्मरण हो जाता है कि उन्होंने लोकोक्तियों के तीन वर्गीकरण दिए हैं, जिनमें से पहला वर्गीकरण है – स्वरूप के अनुसार, जिसके अंतर्गत निम्न चार प्रकार की लोकोक्तियों

टिप्पणी

का उल्लेख किया गया हैं – 1. प्राचीन संस्कृत–साहित्य पर आधारित, 2. मध्यकालीन हिंदी कवियों के काव्य पर आधारित, 3. अनूदित लोकोक्तियां तथा 4. तुलनात्मक लोकोक्तियां (एक वस्तु अथवा व्यक्ति की तुलना उसी के समान गुण, कर्म, स्वभाव अथवा रंग की दूसरी वस्तु या व्यक्ति से की जाती है)।

दूसरा वर्गीकरण उन्होंने किया है – स्थान के अनुसार, जिसके आधार पर निम्नांकित तीन वर्ग निर्धारित किये हैं – 1. सर्वदेशीय, 2. एक–देशीय, 3. क्षेत्रीय अथवा स्थानीय।

तीसरा और महत्वपूर्ण वर्गीकरण है – विषय के आधार पर, जिसके अंतर्गत निम्न आठ प्रकार की लोकोक्तियों की चर्चा की गई है–

1. ऐतिहासिक,
2. धार्मिक,
3. नैतिक,
4. दैनिक जीवन से संबंधित,
5. तथ्यपूर्ण
6. कृषि विषयक,
7. ज्योतिष विषयक,
8. व्यंग्योक्तियों से संबंधित।

लोकोक्तियों के जितने वर्गीकरण ऊपर दिए गए हैं, उनमें इतना ध्यान नहीं रखा गया है कि दो–दो वर्ग किसी एक वर्ग के अंतर्गत आ सकते हैं या नहीं। प्रायः सभी विद्वानों ने सरलतापूर्वक बिना किसी वैज्ञानिक पद्धति का आश्रय ग्रहण किये ही लोकोक्तियों के वर्गीकरण कर दिए हैं। उदाहरण के लिए धर्म संबंधी, लोक–विश्वास संबंधी या पौराणिक गाथाओं से संबंधित लोकोक्तियों के अलग–अलग वर्ग बनाए गए हैं, जबकि इन्हें धार्मिक लोकोक्तियों के अंतर्गत लिया जा सकता है। इसी प्रकार जाति संबंधी, पुरुष और नारी संबंधी कहावतों के पृथक वर्ग निर्धारित किये गए हैं, जबकि इन्हें सामाजिक कहावतों के अंतर्गत अंतर्भुक्त किया जा सकता है।

सारांश यह है कि कहावतों के वर्गीकरण के संबंध में विद्वानों का एक निश्चित अभिप्राय नहीं है। वर्गीकरण विधान कुछ भी हो, यह स्मरण रखना चाहिए कि वे सर्वथा एक–दूसरे से पृथक नहीं हैं। जैसा कि बताया गया है, एक ही कहावत में दो या दो से अधिक संबद्ध विषय दिखाई पड़ सकते हैं।

डॉ. दक्षिणामूर्ति ने रूप के आधार पर निम्न प्रकार की कहावतों का उल्लेख किया है –

1. प्रश्न–रूपक कहावतें,
2. निश्चय–रूपक कहावतें,
3. निषेध–रूपक कहावतें,
4. विधि–रूपक कहावतें,
5. उपमान–रूपक कहावतें
6. संवाद–रूपक कहावतें।

उक्त विद्वान ने दूसरा वर्गीकरण किया है – विषय के आधार पर, जिसे हम अविकल रूप में आगे उद्धृत करके लोकोक्तियों के वर्गीकरण के इस प्रसंग का समापन करेंगे।

1. धार्मिक कहावतें – (क) धर्म संबंधी साधारण कहावतें, (ख) ईश्वर संबंधी कहावतें, (ग) भाग्य–कर्म संबंधी, (घ) लोकविश्वास और आचार–विचार संबंधी, (ङ) शकुन संबंधी, (च) भक्ति–वैराग्य संबंधी और (छ) पौराणिक गाथाओं से संबंधित।

टिप्पणी

2. नैथिक कहावतें – (क) अर्थ–नीति, (ख) मैत्री, (ग) राजनीति, (घ) परोपकार, (ङ) आदर्श जीवन तथा (च) अन्य नैतिक कहावतें।

3. सामाजिक कहावतें – (क) समाज का सामान्य चित्र, (ख) व्यक्ति का चित्र, (ग) सृष्टि में मानव तथा मानवेतर प्राणी–पदार्थ, (घ) जाति संबंधी कहावतें, (ङ) पुरुष संबंधी कहावतें, (च) नारी संबंधी कहावतें तथा (छ) अन्य सामाजिक कहावतें।

4. वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक कहावतें – (क) शिक्षा तथा ज्ञान संबंधी, (ख) कृषि तथा वर्षा–विज्ञान संबंधी– 1, कृषि संबंधी साधारण कहावतें, 2. वातावरण और वर्षा संबंधी, 3. मिट्टी के लक्षण संबंधी, 4. जुताई और कृषि–प्रबंध संबंधी, 5. फसल संबंधी तथा 6. कृषि में सहायक पशुओं से संबंधित। (ग) मनोवैज्ञानिक कहावतें– 1. साधारण कहावतें, 2. विश्लेषणात्मक कहावतें। (घ) कुछ अन्य कहावतें – 1. ऐतिहासिक घटना–मूलक कहावतें 2. व्यक्ति–प्रधान कहावतें तथा 3. स्थान संबंधी कहावतें।

2.6.2 मुहावरे

मुहावरे का प्रयोग दैनिक जीवन में अपनी भाषा को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए होता है। भाषा में लाक्षणिकता से संयम आ जाता है और उसका अनावश्यक विस्तार दूर हो जाता है। ये किसी भाषा में प्रयोग होने वाले वाक्य–खंड हैं, जिनके प्रयोग से वाक्य सबल और सतेज हो जाते हैं। मुहावरे वाक्यांश होते हैं, जो अपना अर्थ वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही प्रकट करते हैं। स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने पर इनका अर्थ प्रकट नहीं होता। यह अपने मूल रूप में प्रयोग किये जाते हैं। शब्द–परिवर्तन कर देने पर इनका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे – 'पानी–पानी होना' एक मुहावरा है, इसकी जगह यदि 'जल–जल होना' प्रयोग किया जाए तो वह कोई अर्थ प्रकट नहीं करेगा। संसार में मानव ने अपने दैनिक जीवन में जिन वस्तुओं को बहुत कौतूहल से देखा और जिन भावों का सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण किया, उन्हीं को शब्दों में प्रकट किया और यही शब्द मुहावरे कहलाए।

भाषा–शास्त्रियों के मतानुसार मानव की प्रयत्न लाघवप्रियता ही मुहावरों की उत्पत्ति का रहस्य है। वह कम से कम शब्दों में अपने भावों को प्रकट करना चाहता है, साथ ही साथ वह अपनी बात को रहस्यात्मक और गोपनीय ढंग से भी कहना चाहता है। इसलिए वह साधारण बात को साधारण शब्दों में न कहकर घुमा–फिराकर कहता है। भाषा का यह रूप लघु और गद्यात्मक होता है। भाषा में इनका प्रयोग हास्य–व्यंग्य, चमत्कार, लघुता, विचारों की स्पष्टता और अभिव्यक्ति को सरल बनाने के लिए होता है। इनके प्रयोग से शैली मनोरंजक हो जाती है और आत्मीयता का वातावरण उत्पन्न होता है।

परस्पर बातचीत और सवाल–जवाब करने का अर्थ–बोध कराने वाला यह शब्द अरबी भाषा से गृहीत हुआ है। यद्यपि हिंदी में इसके पर्याय के रूप में रूढ़ि–प्रयुक्तता, वाक्धारा इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, परंतु प्रयोग के आधार पर मुहावरा शब्द ही अधिक प्रचलित है। हिंदी शब्द–सागर में 'मुहावरा' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है –

टिप्पणी

लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही भाषा में प्रचलित हो और उसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो।

लाला भगवानदीन ने रूढ़ि लक्षणा को ही मुहावरा माना है। इसी क्रम में डॉ. कृष्णलाल हंस का निम्न कथन भी दृष्टव्य है, जो उन्होंने निमाड़ी भाषा के मुहावरों का अध्ययन करते समय व्यक्त किया है –

मुहावरे वास्तव में वाक्य खंड है, जब इनका प्रयोग वाक्य में किया जाता है, तब उस वाक्य की शक्ति और प्रभाव पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मुहावरों में जो शब्द प्रयुक्त होता है, वह अत्यंत सार्थक एवं नपा–तुला होता है। मुहावरों के लक्षणों और विशेषताओं के संबंध में भी बड़े विस्तार से चर्चा की गई है। डॉ. कृष्णलाल हंस ने मुहावरे की निम्न विशेषताएं बताई हैं –

1. इन्हें बोलियों में जो रूप प्राप्त हुआ, वह भाषा अथवा उसके उच्च–कोटि के साहित्य में सदैव अक्षुण्ण रहा।
2. मुहावरे का अर्थ बिना उसका वाक्यों में प्रयोग किये स्पष्ट नहीं होता।
3. मुहावरा शब्दार्थ को छोड़कर सदैव कोई विशेष अर्थ ही प्रकट करता है।
4. मुहावरे का प्रयोग प्रसंग–विशेष में ही किया जाता है, और उस प्रसंग के अनुसार ही उसका अर्थ होता है।

मुहावरों और लोकोक्तियों का अंतर

लोकोक्ति और मुहावरे–दोनों ही लघु आकारीय अभिव्यक्ति के प्रकार हैं, किंतु इनमें पर्याप्त अंतर होता है। इस संबंध में डॉ. शंकरलाल यादव के विचार द्रष्टव्य हैं –

लोकोक्ति में एक पूर्ण सत्य या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। वह दूसरे वाक्य का अंश नहीं बनता, वरन् एक स्वतंत्र वाक्य होता है। रूढ़ि (मुहावरा) स्वतंत्र नहीं होती, वह तो वाक्य के भीतर ही प्रयुक्त होती है अथवा यों कहिए कि वह किसी वाक्य में रखे जाने के लिए विवश होती हैं।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने मुहावरों और कहावतों का अंतर स्पष्ट करते हुए जहां एक ओर उपर्युक्त सत्य का उद्घाटन किया है, वहां दूसरी ओर निम्न विचार भी व्यक्त किये हैं–

मुहावरे गद्यात्मक होते हैं, परंतु लोकोक्तियां गद्य और पद्य– दोनों में होती हैं। दोनों का आकार लघु होता है, परंतु मुहावरा लघुत्तर होता है।

इस संबंध में डॉ. दक्षिणामूर्ति ने विस्तार से प्रकाश डाला है। जहां उन्होंने एक ओर ऊपर बताई गई पार्थक्य–भेदक रेखाओं का उल्लेख किया है, वहां दूसरी और निम्न तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं –

1. लोकोक्ति का प्रयोग बहुधा अन्योक्ति या अप्रस्तुत व्यंजना के लिए होता है, जबकि मुहावरों का प्रयोग लाक्षणिक होता है।
2. अधिकतर मुहावरों के अंत में 'ना' प्रत्यय रहता है, जैसे –गुस्सा पीना, सिर पर चढ़ना आदि–आदि, जबकि लोकोक्तियों में इस प्रकार का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता है।

टिप्पणी

3. कहावतें अनेक देश की भाषाओं में मौलिक भाव लिए हुए रहती हैं, यह भावगत मौलिक एकता मुहावरों के लिए आवश्यक नहीं है। डॉ. दक्षिणामूर्ति के ही शब्दों में इस तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है –

   एक भाषा के मुहावरों को दूसरी भाषा में रूपान्तरित नहीं कर सकते। शब्दशः अनुवाद करने पर अर्थ की हानि होती है, परंतु कहावत के संबंध में यह बात नहीं। कहावत अनुभव–दुहिता है, उनमें सार्वदेशीय सार्वकालीन सत्य छिपा रहता है। एक भाषा में जो कहावत है, वह दूसरी भाषा में भी दिखाई पड़ सकती है, अभिव्यंजना में भिन्नता भले ही रहे।

4. मुहावरे में कार्य व्यापार होता है, जबकि कहावत में कोई नैतिक वाक्य या अनुभूति–जन्य कथन समाविष्ट होता है।
5. कहावतें अलंकार–शास्त्र के अंतर्गत आती हैं, जबकि मुहावरे शब्द–शक्तियों के अंतर्गत।

मुहावरों के प्रकार

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मुहावरा शब्द किसी कार्य व्यापार या घटना–विशेष के आधार पर प्रचलित होता है, इसलिए मुहावरों के विविध प्रकार दिखाई देते हैं। मुहावरों के विविध आधारों की दृष्टि से रखकर यह विभाजन किया जा सकता है। मुहावरों के निम्नांकित प्रकार पाए जाते हैं –

1. संस्कार तथा प्रथाओं का उल्लेख करने वाले
2. इतिहास का चित्रण करने वाले
3. पौराणिक संदर्भों को व्यक्त करने वाले
4. जातिगत घटनाओं पर आधारित
5. शकुनापशकुनों से संबंधित

लोकोक्ति व मुहावरों में लोकसंस्कृति का प्रतिबिंब

लोकोक्तियां और मुहावरे, लोकसंस्कृति और लोकानुभूतियों को अपने में समाहित रखते हैं। समाज की प्रथा–विश्वास, भाग्य, संस्कार, जाति, अर्थव्यवस्था, नीति, पुराणों में विश्वास, शकुन–अपशकुन, धार्मिक आस्था, भोजन आदि अनेक तथ्यों का मुहावरों और लोकोक्तियों में प्रतिबिंब है। इनकी परिधि व्यापक और विस्तृत है, जिसे किसी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। लोकसंस्कृति का यह चित्रण निम्नलिखित है –

1. **संस्कार संबंधी रीतियों का प्रतिबिंब–** मुहावरों और लोकोक्तियों में संस्कार संबंधी अनेक रीतियों का उल्लेख है। पुत्र–जन्म से मानव की मृत्यु तक के संस्कारों के आधार पर अनेक मुहावरों की रचना हुई है। चूड़ी बहोरना, बांह छोड़ना, सुहाग उतरना, हल्दी के दाग न छूना, भांवर डालना, नैनों का सुरमा न छूटना, दांतों की मिस्सी न छूटना, मांग बघेरना, लकड़ी देना, क्रिया–कर्म करना आदि मुहावरे संस्कारों की क्रियाओं का उल्लेख करते हैं।

2. **ऐतिहासिकता का प्रतिबिंब–** लोकोक्ति और मुहावरों में इतिहास की अनेक घटनाओं का प्रतिबिंब है। 'अनाड़ी' होना, जौहर करना, ताज ऊंचा करना, बीड़ा उठाना आदि ऐसे ही मुहावरें हैं। अनाड़ी शब्द भारत की अनार्थ जातियों की ओर संकेत करता है, जिन्हें आर्यों की अपेक्षा कम बुद्धिमान समझा जाता था। मध्यकाल में स्त्रियां अपने पतियों के साथ जिंदा जल जाती थी, जौहर करना उसी प्रथा की ओर संकेत करता है। राजा अपने मस्तक पर ताज बांधा करते थे, जो राजा की कीर्ति और राजत्व का प्रतीक होता था। इसी प्रकार जयचंद्र होना, विभीषण होना आदि मुहावरे देशद्रोही व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

3. **पौराणिक विश्वास–** भारतीय समाज में पाप–पुण्य, मोक्ष, स्वर्ग–नरक आदि की जड़ें बहुत गहरी हैं। अतः इनसे संबंधित अनेक मुहावरे हैं। पाप धोना, माया रचना, मुल्के अदम पहुंचाना, हंस रवाना होना, ईश्वर का पूंजा होना आदि मुहावरे तथा 'लिखने वाला लिख गया मेंटन हारा कौन', 'होनी अमिट ऋषि–मुनि गाई' आदि लोकोक्तियां हमारे पौराणिक विश्वास को अभिव्यंजित करती हैं। जीवनकाल में दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति को पापी माना जाता है। उसके अचानक सत्कर्म करने पर पाप धोना मुहावरा प्रयोग किया जाता है। अपने हृदय में कपट भाव रखकर किसी सत्पुरुष को सताए जाने के लिए किसी कार्य को करने के लिए माया रचना मुहावरा प्रयुक्त होता है। राम के लिए मारीचि ने ऐसी ही माया रची थी। पुराणों के अनुसार मनुष्य मरणोपरांत निवास के लिए किसी परलोक में जाता है, अतः किसी को मारने के लिए मुल्के अदम पहुंचाना कहा जाता है। इसी प्रकार भाग्यवाद संबंधी अनेक मुहावरे पौराणिक विश्वासों पर रचे गए हैं।

4. **नैतिकता का प्रतिबिंब –** नीति संबंधी लोकोक्तियों में भारतीय लोक संस्कृति का चित्रण हुआ है। बिगरी में भाई टूटि जाति असनाई, बिन भैया शोभा नांइ, भाई–बंधी में एक सरम सब होती है असनाई की आदि अनेक ऐसी ही लोकोक्तियां हैं। मनुष्य पर विपत्ति गिरने पर उसके संबंधी भी संबंध–विच्छेद कर लेते हैं। किसी समारोह में भाइयों के अभाव में शोभा नहीं होती। भाई को अपने भाई की मर्यादा और ज्ञान की रक्षा के लिए उसके किसी कार्य को अपना कार्य समझ कर करना चाहिए। ये लोकोक्तियां हमारे लोक–समाज की नीतियों पर प्रकाश डालती हैं।

5. **जातिवाद का प्रतिबिंब –** अनेक मुहावरों में हमारे समाज में व्याप्त जातिवाद का उल्लेख है। छत्तीसा मुहावरा नाई की जाति की चतुरता की ओर संकेत करता है। कोरिया मुहावरा कोलियों के सीधे–सच्चे और भोलेपन पर प्रकाश डालता है। गधा, बैल, चमरा, बछिया के ताऊ आदि ब्रजभाषा के मुहावरे मूर्ख, आलसी और गंवार व्यक्तियों के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

6. **अंध–विश्वास और शकुन–अपशकुन का प्रतिबिंब–** हमारे जनसमुदाय में ऐसे मुहावरे भी बोले जाते हैं, जो मानव–समाज में व्याप्त अन्ध–विश्वासों और शकुन–अपशकुनों पर प्रकाश डालते हैं। किसी बच्चे के बीमार हो जाने पर उसे नजर लगना कहा जाता है और कुदृष्टि निवारण के लिए टोने–टोटके किये जाते

टिप्पणी

है। एड़ी खुजाना, काग मड़राना, हत्था चिल्लाना, नमक खाना, गंगा नहाना आदि ऐसे ही ब्रज भाषा के मुहावरे हैं। काग मड़राना और हत्था चिल्लाना मुहावरे किसी अशुभ घटना के प्रकट होने के लिए इंगन करते हैं। लोक–विश्वासानुसार कोई व्यक्ति किसी का नमक खा लेने पर उसे धोखा नहीं दे सकता। किसी असंभव कार्य में सफल होने पर गंगा नहाने के समान परिणाम मिलता है।

7. **आर्थिक स्थिति का प्रतिबिंब** – अनेक लोकोक्तियां जन समुदाय की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालती हैं। 'घर में नहीं दाने बीबी चली भुनाने' लोकोक्ति में गरीब व्यक्ति का प्रतिबिंब है। अपनी आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर अतिव्ययता करने पर यह कथन कहा जाता है। थूक से सत्तू न सनना भी कार्य में आर्थिक साधनों की लघुता की ओर संकेत करता है।

2.6.3 पहेलियां

मानव अपने मनोरंजन के लिए चिर–परिचित वस्तुओं के संबंध में अपने कथन को लयात्मक, रहस्यात्मक और प्रश्नात्मक रूप में कहता है और उसका उत्तर किसी अन्य व्यक्ति से पूछा जाता है। इस प्रश्न को पहेली कहते हैं। इन पहेलियों के समाधान से मनुष्य में ज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति और प्रसार हुआ। अपने ज्ञान–विज्ञान के प्रदर्शन और गुरूता के लिए वह अपने साथियों से अनेक प्रश्न करता है। इन प्रश्नों को पहेली कहते हैं।

पहेलियों का उद्‌भव, विकास और परंपरा

पहेलियों के उद्‌भव के संबंध में फ्रेजर का कथन है कि उनका उदय उस समय हुआ होगा, जबकि किन्हीं कारणों से वक्ता को किसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहने में किसी प्रकार की अड़चन हुई होगी। मानव में बुद्धि के विकास के साथ ही मनोरंजन की भावना पैदा हुई होगी। अतः अपने ज्ञान को रहस्यात्मक रूप में कह कर उसने दूसरों की बुद्धि परीक्षा की होगी और उसके साथ ही मनोरंजन भी हुआ होगा। आज भी प्रायः सभी सभ्य जातियों में बुद्धि परीक्षा तथा मनोरंजन के लिए अवकाश के क्षणों में पहेलियां पूछी जाती हैं। कुछ अन्य जातियों मे विशिष्ट अवसरों पर मनोरंजन और बुद्धि परीक्षा के लिए प्रश्न किये जाते हैं, जो पहेलियां ही हैं। मध्य प्रदेश में मंड़ला जिले में गोंड़, प्रधान और बिरहौर जातियों में विवाह के समय पहेलियां पूछी जाती हैं। भोजपुरी प्रदेश में विवाह के समय जब वर वैवाहिक अवधि के उपरांत कोहबर में प्रवेश करता है, तब घर की स्त्रियां उससे पहेली पूछती हैं, जिन्हें छेंका कहते हैं। इन पहेलियों का उत्तर देने के उपरांत ही वर कोहबर में प्रवेश कर सकता है, अन्यथा नहीं। मनोरंजन और वर की बुद्धि परीक्षा के लिए ही इस प्रथा का अयोजन किया जाता है।

पहेलियों की परंपरा बहुत प्राचीन है। वेदों में भी अनेक पहेलियां पाई जाती हैं। ऋग्वेद में पहेलियों की प्राप्ति के कारण ही रामनरेश त्रिपाठी ने उसे पहेलियों का वेद कहा है। डॉ. सत्येंद्र ने पहेलियों को अश्वमेघ यज्ञ का एक अनुष्ठान स्वीकार किया है। अश्व की बलि से होतु और ब्राह्मण ब्रह्मोदय (प्रहेलिका) पूछा करते थे। ऋग्वेद के एक मंत्र को विद्वानों ने पहेली स्वीकार किया है, जो इस प्रकार है –

चत्वारि श्रृंङ्गा त्रयो अस्य पादा,
द्वे शीर्ष सप्तहस्ता सो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोववाति,
महादेवो भर्त्या आविवेश।

जिसके चार सींग है, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, जो तीन जगहों से बंधा हुआ है, वह मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ वृषभ शब्द करता हुआ महादेव है। आचार्यों ने अपने–अपने मतानुसार इसके विभिन्न अर्थ दिए हैं। लेकिन उपर्युक्त मंत्र को पहेली अवश्य माना जाएगा। महाभारत में यज्ञ और युधिष्ठिर के संवाद को पहेलियों का रूप ही कहा जाएगा। संस्कृत साहित्य में इसकी संख्या असीमित है। वहां इन्हें अंतर्लापिका और बहिर्लापिका कहा गया है। इनका एक संग्रह सुभाषित–रत्न भाण्डागारम् के नाम से मिलता है। हिंदी साहित्य में अमीर खुसरों की मुकरियां प्रसिद्ध हैं। इन मुकरियों की परंपरा संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त होती है। यथा –

काले वारिधराणां, अपतितया नैव शक्यते गन्तुम्।
उत्कंठितासि भद्र ? नहिं–नहिं सखि! पिच्छिलः पन्था।।

एक युवती का कथन है कि वर्षाकाल में बिना पतन (गिरना, पथभ्रष्ट होना) हुए नहीं रहा जा सकता। इस पर सखी पूछती है कि क्या तुम पति–समागम के लिए उत्सुक हो ? इसका निषेध करती हुई युवती कहती हैं, नहीं, नहीं ! सखि! मेरा आशय तो यह है कि रास्ते में वर्षा से फिसलन हो गई है।

इस प्रकार की मुकरियों को पहेली ही कहा जा सकता है।

पहेलियों में अर्थ–गौरव

साहित्य के कुछ परवर्ती विद्वानों ने पहेली को एक अलंकार माना है। उनका कथन है कि जिस प्रकार लोकोक्ति एक अलंकार है, उसकी प्रकार पहेली भी एक अलंकार है। संस्कृत और हिंदी के प्राचीन आचार्य ऐसा नहीं मानते। पहेली बुद्धि–परीक्षा और बुद्धि–विलास की वस्तु है। इसमें अर्थ–योजना करनी पड़ती है, जिसके लिए बुद्धि–बल का प्रयोग करना पड़ता है। बुद्धि–बल का प्रयोग होने के कारण रसानुभूति में बाधा पड़ती है। यह सूरदास के दृष्टिकूट पदों के समान है। उनका अर्थ ज्ञात करने के लिए भी बहुत बुद्धि लगानी पड़ती है, इसलिए रसानुभूति में बाधा पड़ती है। आचार्य सम्मट ने पहेली को एक अलंकार न मानते हुए लिखा है –

रसस्य परिपन्थित्वात् नालंकारः प्रहेलिका।

(ये कथन सुंदर प्रकार के भले ही हों, लेकिन इन्हें अंलकार नहीं माना जा सकता।)

डॉ. सत्येंद्र ने पहेलियों को किसी वस्तु का वर्णन माना है। इसमें अप्रकृत वर्णन के द्वारा प्रकृत का वर्णन होता है। इन पहेलियों में अप्रकृत वस्तु उपमान के रूप में आता है। वास्तव में ग्रामीण पहेलियों में ऐसे उपमान ग्रामीण वातावरण अर्थात लोकजीवन से लिए गए होते हैं।

टिप्पणी

पहेलियों में कुछ सार्थक, कुछ निरर्थक और अद्भुत शब्द होते हैं। ये निरर्थक शब्द उस वस्तु के अर्थद्योतन में सहायक होते हैं, क्योंकि वे किसी वस्तु के भाव की ओर संकेत करते हैं। पहेलियां एक प्रकार से वस्तु को सुझाने वाली उपमानों से निर्मित शब्द चित्रावली है, जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका चित्र है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानों के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है, वह अस्पष्ट होता है, उससे अभिप्रेत वस्तु का बहुत अधूरा संकेत मिलता है, पर वह संकेत इतना निश्चित होता है कि यथासंभव उससे किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता।

गतिविधि

रावर्ट ग्रेब्स और डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा उल्लिखित लोकगाथाओं की विशेषताओं का एक चार्ट बनाए।

क्या आप जानते हैं?

रामलीला के संबंध में यह विश्वास प्रचलित है कि जहां रामलीला का प्रदर्शन होता है, वहां हनुमान जी अवश्य ही सुनने आते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

31. लोकोक्तियों की परंपरा हमारे...... साहित्य में मिलती है।
32. मुहावरों का प्रयोग ....जीवन में अपनी भाषा को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए होता है।
33. साहित्य के कुछ परवर्ती विद्वानों ने पहेली को एक......... माना है।

सही/गलत बताइए–

34. डॉ. कृष्णलाल हंस ने स्वरूप के अनुसार वर्गीकरण करते हुए सात प्रकार की लोकोक्तियों का उल्लेख किया है।
35. लाला भगवानदीन ने रूढ़ि लक्षण को ही 'मुहावरा' माना है।

2.7 सारांश

लोकगीतों का संबंध लोकजीवन के सुख और दुःख से है। इनमें जन–जीवन के भाव अभिव्यक्त होते हैं। सृष्टि के आदिकाल में सामाजिक चेतना के साथ लोकगीत का उदय हुआ, जिसका संबंध जन–जीवन से था। धीरे–धीरे मानव में ज्ञान का विकास हुआ और उसने लयबद्ध वाणी में अपने सुख–दुःख की कहानी कहना प्रारंभ किया। यह लयबद्ध वाणी लोककंड का आश्रय पाकर लोकगीत बनी।

लोकगीतों का वास्तविक सौंदर्य उनके संगीत के कारण होता है। गेयात्मकता को लोकगीतों का प्रांरभ कहा जा सकता है। लोक–जीवन में जब भावारितेक होता है, तब गीत का स्वर फूटा करता है और वह भी एक नैसर्गिक संगीत के साथ। शास्त्रीय संगीत जैसी नियमबद्धता लोकगीतों में नहीं होती है तथा सहज संगीत लोक–गीतों के साथ आवश्यक रूप से जुड़ा रहता है। इसीलिए लोकगीत के गायक स्वर को किसी विशेषज्ञ संगीत–शिक्षा–व्यवस्था की आवश्यकता नहीं थी। यह बिना प्रशिक्षण के उस गीत के गाने की लय को ह्रदयंगम कर जाता है और थोड़े से अभ्यास से ही वह पूर्ण रूप से गाने लगता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकगीतों में संगीत का पुट घुला–मिला रहता है, जिसके साथ लोक–जीवन के ही वाद्य प्रयुक्त रहते हैं।

"लोक–जीवन का सुंदरतम प्रतिबिम्ब लोकगीत और लोक–संगीत में दिखाई पड़ता है। क्योंकि लोकगीतों में शब्दों और स्वरों के चयन में कृत्रिमता का अभाव रहता है। इनमें लोक–जीवन का सीधा–सादा चित्र भी रहता है, लोकगीत सरल, सुंदर, अनुभूतिमय

तथा संगीतमय होते है। कदाचित् ही कोई ऐसा लोकगीत हो जो संगीत से अनुप्राणित न हुआ हो।"

लोकगीतों को गाते समय जिन वाद्यों का प्रयोग होता है, उनके हम दो वर्ग निर्धारित कर संकते हैं। प्रथम प्रकार के अंतर्गत हम उन वाद्यों को ले सकते हैं, जो गायक के साथ संगत करते हैं। इन वाद्यों में से ब्रज प्रदेश में सारंगी वाद्य अधिक प्रचलित है। ब्रज संगीत के साथ बांसुरी के सहकार को कौन भुला सकता है। इसी प्रकार बीन नाम का वाद्य भी लोकगीतों में गायक के साथ संगत करता है। लोकगीत को गाते समय वादक एक विशेष प्रकार की बीन बजाते हैं। लोकगीतों के साथ बजाई जाने वाली सिंगी बाजा तो मध्यकालीन अनेक पदों में आया है। ऐसा ही बाजा तुरई भी है, जो आगे चलकर बीन के रूप में परिवर्तित हुआ है। ये लोकगीतों के साथ बजाए जाने वाले बाजे हैं। ब्रज प्रदेश में आजकल युग–प्रभाव के कारण हारमोनियम बाजा भी स्वर सहकारी वाद्य के रूप में बहुत प्रचलित हो चला है। परंतु लोक–वाद्यों के अंतर्गत इसको समाविष्ट नहीं किया जा सकता। वाद्यों के वर्गीकरण में उन वाद्यों को समाविष्ट किया जा सकता है, जो स्वर की संगत का ताल और ध्वनि–रूपक का सहकार करते हैं। ढप, ढोलक, मृदंग, खंजरी आदि ताल वाद्य इस कोटि में आते हैं। ताल–वाद्यों में सबसे अधिक आकृष्ट करता है 'नक्कारा' जो अपार जन–समूह के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले लोक–संगीत में रहता है। नौटंकी, स्वांग और रसिया शैली के दंगल, बिना इस वाद्य के सूने रह जाते हैं।

लोकगीतों को सुरक्षित रखने तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचाने का श्रेय नारी वर्ग को दिया जा सकता है। नारी कंठ के अजस्त्र स्रोत में गीतों की स्वच्छंद धारा अविरल गति से प्रवाहित होती रहती है। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक, उसके पालन–पोषण में, दिन भर कार्य करने में, किसी विशेष अनुष्ठान अथवा व्रत के समय और तीर्थयात्रा के समय स्त्रियां गीतों के इस स्रोत को प्रवाहित किये बिना नहीं रहतीं। वे किसी भी रिक्त क्षण में यथा खेत–खलिहान में जाते समय, खेत से लौटते समय अपने कल–कंठ से मधुर गीत गाकर अपनी तरफ श्रोताओं को आकर्षित करती हैं। गीत गाने का यह क्रम वर्ष भर चलता है। पौष माह में स्त्रियां शीत लहरी की तेजी के कारण नहीं गा पातीं। श्रावण और फाल्गुन मास में रूप–सौंदर्य की आकर्षक छटा के समय स्त्रियां अधिक गीत गाती हैं। इसके गीतों में भावों की भी अनेकरूपता देखी जा सकती है। ऋतुओं का क्रम इनके भावों को अनेक रूपता प्रदान करता है। फाल्गुन मास के गीत शृंगार परक होते हैं। श्रावण माह के गीतों में भाई–बहन स्नेह, सास के अपनी वधू पर अत्याचार तथा उसका अपने भाई को पुकारना, विरहिणी का अपने प्रवासी पति को बुलाना अथवा पति को प्रवास के लिए न जाने देना, अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राण की बलि देना आदि अनेक भाव रूपांकित हुए हैं। जन्म और विवाह–संस्कार के गीत एक तरफ उसके आनन्द को प्रकट करते हैं तो दूसरी तरफ मानव के आदि मानस को प्रकट करते हैं। इस प्रकार नारी का कंठ लोकगीतों को संरक्षित करने का प्रबल साधन है।

पुरुष भी गीत गाकर अपने हृदय के आनन्द को प्रकट करते हैं। खेत बोते, निहाते, गाड़ी अथवा रहट हांकते, गाय अथवा भैंस चराते, पुरहा लेते अथवा रास्ता चलते समय वे भी गीत गाते हैं। काम करने वाला यंत्र ही इनके लिए लोकवाद्य है जिसकी ध्वनि अथवा

टिप्पणी

चाल के साथ ताल मिलाते हुए वे गीत गाते हैं। पुरुष वर्ग ने लोकवाद्यों की परिधि को बहुत विस्तृत कर दिया है। गाय चराते समय हाथ की लाठी और पृथ्वी, पृथ्वी पर बैठकर गाते समय ताली अथवा जांघें, निराते समय खुरपी अथवा फावड़ा, अन्य कुछ नहीं तो ईटों के दो टुकड़े आपस में बजाना, गाड़ी हांकते समय गाड़ी के पहियों और बैलों के पैरों की ध्वनि, रहट की बाल्टियों की ध्वनि आदि उसके लोकवाद्य हैं, जिनके साथ ताल देता हुआ वह आनन्द के साथ गाता है। भारतीय जन समुदाय में कुछ गीत पुरुषों के द्वारा उपचार के लिए गाए जाते हैं। भूत–प्रेत उतारने के लिए घटथाली वाद्य के साथ 'रामायन' अथवा 'सोइले', सर्पदंश को निर्मूल करने के लिए 'भरनी', भूत उतारने अथवा मानसिक चिकित्सा के लिए 'जस', बर्र एवं ततैया के काटने अथवा सिर, दांत अथवा पेट में दर्द होने पर अनेक तंत्र–मंत्र के गीत पुरुषों द्वारा गाए जाते हैं। अनेक भिक्षार्थी यथा–भोपा, सरमन, गंगापंथी गीत गाकर भिक्षा मांगते हुए देखे जा सकते हैं। कुछ जातियों में विवाह संस्कार के समय पुरुष लोकगायकों की मंडली गीत गाकर विवाह का अनुष्ठान पूर्ण करती है। विविध देवी–देवाताओं की मनौती मनाने और देवी जागरण के लिए पुरुष गायकों की टोलियां गीत गाती हैं।

इन लोकगायकों का अनेक दृष्टियों से महत्व है। गीत गाकर और सुनकर मनोरंजन करना बाह्य और बहुत ऊपरी उद्देश्य है। इन गीतों में ज्ञान की जो अपरिमित राशि संचित है, उसे संकलित करने की दृष्टि से इनका अनुपम महत्व है। जिन रोगों की चिकित्सा के लिए हमारा अभिजात वर्ग असफल रहता है, उन्हें लोक में घटथाली जैसे साधारण वाद्यों के साथ गीत गाकर ठीक कर दिया जाता है। सर्पदंश की चिकित्सा के लिए हमारी आधुनिक चिकित्सा बहुत पीछे है, लेकिन जन–समुदाय घटथाली के साथ भरनी गीत गाकर ही उसे ठीक कर लेता है। लोकसाहित्य हमारे प्राचीन इतिहास के लिए खुले पृष्ठों के समान है। अनेक लोक कथाओं और लोकगीतों में अनेक ऐतिहासिक तत्व समाहित हैं। नैतिक दृष्टिकोण तथा मानव समाज को एकता के सूत्र में संबद्ध रखने के लिए भी लोकसाहित्य का अनुपम महत्व है।

मानव के जन्म के साथ ही लोककथा का जन्म हुआ है। लोक में कहानी कहने की कला सर्वाधिक प्राचीन है। आदिम युग से ही मानव ने अपनी अनुभूतियों को कथा के रूप में कहा। उसने अपने अस्पष्ट जीवन–दर्शन को भी लोककथाओं के माध्यम से कहा। लोककथाओं के संबंध में एक मत यह है कि ये मूलतः धर्मगाथाएं ही हैं। समय के प्रभाव और मूल स्रोत से दूर होकर इन्होंने धर्मगाथाओं के नाम, स्थान त्याग दिए हैं। लेकिन यह मत आज मान्य नहीं है। 'लोककथा' शब्द अंग्रेजी के 'फोक टेल' के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग होता है। अंग्रेजी में इस शब्द के बहुत व्यापक अर्थ हैं। इसमें अवदान, लोककथा, धर्मगाथा, पशु–पक्षियों की कहानियां, नीतिकथाएं आदि लोक प्रचलित वार्ताएं सम्मिलित की जा सकती हैं।

लोककथाओं का उद्‌गम स्थल एक स्थान नहीं माना जा सकता, लोककथाओं के कथानक में भिन्नता इसका प्रमाण है। यदि लोककथाओं का उद्‌गम स्थल एक ही होता तो विश्व भर की लोककथाओं के कथानकों में समानता होती। इसलिए यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है कि लोककथाओं की उत्पत्ति भारत या मैसोपोटामिया में हुई। इसका कोई निश्चित प्रमाण भी नहीं है। यह कथन तो सत्य है कि लोककथाओं का प्रसार होता है और वे मनुष्य के साथ तीव्रगति से फलैती हैं। अतः लोककथाओं का उद्‌गम स्थल एक नहीं माना जा सकता।

टिप्पणी

अधिकांश लोककथाओं में प्रेम का अभिन्न पुट है। लोककथाओं का जीवन से संबंध होने के कारण यह प्रेम का वर्णन स्वाभाविक है। कहीं पर यह प्रेम भाई का बहिन के प्रति है तो कहीं पति का पत्नी के प्रति। कुछ लोककथाएं मां का अपने बेटे के प्रति उत्कृष्ट वात्सल्य पर प्रकाश डालती हैं। जिस प्रकार आधुनिक कहानियां क्षणिक घटना अथवा किसी विशेष पात्र को आधार बनाकर लिखी जाती हैं, उस प्रकार लोककथाएं क्षणिक घटना पर आधारित नहीं होतीं। लोककथाओं में वर्णित घटनाओं का साहचर्य हमारी शाश्वत मूल प्रवृत्तियों से होता है। सुख–दुःख, आशा–निराशा, काम–क्रोध, मद–लोभ आदि ऐसी ही मूल प्रवृत्तियां हैं, जो लोककथाओं में अभिन्न रूप में अनुस्यूत हैं।

लोककथाओं में रहस्य, रोमांच और अलौकिकता का अंश होता है। कुछ पात्र तो ऐसे वीर हैं, जो अलौकिक कार्यों को क्षण मात्र में कर देते हैं, जैसे – अमृत से जीव लौटाना अथवा घाव ठीक करना, असंभव कार्य को करके दिखाना। इनके सुनने से श्रोताओं में अद्भुत रस की जागृति होती है। राजा नल के जीवन की घटनाएं इसका सुंदर उदाहरण हैं।

लोककथाओं के वर्णन में स्वाभाविकता होती है। कथानक की घटनाएं, पात्र और कथन शैली एक साथ इस प्रकार पिरोए रहते हैं कि उनमें कृत्रिमता का अनुभव नहीं होता। कथक्कड़ कथानक का बहुत सही और स्वाभाविक वर्णन करता है। इन कहानियों में आधुनिक कहानियों के समान अतिरंजना की प्रवृति नहीं होती।

लोककथाओं में आधुनिक कहानियों के समान न तो निराशावाद के स्वर हैं और न पलायनवाद की प्रवृति। कहानियों के पात्र परिश्रम और उत्साह के साथ कठिन से कठिन कार्यों को करते हैं। कोई भी शक्ति इन्हें उनके उद्देश्य से विलग नहीं कर सकती। लोककथाएं भारतीय संस्कृति की जीती–जागती तस्वीर हैं। उनमें भाग्यवाद तथा कर्मवाद का समन्वय है। भाग्य के समर्थन के साथ कर्म की उपेक्षा नहीं की गई है।

वश्व भर की लोककथाओं में अद्भुत समानता है। जो कहानियां भारतवर्ष में सुनी–सुनायी जाती हैं, वही कहानियां पात्रों के नामों के अंतर से दूसरे देशों में कही जाती हैं। लोककथाओं की इस समानता के कई कारण हैं। भ्रमणशील मानव जब किसी देश में जाता है तो वह अपने यहां की कहानी को वहां के कथा–प्रेमियों को सुनाता है और उसकी कहानियों को स्वयं सुनता है। इस व्यापक क्रिया के कारण कथाएं एक–दूसरे देश में फैली हैं। मानव के मानसिक धरातल की समानता के कारण और उसमें कल्पना तत्व को व्यापकता के कारण भी समान लोककथाओं का विभिन्न देशों में जन्म हुआ है। बुंदेलखंड में प्रचलित सोने की चिड़िया ग्रिम्स की फेयरी टेल्स में गोल्डन वर्ड के रूप में प्रस्तुत की गई है। बेरियर ऐलविन के कथासंग्रह में ब्रेव चिल्डरन के नाम से दी गई तथा बुंदेली लोककथा काग बिड़ारिन से साम्य रखती है। इसी प्रकार बुंदेलखंड की विशेष लोकप्रिय कहानी तीसमार खां पंजाब में फतेखां के नाम से और ग्रिम बंधुओं के संग्रह में ब्रेव लिटिल टेलर के रूप में प्रचलित है।

पौराणिक कथा और लोककथा आदिकालीन मानव के मौखिक परंपरागत साहित्य हैं। दोनों में एक कथानक होता है, लेकिन उस कथानक का आधार पृथक होता है। पौराणिक कथाएं पुराणों में पाई जाती हैं। प्राचीन होने के कारण भी इन्हें पौराणिक कहा जा सकता है। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति, देवी–देवताओं का वर्णन और जल, आकाश, वायु, सूर्य,

टिप्पणी

अग्नि आदि प्राकृति तत्वों का निरूपण होता है। इनका लक्ष्य सृष्टि के गंभीर रहस्य को सुलझाना होता है। आदिकालीन मानव के धार्मिक विधि–विधानों का रहस्य पौराणिक कथाओं में ही अत्रिभहित है। लोककथाओं का उद्देश्य मनोरंजन है। उनमें कल्पना की प्रधानता होती है। पौराणिक कथा में धार्मिकता की आवश्यकता है, लेकिन लोककथा में यह आवश्यक नहीं। पौराणिक कथाएं सत्य मानी जाती हैं, लेकिन लोककथाएं नहीं।

लोककथा के रूप–परिवर्तन में कथक्कड़ के मानसिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। यदि एक ही कहानी को दो विभिन्न क्षेत्रों के कथक्कड़ कहें तो उसके कथन में शैलीगत भिन्नता अवश्य होगी।

संसार में अनेक लोकगाथाएं गायी जाती हैं, लेकिन उनके रचनाकार और रचनाकाल के सामने अब तक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। ब्रज प्रदेश में हीर रांझा, ढोला, सरवर नीर, महादेव को ब्याहुलौ, राधाचरन कौ ढोला आदि अनेक लोकगाथाएं हैं; लेकिन इनके रचनाकार अज्ञात हैं।

लोकगाथाएं लोककंठ पर अवस्थित होती हैं। आजकल शिक्षा के प्रसार तथा लोकसाहित्य के अध्ययन पर बल देने के कारण इन्हें लिपिबद्ध कर लिया गया है। आधुनिक लोककवियों ने भी लोकगाथाएं अपनी लेखनी से पुनः रची हैं। लेकिन वे इतनी लोकप्रिय नहीं हैं, जितनी लोककंठ पर अवस्थित लोकगाथाएं।

लोकगाथाओं के लोककंठ से उत्पन्न होने का अर्थ है कि इसका निर्माता 'लोक–इकाई' होता है और वह जन–समुदाय में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अवतरित होती रहती है। इसका जन्मदाता और धात्री लोककंठ ही है।

लोकगाथाओं में एक दीर्घ कथानक होता है। दीर्घ कथानक के कारण ही वे लोकगीतों से पृथक की जाती हैं। लोकगीतों में एक ही अनुभूति की भावपूर्ण व्यंजना होती है, लेकिन लोकगाथा में जीवन की विभिन्न घटनाओं का वर्णन होने के कारण उसका आकार दीर्घ हो जाता है। लोकगाथाएं गेय होती हैं; लेकिन इनमें शास्त्रोल्लिखित संगीत के नियमों का पालन नहीं किया जाता। लोकगाथाओं में काव्यशास्त्र में वर्णित छंदों का प्रयोग नहीं होता। इनमें प्रयुक्त छंदों को लोकछंद कहा जा सकता है। भारतीय लोकगाथाओं की प्रवृत्ति आदर्शोन्मुख होती है। यह प्रवृत्ति नीति वचनों की तरह उपदेश देने के समान नहीं होती है। लोकगाथाकार आदर्श चरित्रों को श्रोताओं के सम्मुख रखकर उन्हें भावान्दोलित और श्रद्धावनत करता है। लोकगाथाओं का कथानक इतना सरल और स्वाभाविक होता है कि उन्हें सुनकर श्रोतागण भाव मग्न हो जाते हैं। महाकाव्यों के समान कल्पनागत जटिलता और आलंकारिकता यहां पर नहीं पाई जाती। भारतीय लोकगाथाओं में यथार्थ घटनाओं के चित्रण की प्रधानता है, काल्पनिक घटनाओं का यहां कोई स्थान नहीं। कथानक मुख्य घटनाओं का वर्णन करते हुए तेजी से आगे बढ़ता है। उसे अलंकृत करने के लिए व्यर्थ की काल्पनिक घटनाओं का आश्रय नहीं लिया जाता।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में क्या सिद्धांत कार्य करता रहा होगा? इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व; यह तो मोटे रूप से माना जाता है कि यह मानव समाज का आदिम साहित्य–रूप है। सामूहिक नृत्य–गीतों के साथ आगे चलकर पौराणिक पात्रों या देवी–देवताओं से संबंधित गाथाएं भी जुड़ गईं। इस प्रकार नृत्य–गीतों में समाविष्ट

पौराणिक इतिवृत्तयुक्त स्वरूप ही लोकगाथाओं के निर्माण का मूल रूप कहा जा सकता है। लोकगाथाएं लोकसाहित्य का एक विशिष्ट प्रकार का काव्य–रूप होती हैं जो प्रबंध तत्व का निर्वाह करते हुए रोचकतापूर्ण वातावरण में लोककवियों का वाणी–विलास कही जा सकती हैं। इसी आधार पर यह काव्य–विधा लोकगीतों से पृथक मानी जाती है। यही नहीं, लोकगाथा की भावभूमि भी लोकगीतों की भाव–भूमि से भिन्न होती है।

इन लोकगाथाओं का मुख्य विषय शुद्ध दाम्पत्य प्रेम है। ये गाथाएं आदिकाल से चली आ रही हैं। कौटुम्बिक गाथाएं परिवार से संबंधित लोकगाथाएं हैं जिनमें किसी परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों और व्यवहारों का चित्रण किया जाता है। अलौकिक लोकगाथाओं में मृत्यु–गीत, जादू द्वारा शरीर का बदलना, अंध विश्वास आदि से संबंधित गीत गाए जाते हैं। किसी पौराणिक कथा के आधार पर लोक प्रचलित गाथा को पौराणिक गाथा कहते हैं। भारत में भी इस प्रकार की गाथाएं गायी जाती हैं। कुछ गाथाएं इंग्लैंड और स्काटलैंड के सीमान्त भागों में प्रचलित होने के कारण इन लोकगाथाओं को सीमान्त गाथाएं कहा जाता है।

भारतवर्ष तथा अन्य देशों में प्रेम से संबंधित अनेक लोकगाथाएं गायी जाती हैं। अधिकांश लोकसाहित्य प्रेम से परिपूर्ण है। इस प्रेम में वासना की गंध नहीं, बल्कि यह एक विशुद्ध और असाधारण प्रेम है। इसी कारण प्रेम कहानी में विषम वातावरण और संघर्ष उत्पन्न होता है। जिन गाथाओं में किसी वीर के शौर्य और पराक्रम का वर्णन होता है, उन्हें वीर गाथाओं की श्रेणी में रखा गया है।

लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने–अपने क्षेत्र के जन–समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो। "लोकनाट्य लोक–रंजन का आडंबरहीन साधन है, जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हर्षोल्लास से संबंधित है। ग्रामीण जनता में इसकी परंपरा युगों से चली आ रही है। चूंकि लोक में ग्रामीण एवं नागरिकजन सम्मिलित हैं, अतः लोकनाट्य एक मिले–जुले जन–समाज का मंच है। परिष्कृत रुचि के लोक के लिए ज़िन नाटकों का विधान है, उसकी आधार–भूमि यही लोकनाट्य हैं।

लोकनाट्यों की भाषा काव्यमयी होती है। चूंकि ये नाटक सामूहिक अभिव्यक्ति के साधन हैं और पद्यात्मक संवादों के द्वारा समूह की कल्पना शक्ति भावों को ग्रहण करने की सामर्थ्य रखती है, इसलिए इनमें गद्य का प्रभाव कम ही होता है। गद्य का प्रयोग भांडों के हास्यात्मक अभिनय अथवा इतिवृत्तात्मक प्रसंगों में किया जाता है। ऐसा गद्य भी प्रायः पद्यात्मक होता है, जहां शब्दों की लड़ियां एक–दूसरे से गुंथी हुई द्रुतगति से आगे बढ़ती हैं। पद्यबद्ध संवादों की परंपरा मध्यकाल के पूर्व से निरंतर चली आ रही है। ऐसे अनेक अंश इन नाटकों में होते हैं, जो लोकगीतों की धुनों में गाए जाते हैं और लोक–भाषा की पुरानी शब्द योजना में अवगुंठित होते हैं।

रंगमंच के स्वरूप के संबंध में यही कहा जा सकता है कि यह दर्शकों की उपस्थिति और तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। रंगमंच ऊंचा भी बनाया जाता है, जब दर्शकों की संख्या अधिक रहने का अनुमान होता है। बड़े–बड़े नगरों की

टिप्पणी

रामलीला, रामलीला, स्वांग, नौटंकी और भगत– सभी में ऊंचा मंच ही बनाया जाता है, जिससे दूर तक बैठकर अधिक से अधिक दर्शक उसे देख सकें। किंतु इस संबंध में लोकनाट्यों की एक विशेषता यह भी है कि यदि दर्शक थोड़े रहने का अनुमान होता है तो छोटे से गांव में एक तख्त डालकर चौपाल के चबूतरे के एक कोने को ही रंगमंच के रूप में प्रयुक्त कर लिया जाता है और ऐसी स्थिति में इसकी कुछ साज–सज्जा भी नहीं की जाती।

लोकनाट्यों के प्रारंभ की शैली इतनी रोचक होती है कि उसके प्रारंम्भिक परिचय एवं माहात्म्य आदि पर निर्देशक प्रकाश डालता है और फिर लोकनाट्य का प्रारंभ किया जाता है। प्रायः लोकनाट्य के प्रदर्शन के पूर्व किसी देवी–देवता का स्तवन किया जाता है, जिसे ब्रज–जनपद में भेंट कहकर पुकारा जाता है। रामलीला में रामायणजी तथा गणेश की प्रार्थना की जाती है, तब मुख्य नाट्य प्रारंभ होता है।

लोकनाट्यों का अंत प्रायः सुखांत होता है और नाट्य के प्रदर्शन के उपरांत स्थानीय देवी–देवताओं या परमात्मा के किसी अति प्रचलित स्वरूप का नाम लेकर जयकारा बोला जाता है। रामलीला के अंत में हनुमान को आदरपूर्वक विदा किया जाता है। रामलीला के संबंध में यह विश्वास प्रचलित है कि जहां रामलीला का प्रदर्शन होता है, वहां हनुमान जी अवश्य ही सुनने आते हैं। इसलिए अभिनय समाप्त होने पर उन्हें विदा किया जाता है।

लोकनाट्य वास्तव में सहज मानव–जीवन से ही जीवन–रस प्राप्त करते हैं, इसलिए उनकी आत्मा का लोक–दर्शकों की आत्मा के साथ ऐसा सहज एकात्म्य हो जाता है, जिसमें प्रदर्शक एवं दर्शक का भेद ही समाप्त हो जाता है। लोकनाट्यों की रचना लोकरुचि के सर्वथा अनुकूल ही होती है। इसलिए भी सामान्य दर्शक लोकनाट्यों की प्रकृति में एकरस होकर रुचिपूर्वक सुनता–देखता है।

भारत के सभी जनपदों के लोकनाट्यों को दृष्टि–पथ में रखें तो प्रायः तीन प्रकार के लोकनाट्य पाए जाते हैं :– (क) नृत्य–प्रधान लोकनाट्य, (ख) संगीत–प्रधान लोकनाट्य, तथा (ग) स्वांग–प्रधान लोकनाट्य।

लोकसाहित्य की प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त ऐसी छोटी–मोटी विधाएं इस वर्ग में समाविष्ट की जाती हैं, जो आकार में लघुरूपी हैं। लोकतुक्का, लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां, लोरियां, शिशु–खेल गीत आदि सभी विधाएं आकार में लघु होने के कारण स्फुट वर्ग के अंतर्गत ही विवेचन का विषय बनायी जाती हैं। इसी वर्ग को डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक–सुभाषित नाम देकर भी पुकारा है। किंतु सुभाषित की परिधि में लोकोक्ति, मुहावरे तथा पहेलियां ही आ सकती हैं, अन्य लघुगीत आदि इस शीर्षक के अंतर्गत समाविष्ट नहीं किये जा सकते।

लोकोक्तियों की परंपरा हमारे प्राचीन साहित्य में मिलती है। वेद और उपनिषदों में अनेक लोकोक्तियां देखी जा सकती हैं, जो हमारे प्राचीन समाज की ज्ञान की परंपरा पर प्रकाश डालती हैं। संस्कृत साहित्य में सभी कवियों ने इनका सुंदर प्रयोग किया है। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि सभी कवियों ने लोकोक्तियों का प्रयोग करके अपनी भाषा को प्रभावोत्पादक बनाया है। प्राकृत और पालि ग्रंथों में भी बहुत आकर्षक और

अनुभूतिपूर्वक लोकोक्तियां हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश में नीति संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इनका प्रयोग किया गया है।

मुहावरे का प्रयोग दैनिक जीवन में अपनी भाषा को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए होता है। भाषा में लाक्षणिकता से संयम आ जाता है और उसका अनावश्यक विस्तार दूर हो जाता है। ये किसी भाषा में प्रयोग होने वाले वाक्य–खंड हैं, जिनके प्रयोग से वाक्य सबल और सतेज हो जाते हैं। मुहावरे वाक्यांश होते हैं, जो अपना अर्थ वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही प्रकट करते हैं। स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने पर इनका अर्थ प्रकट नहीं होता। यह अपने मूल रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

लोकोक्तियां और मुहावरे, लोकसंस्कृति और लोकानुभूतियों को अपने में समाहित रखते हैं। समाज की प्रथा–विश्वास, भाग्य, संस्कार, जाति, अर्थव्यवस्था, नीति, पुराणों में विश्वास, शकुन–अपशकुन, धार्मिक आस्था, भोजन आदि अनेक तथ्यों का मुहावरों और लोकोक्तियों में प्रतिबिंब है। इनकी परिधि व्यापक और विस्तृत है, जिसे किसी सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता।

मानव अपने मनोरंजन के लिए चिर–परिचित वस्तुओं के संबंध में अपने कथन को लयात्मक, रहस्यात्मक और प्रश्नात्मक रूप में कहता है और उसका उत्तर किसी अन्य व्यक्ति से पूछा जाता है। इस प्रश्न को पहेली कहते हैं। इन पहेलियों के समाधान से मनुष्य में ज्ञान–विज्ञान की प्राप्ति और प्रसार हुआ। अपने ज्ञान–विज्ञान के प्रदर्शन और गुरूता के लिए वह अपने साथियों से अनेक प्रश्न करता है। इन प्रश्नों को पहेली कहते हैं। पहेलियों की परंपरा बहुत प्राचीन है। वेदों में भी अनेक पहेलियां पाई जाती हैं। ऋग्वेद में पहेलियों की प्राप्ति के कारण ही रामनरेश त्रिपाठी ने उसे पहेलियों का वेद कहा है।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **संस्मरण** : महत्वपूर्ण घटनाओं, कृत्यों का उल्लेख।
- **परिनिष्ठित** : पूर्णतया कुशल।
- **नैसर्गिकता** : प्राकृतिक, स्वाभाविक।
- **पार्थक्य** : पृथक होने की अवस्था, अंतर, अलगाव।
- **सारगर्भित** : महत्वपूर्ण (जैसे महत्वपूर्ण कथन)।
- **वैशिष्ट्य** : विशिष्टता।
- **कवित्व** : काव्य का गुण, काव्य रचना की शक्ति।
- **सम्यक** : पूरा, उचित, उपयुक्त, भली–भांति।
- **अंतर्युक्त** : शामिल, समाविष्ट।
- **ध्वन्यात्मक** : ध्वनि से युक्त।
- **कवित्त** : धनाक्षरी छंद का एक नाम, कविता।

टिप्पणी

- **अवलोकन** : ध्यानपूर्वक देखना।
- **व्यवहृत** : व्यवहार में लाया गया।
- **अलौकिक** : जो लोक में न मिलता हो, अद्‌भुत, अपूर्व।
- **आख्यायिका** : शिक्षाप्रद लघु कल्पित कथा/कहानी।
- **इतिवृत्त** : घटना, कहानी, विवरण।
- **निरूपण** : विवेचना करना, अच्छी तरह समझना।
- **कथक्कड़** : अधिक कथाएं कहने वाला, कथावाचक।
- **परिवर्धन** : बढ़ाया जाना, सम्यक वृद्धि।
- **प्राधान्य** : प्रधान होने की अवस्था, श्रेष्ठता।
- **अपौरूषेय** : जो मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य से बाहर हो, दैवी, वीरता का अभाव।
- **अभिभूत** : पीड़ित, चकित, विकल।
- **कथोकथन** : बातचीत, संवाद।
- **प्रेक्षागृह** : मंत्रणागृह, रंगशाला।
- **उद्‌बोधन** : जगाना, चेतना।
- **विदूषक** : हंसी उड़ाने वाला व्यक्ति, मसखरा, भांड।
- **लाक्षणिक** : लक्षण संबंधी।

2.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. साहित्यिक
2. संस्कृति
3. संगीत
4. नारी
5. सही
6. सही
7. गलत
8. गलत
9. कथा
10. प्रसार
11. रोमांस
12. मानव

टिप्पणी

13. गलत
14. सही
15. गलत
16. सही
17. रचनाकाल
18. लेखनी
19. दो
20. प्रयोग
21. सही
22. गलत
23. सही
24. गलत
25. नाट्य
26. 15
27. चार
28. सही
29. गलत
30 सही
31. प्राचीन
32. दैनिक
33. अलंकार
34. गलत
35. सही

2.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. लोकगीत की विशेषताएं लिखिए।
2. लोकगीत में गायकों के बाजे के अनुसार प्रयोग होने वाले वाद्यों की सूची बनाइए।
3. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा वर्णित लोककथाओं की विशेषताएं लिखिए।
4. हरिभद्राचार्य ने कथाओं की कितनी कोटियां निर्धारित की हैं, लिखिए।
5. पौराणिक कथा एवं लोक कथा में क्या अंतर है?

टिप्पणी

6. अंग्रेज सिविलयन विद्वान सर आर.सी. टैम्पुल ने लोकगाथाओं को कितने चक्रों में विभक्त किया हैं, लिखिए।
7. लोकनाट्यों की लोकप्रियता के कारण लिखिए।
8. मुहावरों और लोकोक्तियों में क्या अंतर है, लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. लोकगीत और शिष्ट गीत में क्या अंतर है विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. लोकगीतों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
3. लोकगीतों की सामान्य प्रवृत्तियों एवं रूढ़ियों का वर्णन कीजिए।
4. लोककथा के उद्‌भव के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
5. लोककथाओं की विशेषताओं पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
6. लोककथा कथन में कथक्कड़ की भूमिका का वर्णन कीजिए।
7. लोकगाथा की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन करते हुए लोकगाथाओं की उत्पत्ति एवं सिद्धांतों पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
8. लोकगाथाओं के श्रेणी विभाजन का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
9. लोकनाट्य का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
10. भारत के प्रसिद्ध लोकनाट्यों का विस्तृत परिचय दीजिए।
11. लोकोक्ति से क्या अभिप्राय है? इसके उद्‌भव और विकास का वर्णन कीजिए।
12. लोकोक्तियों के लक्षण एवं वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
13. लोकोक्ति व मुहावरों में लोकसंस्कृति के प्रतिबिंब पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
14. पहेलियों के उद्‌भव, विकास और परंपरा पर प्रकाश डालिए।

2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. श्यामसुंदर दुबे, *लोक परंपरा, पहचान एवं प्रवाह,* राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली।
2. डॉ. वीरेन्द्र सिंह, *परंपरा की प्रासंगिकता एवं परिप्रेक्ष्य,* ओमेगा पब्लिकेशंस, दिल्ली।
3. लाला जगदलपुरी और हरिहर वैष्णव, संपादक, *बस्तर की लोक कथाएं,* नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया।
4. गोपाल भार्गव, *उत्तर प्रदेश की कला एवं संस्कृति',* कल्पज पब्लिकेशंस, दिल्ली।

इकाई 3 पूर्वोत्तर के सात राज्यों का लोक साहित्य

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 पूर्वोत्तर का लोक साहित्य
3.2.1 असम
3.2.2 त्रिपुरा
3.2.3 नागालैंड
3.2.4 मणिपुर
3.2.5 मिजोरम
3.2.6 मेघालय
3.2.7 सिक्किम
3.3 पूर्वोत्तर लोक साहित्य का वर्गीकरण
3.4 पूर्वोत्तर के लोक साहित्य की विशेषताएं
3.5 पूर्वोत्तर में प्रचलित कुछ कथाएं एवं मिथक
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

पूर्वोत्तर भारत में लगभग 400 समुदायों के 3.9 करोड़ लोग निवास करते हैं। इन समुदायों की वाचिक परंपरा में लोक साहित्य का समृद्ध भंडार विद्यमान है। लोकगीतों, लोककथाओं, मिथकों, लोकोक्तियों आदि के विशाल भंडार से कुछ मोती निकालकर इस इकाई के अंतर्गत उनका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पूर्वोत्तर में उपलब्ध लोक साहित्य को वर्गीकृत कर उनके वैशिष्ट्य को रेखांकित किया गया है। परिशिष्ट में लोक साहित्य के कुछ नमूने दिए गए हैं जो इस अंचल के निवासियों की सर्जनात्मकता और कल्पनाशीलता के प्रमाण हैं। इस इकाई में पूर्वोत्तर भारत के सात राज्यों के लोक साहित्य का विहंगावलोकन किया गया है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य परिचित हो पाएंगे;
- पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न आदिवासी समुदायों के लोगों के उर्वर मन–मस्तिष्क की कलात्मक ऊंचाई से परिचित हो पाएंगे;

- पूर्वोत्तर के सात राज्यों की वाचिक परंपरा में उपलब्ध साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- पूर्वोत्तर में प्रचलित गीतों, कथाओं, नृत्यों आदि की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

3.2 पूर्वोत्तर का लोक साहित्य

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र बांग्लादेश, भूटान, चीन, म्यांमार और तिब्बत– पांच देशों की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित है। असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम– इन आठ राज्यों का समूह पूर्वोत्तर भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 7.9 प्रतिशत भाग पूर्वोत्तर क्षेत्र के आठ राज्यों में समाविष्ट है। कुल क्षेत्रफल का 52 प्रतिशत भूभाग वनाच्छादित है। इस क्षेत्र में 400 समुदायों के लोग रहते हैं और लगभग 220 भाषाएं बोली जाती हैं। संस्कृति, भाषा, परंपरा, रहन–सहन, पर्व–त्योहार आदि की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना वैविध्यपूर्ण है कि इस क्षेत्र को भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। इस क्षेत्र में आदिवासियों का घनत्व देश में सर्वाधिक है। सैकड़ों आदिवासी समूह और उनकी उपजातियां, असंख्य भाषाएं व बोलियां, भिन्न–भिन्न प्रकार के रहन–सहन, खान–पान और परिधान, अपने–अपने ईश्वरीय प्रतीक, आध्यात्मिकता की अलग–अलग संकल्पनाएं इत्यादि के कारण यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इस क्षेत्र में सर्वाधिक वन व वन्य प्राणी हैं। वनस्पतियों, पुष्पों तथा औषधीय पेड़–पौधों के आधिक्य के कारण यह क्षेत्र वनस्पति–विज्ञानियों एवं पुष्प–विज्ञानियों के लिए स्वर्ग कहलाता है। पर्वतमालाएं, हरित घाटियां और सदाबहार वन इस क्षेत्र के नैसर्गिक सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं। जैव–विविधता, सांस्कृतिक कौमार्य, सामूहिकता–बोध, प्रकृति प्रेम, अपनी परंपरा के प्रति सम्मान भाव पूर्वोत्तर भारत की अद्वितीय विशेषताएं हैं। अनेक उच्छृंखल नदियों, जल प्रपातों, झरनों और अन्य जल स्रोतों से अभिसिंचित पूर्वोत्तर की भूमि लोक साहित्य की दृष्टि से भी अत्यंत उर्वर है। न्यूनतम आवश्यकताएं, सरल और निश्छल जीवन तथा आत्मनिर्भर आर्थिकी के कारण लोगों के पास कल्पना की उड़ान भरने के लिए पर्याप्त समय होता है। खाली समय में उनके उर्वर मस्तिष्क से कहानियां, कविताएं, लोकोक्तियां, मुहावरे, दंतकथाएं आदि आकार ग्रहण करती हैं। यहां की वाचिक परंपरा में लोकगीतों, लोककथाओं, मिथकों, दंत कथाओं का भंडार है। क्षेत्र के मिथक देवी–देवताओं, भूत–प्रेतों, वन्य प्राणियों और विभिन्न वस्तुओं की उत्पत्ति से संबंधित हैं। लोकगीत लयात्मक होते हैं तथा इन गीतों में प्रयुक्त उदाहरण, प्रतीक आदि वन्य जीवन से संबंधित होते हैं। गीतों में प्रकृति का धूपछांही सौष्ठव व भोले–भाले आदिवासियों की छोटी–छोटी आकांक्षाएं होती हैं। इस क्षेत्र के सभी आदिवासी समुदायों में अपने देशांतर–गमन, सृष्टि की उत्पत्ति, विभिन्न वस्तुओं की उत्पत्ति के संबंध में कोई न कोई मिथक विद्यमान है। ये मिथक वैज्ञानिकता की कसौटी पर भले ही खरे न उतरें, परंतु आदिवासी लोगों की कल्पनात्मकता और रचनाशीलता के प्रामाणिक दस्तावेज

अवश्य हैं। प्रायः सभी मिथकों में वर्णित है कि सृष्टि के आरंभ में सर्वत्र जल ही जल था, बाद में पृथ्वी और तदोपरांत मानव की रचना हुई।

नृत्य मानव की प्राचीनतम भावाभिव्यक्ति है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समूहों में नृत्य एक जीवन–शैली है, जीवन का अभिन्न अंग है। सभी समुदायों की नृत्य–शैलियों में पर्याप्त भिन्नता है। प्रायः सभी समुदायों में नृत्य की प्रस्तुति सामूहिक होती है क्योंकि यहां का समाज व्यष्टि को नहीं, बल्कि समष्टि को महत्व देता है। अवसरों के अनुरूप नृत्य के रूपों में भी परिवर्तन होता है। उदाहरणार्थ, युद्ध नृत्य के पद संचालन एवं त्योहार नृत्य अथवा अंत्येष्टि नृत्य के पद संचालन में पर्याप्त अंतर होता है। अंग संचालन के द्वारा नर्तक अपनी भावनाओं को प्रकट करते हैं। नृत्यों में मस्ती, यौवन, ऊर्जा और उत्तेजना के मिश्रित घटक होते हैं।

पूर्वोत्तर भारत में 220 से अधिक भाषाएं हैं जिनमें से अधिकांश लिपिविहीन हैं। लिपिहीनता के कारण इस क्षेत्र का अधिकांश लोक साहित्य अभी तक मौखिक परंपरा में ही विद्यमान है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहता है।

3.2.1 असम

असमिया असम की प्रमुख भाषा है। यहां बांग्ला और हिंदी भी बोली जाती है। इनके अतिरिक्त राज्य की अन्य भाषाएं हैं– बोडो, कार्बी, मिसिंग, राभा आदि। असम की सभी भाषाओं में लोक साहित्य की समृद्ध विरासत है। यहां नृत्य के दो प्रमुख रूप हैं– बिहु नृत्य और सत्रिय नृत्य। बिहु नृत्य बिहु त्योहार के समय प्रस्तुत किये जाते हैं। "बिहु असम का जातीय उत्सव है। असम में वर्ष में तीन बार बिहु पर्व मनाया जाता है। इनके नाम हैं– बैसाख बिहु, कार्तिक बिहु तथा माघ बिहु। इन्हें क्रमशः रंगाली, कंगाली एवं भोगाली बिहु के नाम से जाना जाता है।" (डॉ. हरेराम पाठक)।

सत्रिय नृत्य असम का शास्त्रीय नृत्य है। बिहु असम का सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य है और इसमें आबालवृद्ध–वनिता सभी भाग लेते हैं। बिहु का त्योहार वसंत ऋतु में मनाया जाता है। इसे रंगाली बिहु कहते हैं। बिहु नृत्य में ढोल, पीपा आदि वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है और बिहु गीत गाए जाते हैं। बिहु गीतों का केंद्रीय विषय प्रेम होता है। इस नृत्य में नर्तकगण गोलचक्र बनाकर नाचते–गाते हैं। बिहु नृत्य–गीत में असम की साझी संस्कृति झलकती है। यह नृत्य लगभग एक माह तक चलता है। इस नृत्य में यौवन, उत्साह और भरपूर ऊर्जा होती है। यह असमिया संस्कृति की प्रमुख पहचान बन गई है। बिहु त्योहार के अवसर पर 'हुसरी' नृत्य भी प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में नर्तकगण घर–घर घूमते हैं और नृत्य–गीतों के द्वारा अपनी उत्सवधर्मी भावनाएं प्रकट करते हैं। 'ढुलिया', 'भावरिया' भी प्रदेश के प्रमुख लोक नृत्य हैं। ढुलिया का आधार वाद्ययंत्र ढोलक है और इसे बजाने वाला ही इस विधा का प्रमुख आकर्षण होता है। नृत्य तथा अभिनव इस विधा के अभिन्न अंग हैं।

असमिया साहित्य, संस्कृति, समाज व आध्यात्मिक जीवन में युगांतरकारी महापुरुष श्रीमंत शंकर देव का अवदान अविस्मरणीय है। उन्होंने पूर्वोत्तर क्षेत्र में एक मौन अहिंसक क्रांति का सूत्रपात किया। उनके महान कार्यों ने इस क्षेत्र में सामाजिक सांस्कृतिक एकता की भावना को सुदृढ़ किया। उन्होंने रामायण और भगवद्गीता का असमिया भाषा में

टिप्पणी

अनुवाद किया। पूर्वोत्तर क्षेत्र में वैष्णव धर्म के प्रसार के लिए आचार्य शंकर देव ने बरगीत, नृत्य–नाटिका (अंकिया नाट), भाओना आदि की रचना की। उन्होंने गांवों में नामघर स्थापित कर पूर्वोत्तर क्षेत्र के निवासियों को भाईचारे, सामाजिक सद्भाव और एकता का संदेश दिया। असम में शास्त्रीय नृत्य के तीन रूप मिलते हैं–1. भाओना, 2. मंदिर नृत्य और 3. ओजा पालि।

भाओना की रचना श्रीमंत शंकर देव ने की। भाओना नृत्य नाटिका (अंकिया नाट) है। इसका मुख्य उद्देश्य वैष्णव धर्म के संबंध में जन सामान्य को जानकारी देना है। इसका मंचन प्रायः नामघरों में होता है। इसका सूत्रधार एक साथ अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करता है– वह श्लोकों का वाचन करता है, नृत्य करता है, पौराणिक आख्यानों की व्याख्या करता है एवं अपने अंग–संचालन के माध्यम से वैष्णव धर्म से संबंधित घटनाओं को अभिव्यक्त करता है।

नटुवा नृत्य के दो प्रकार हैं– पखाजिया और हाजोवालिया। हाजोवालिया नृत्य की प्रस्तुति महिलाओं द्वारा की जाती है। यह नृत्य तांडव और लास्य दोनों का मिश्रण है। 'ओजपालि' शब्द 'ओजा' और 'पालि' दो शब्दों के योग से बना है। 'ओजा' का अर्थ है निपुण तथा 'पालि' का अर्थ है 'सहायक अथवा साथी'। 'ओजापालि' नृत्य गायकों–नर्तकों द्वारा कोरस (वृंदगान) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कोरस का नेतृत्व करनेवाले को 'ओजा' तथा उसके सहायक को 'पालि' कहा जाता है। 'दाइना पालि' मुख्य सहायक को कहा जाता है। 'देवधानी' नृत्य को नृत्य से अधिक एक संस्कार माना जाता है। इसमें नर्तक सर्पाकार नृत्य करते हैं तथा 'बेहुला' गीत गाते हैं।

बोडो समुदाय की नृत्य–शैली प्रकृति के निकट है। 'बगरुंबा' और 'बोरदोइसिकला' इस समुदाय के प्रमुख नृत्य हैं। इन नृत्यों में प्रकृति की विभिन्न मुद्राओं को रेखांकित किया जाता है। नर्तकगण प्रकृति से एकाकार होकर अपने अंग संचालन तथा विभिन्न मुद्राओं द्वारा प्रकृति के विभिन्न रूपों की झलक प्रदर्शित करते हैं। मिसिंग (मिरि) जनजाति का एक प्रमुख त्योहार है 'अलिलिगङ'। इस त्योहार के अवसर पर 'गुमराग' नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में मिसिंग समुदाय के दैनिक जीवन की झलक मिलती है। यह नृत्य मिसिंग समाज का प्रकृति से सामीप्य दर्शाता है। इस समुदाय द्वारा फसल कटने के उपरांत 'पोरग' नृत्य (नित्तम–सुमनम) प्रस्तुत किया जाता है। इसमें ढोलक की धुन पर सभी ग्रामवासी उमंग के साथ नृत्य करते हैं।

असम में महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले लोकनाट्य भी प्रचलित हैं। इन लोकनाट्यों के माध्यम से महिलाएं अपनी भावनाएं अभिव्यक्त करती हैं। लोकनाट्य की यह शैली असमिया महिलाओं की स्वतंत्र अस्मिता को रेखांकित करती है। "गीत, नृत्य और अभिनय के अपूर्व संयोजन से स्त्री लोकनाट्य में निखार आता है। यद्यपि ऐसे लोकनाट्यों में अर्द्ध विकसित लोकनाट्य के गुण विद्यमान रहते हैं, फिर भी यह स्वीकार किया जाएगा कि असम के ग्रामीण लोकजीवन में पल्लवित, लोकमानस की उर्वर भूमि में विकसित तथा लोकप्रियता के कारण ऐसे लोकनाट्य स्त्री समाज में सीमित होकर भी असमिया लोकनाट्य का एक महत्वपूर्ण अंग बना है। इस क्रम में 'पचति' 'आपी–ओजा' 'नाम भाओना' 'हुदुक–नृत्य–नाट्य' 'कार्तिकेय नृत्य–नाट्य' प्रमुख हैं।". (प्रो. भूपेन्द्र राय चौधरी)

'सोनोवाल कछारी' समुदाय द्वारा 'हैदङ' लोकगीत गाए जाते हैं। इसका गायन पुरुषों द्वारा किया जाता है। गीत के साथ-साथ रोचक ढंग से अंग-संचालन व नर्तन इसकी विशेषता है। इस नृत्य में 'आजापालि' के समान ही आंगिक चेष्टाएं की जाती हैं। 'सग्रामिसवा' 'तिवा' आदिवासी समुदाय का प्रमुख त्योहार है। इस रंगारंग त्योहार में नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य यौवन, जोश, उत्तेजना और उमंग से परिपूर्ण होता है। 'पिसु' भी 'तिवा' समुदाय का प्रमुख त्योहार है। इस त्योहार के अवसर पर यूवा लोग भरपूर मस्ती में नृत्य करते हैं। 'देवरी' समुदाय का नृत्य 'गिरा' और 'गिरासी' शिव-पार्वती से संबंधित है। आरंभ में इस उपासना नृत्य की प्रस्तुति घर के आंगन में की जाती है, बाद में इसे मंदिर के प्रांगण में प्रस्तुत किया जाता है।

'कार्बी' समुदाय में अंत्येष्टि से संबंधित नृत्य 'छोमङकन' अत्यंत लोकप्रिय है। इसकी प्रस्तुति किसी की मृत्यु के बाद ही की जाती है। कार्बी समुदाय में 'निमसो-केरुङ' तथा 'हच्छा-केकन' नृत्य भी लोकप्रिय है। 'गरई-दबरई-नाई' असम के आदिवासियों का युद्ध नृत्य है। इसके अतिरिक्त 'गन-दुअला-बन-नाई', 'नेन्लई-गेला-नाई', 'सन-गलाओ-बनई' इत्यादि भी असम के आदिवासी समुदायों के लोक नृत्य हैं। इनमें संगीत, नाटक, आख्यान सब कुछ का समावेश होता है। इन नृत्यों में इन समुदायों की लोक संस्कृति प्रतिबिंबित होती है।

श्रीमंत शंकर देव ने पूर्वोत्तर भारत में वैष्णव धर्म के प्रसार के लिए भक्ति गीतों की रचना की। ये गीत ब्रजावली अथवा ब्रजबुली में लिखे गए हैं जिन्हें 'बरगीत' कहा जाता है। बरगीत का तात्पर्य है 'बड़ा गीत' अथवा 'महान गीत'। ये गीत आध्यात्मिकता के रंग में रंगे हैं तथा असम के गांव-गांव में लोकप्रिय हैं।

असम का राभा समुदाय लोकगीतों की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। इस समुदाय के गीतों में प्रकृति अपने यथार्थ रूपों में अभिव्यक्त हुई है। इस समुदाय के लोकगीतों का क्षितिज विस्तृत है। इनके लोकगीतों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(क) संस्कार गीत,

(ख) ऋतु संबंधी गीत,

(ग) प्रणय गीत,

(घ) मनोरंजन गीत,

(ङ) कृषि से संबंधित गीत,

(च) श्रम गीत और

(छ) उपासना, त्योहार तथा मेला संबंधी गीत।

मिरि समुदाय (मिसिङ) के लोकगीतों को 'ओइ-नितोम' कहा जाता है। इस समुदाय के जीवन और संस्कृति का विकास ब्रह्मपुत्र एवं सुबनसिरी नदियों की उर्वर घाटी में हुआ है। इसलिए मिरि समुदाय के लोक साहित्य में इन नदियों की चर्चा प्रमुखता से हुई है। ये नदियां इस समुदाय तथा इनके तटों पर बसे अन्य समुदायों के लिए जीवनदायिनी तो है

टिप्पणी

ही, साथ–साथ इनके लोक साहित्य को भी पल्लवित–पुष्पित करने में इन नदियों की महती भूमिका है। निम्नलिखित प्रणय गीत में प्रेमी अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि मैं नदी के इस पार खड़ा हूं और तुम उस पार। हम दोनों सियाङ नदी के दो किनारों पर वियोग दुख से तड़प रहे हैं, मेरे हृदय में तुमको देखने की प्यास निरंतर बनी रहती है:

"नाक्के दोलङ केकोंदे
गोक्के दोलङ केकोंसे
सियाङ असि दुङकोम्ना
काली दाकोम कापमा।"

(श्री एन. सी. पेगू)

असम में प्रचलित लोककथाओं को साधु कथा भी कहा जाता है। असम के सभी समुदायों में लोककथा की समृद्ध विरासत है। यहां की लोककथाएं अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण हैं। असम तंत्र–मंत्र, जादू–टोना और आध्यात्मिकता का केंद्र है। अतः यहां की कथा–कहानियों में तंत्र–मंत्र, जादू–टोना आदि का समावेश स्वाभाविक है। असम के कथा–संसार में राजा–रानी हैं, भूत–प्रेत हैं, डायन–योगिनी हैं, तंत्र–मंत्र के साधक हैं, असीम शक्तियों से युक्त योद्धा हैं, पशु–पक्षी हैं, मां कामाख्या व नरकासुर संबंधी आख्यान हैं। यहां की लोककथाओं को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. पौराणिक लोककथाएं
2. वन्य–जीवन संबंधी लोककथाएं
3. अलौकिक लोककथाएं
4. जीव–जंतुओं से संबंधित लोककथाएं
5. उपदेशपरक लोककथाएं

3.2.2 त्रिपुरा

'त्रिपुरा' नाम के संबंध में विद्वानों में मत–भिन्नता है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक मिथक और आख्यान प्रचलित हैं। कहा जाता है कि राधाकिशोरपुर की देवी 'त्रिपुर सुंदरी' के नाम पर 'त्रिपुरा' का नामकरण हुआ। एक अन्य मत है कि 'तीन नगरों की भूमि' होने के कारण 'त्रिपुरा' नाम ख्यात हुआ। विद्वानों के एक वर्ग की मान्यता है कि मिथकीय सम्राट 'त्रिपुर' का राज्य होने के कारण इसे त्रिपुरा का अभिधान दिया गया। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि दो जनजातीय शब्द 'तुई' और 'प्रा' के संयोग से यह नाम प्रकाश में आया जिसका शाब्दिक अर्थ है 'भूमि और जल का मिलन स्थल'।

त्रिपुरा एक छोटा पर्वतीय प्रदेश है। लगभग 18 आदिवासी समूह त्रिपुरा के समाज को वैविध्यपूर्ण बनाते हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं– त्रिपुरी, रियङ, नोआतिया, जमातिया, चकमा, हालाम, मग, कुकी, गारो, लुशाई इत्यादि। इस प्रदेश के पास उन्नत सांस्कृतिक विरासत, समृद्ध परंपरा, लोक उत्सव और लोकरंगों का अद्वितीय भंडार है। सरल जीवन और आत्मनिर्भर आर्थिकी के कारण यहां के आदिवासी समुदायों के पास नृत्य, गीत,

टिप्पणी

कल्पना की उड़ान, कथा–कहानियों, गप्पशप आदि के लिए पर्याप्त समय होता है। परिणामस्वरूप बहुआयामी लोक साहित्य का सृजन होता है। यहां के लोक साहित्य में विषय–वैविध्य और जिज्ञासा भाव है। प्रत्येक प्राकृतिक घटना की व्याख्या त्रिपुरी लोक साहित्य में विद्यमान है। यहां सभी वस्तुओं की उत्पत्ति के संबंध में मिथक उपलब्ध हैं। देवी–देवता, भूत–प्रेत, दानव, मानव, वनस्पति, सूर्य, चंद्रमा, पशु–पक्षी, तारे इत्यादि की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न समुदायों के मिथकों में भी भिन्नता है। उदाहरण के लिए कुछ समुदायों में सूर्य और चंद्रमा को भाई–बहन माना जाता है पर कुछ समुदायों में पति–पत्नी माना जाता है। भूकंप, आकाशगंगा, आकाश, बादल, बिजली, पर्वत, पृथ्वी, झील के संबंध में वाचिक परंपरा में असंख्य मिथक मौजूद हैं जिनमें रोचकता के साथ–साथ कल्पनाशीलता भी है। इन मिथकों में ईश्वर, दानव, मानव, पक्षी, भूत–प्रेत आदि नायक–नायिका होते हैं। एक त्रिपुरी मिथक के अनुसार पृथ्वी को एक कछुए (काइचिङ) ने धारण कर रखा है। कछुआ मानव मल खाता है। मानव मल का संग्रह करने का दायित्व 'खेबोक' (एक प्रकार का कीड़ा) को दिया गया है। कभी–कभी कार्याधिक्य के कारण 'खेबोक' थक जाता है। थकने के बाद वह मिथ्या कथन करता है और कह देता है कि पृथ्वी पर अब एक भी मानव नहीं है। पृथ्वी को धारण करने वाले कछुए को संदेह होता है और 'खेबोक' के कथन की सत्यता की जांच–परख करने के लिए कछुआ इधर–उधर हिलता–डुलता है, परिणामस्वरूप भूकंप होता है।

त्रिपुरा के हालम समुदाय की वाचिक परंपरा में भी भूकंप, इंद्रधनुष, सूर्यग्रहण, बिजली कड़कने, चंद्रमा, सूर्य, स्वर्ग, नरक आदि के संबंध में अनेक मिथक प्रचलित हैं। इंद्रधनुष के संबंध में मिथक है कि यह किसी भीषण युद्ध के दौरान रक्त से सना हुआ धनुष है। धनुष को जब प्यास लगती है तो यह झील अथवा तालाब से जल पीने के लिए अंतरिक्ष में प्रकट होता है। इसके बाद झील या तालाब का जल उबल कर ओला बन जाता है। ईश्वर पापियों पर ओला वृष्टि करता है। इसलिए लोगों को सलाह दी जाती है कि वे सुरक्षित स्थानों पर शरण ले लें।

नृत्य आदिवासी समुदाय की जीवन–शैली का अभिन्न अंग है। त्रिपुर का समाज अच्छी फसल की कामना से भगवान 'गरिया' की पूजा करता है। चैत्र मास में सात दिनों तक गरिया पूजा का उत्सव आयोजित किया जाता है। त्रिपुरी लोग गरिया नृत्य के द्वारा अपने देवी–देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं तथा अपने सुख–वैभव, धन–धान्य व आरोग्य लाभ हेतु प्रार्थना–उपासना करते हैं। इस नृत्य में बांस से निर्मित वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है तथा महिला–पुरुष सभी इसमें सम्मिलित होते हैं। रियङ समुदाय का प्रमुख नृत्य है 'होजागिरि'। इस नृत्य की एक अनोखी विशेषता है कि इसमें हाथ अथवा शरीर के ऊपरी अंगों का संचालन नहीं होता है। कमर से लेकर पैरों तक के अंगों के संचालन द्वारा भावनाओं को संप्रेषित किया जाता है। चकमा समुदाय द्वारा चैत्र संक्रांति के समय 'बिजु नृत्य' प्रस्तुत किया जाता है। यह बांग्ला वर्ष का समापन और नये वर्ष का आरंभ है। नृत्य–गीत द्वारा चकमा समुदाय के लोग पुराने वर्ष को अलविदा कहते हैं तथा नये वर्ष का अभिनंदन करते हैं। अपने पारंपरिक परिधानों, अलंकारों और पुष्पादि से सुसज्जित होकर महिला–पुरुष सभी नाचते–गाते हैं और अपने हर्ष–उल्लास को अभिव्यक्त करते हैं। हलम

समुदाय के लोग 'हई–हक' नृत्य करते हैं। यह कृषि से संबंधित नृत्य है। खेतों में बोआई हो जाने के उपरांत माता लक्ष्मी की अभ्यर्थना में यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है तथा धन–धान्यपूर्ण वैभवशाली भविष्य की कामना की जाती है।

अच्छी फसल होने के बाद प्रत्येक घर में वाङला उत्सव मनाया जाता है। आदिवासी समुदाय के प्रधान सभी घरों में जाकर कद्दू की बलि देते हैं तथा पूजा–अर्चना करते हैं। इसके उपरांत महिलाएं सामूहिक नृत्य प्रस्तुत करती हैं। त्रिपुरा की लुशाई बालिकाओं द्वारा अतिथियों के आगमन पर स्वागत नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। लड़कियां रंग–बिरंगे वस्त्र और बालों में पुष्प धारण कर विशिष्ट अतिथि के सम्मुख नृत्य प्रस्तुत करती हैं।

त्रिपुरा के विभिन्न समुदायों की नृत्य–शैलियों में भी भिन्नता है। अधिकांश नृत्य त्योहार के समय प्रस्तुत किये जाते हैं। नृत्य में बांस से बने झांझ, खंब, बांस निर्मित बांसुरी, ढोलक आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

मौलिक लोककथाओं के लिए त्रिपुरा की भूमि अत्यंत उर्वर है। इन कहानियों में कल्पनाशीलता, मौलिकता एवं सृजनशीलता का मणिकांचन संयोग है। कुछ लोककथाएं सुखांत और कुछ दुखांत हैं। इन लोककथाओं का संसार बहुत व्यापक है। दुखी लड़की का पक्षी में रूपांतरण, नवविवाहित दंपत्ति की मृत्यु तथा उनका पक्षी के रूप में पुनर्जन्म, सफेद हाथी द्वारा एक राजकुमारी का अपहरण, दो अभागे मातृहीन राजकुमारों का सौतेली मां द्वारा उत्पीड़न, सिंह और गीदड़ की कथा, दो जड़ पदार्थों की प्रेम लीला आदि कहानियां त्रिपुरा के समाज के मौलिक चिंतन के पुष्ट प्रमाण हैं।

पूर्वोत्तर के अन्य समुदायों की भांति त्रिपुर के समाज में भी लोकगीतों की उन्नत वाचिक परंपरा है। यहां के लोकगीतों में विषय विविधता और सरल–निश्छल जनता की भावाभिव्यक्ति है। ये गीत प्रदेश की संस्कृति के बहुआयामी पहलुओं का उद्‌घाटन करते हैं। प्रेम, विवाह, आर्थिक क्रियाकलाप, संस्कार, क्रीड़ा, प्राकृतिक घटनाएं आदि इन लोकगीतों के विषय होते हैं। लोकगीतों में त्रिपुरा का सांस्कृतिक परिदृश्य प्रतिबिंबित होता है, स्थानीय भूगोल सांसें लेता है, देवी–देवताओं की भावनाएं आकार ग्रहण करती हैं तथा वनस्पतियों के दिल धड़कते हैं। त्योहार गीत, मनोरंजन गीत, प्रेम गीत, श्रम गीत, संस्कार गीत आदि में त्रिपुरी समाज की आशा–आकांक्षाएं, जय–पराजय, हर्ष–विषाद की प्रतिध्वनि दृष्टिगोचर होती है।

त्रिपुरा में अनेक लोकोक्तियां एवं कहावतें प्रचलित हैं जिनमें सदियों के अनुभव, पूर्वजों की ज्ञान–राशि और शिक्षाप्रद विचार निहित हैं। कुछ कहावतें और लोकोक्तियां प्रस्तुत हैं–

- आसा दा ताइ फाइलेङ्ची, (आशा का कोई अंत नहीं)
- आ बाइ आना चाव (मछली को मछली खाती है)
- काङाल सा अक्रा ता उङदी (निर्धन परिवार का ज्येष्ठ पुत्र होना दुर्भाग्य की बात है)
- चेला काक कुरुङ कामी खाव, (वाक्‌पटु व्यक्ति गांव की एकता बनाए रखता है)
- सेले माइ कुरइ, (आलसी व्यक्ति को चावल भी नहीं मिलता)

टिप्पणी

- थेन्ता हा कुरइ, (धूर्त व्यक्ति को कोई शरण नहीं देता)
- चर बाइ चर, (कांटे से कांटा निकाला जाता है)
- ताल सु कितिङ कुरइ, (चांद की तरह कोई वस्तु गोलाकार नहीं है)
- साल सु थमची कुरइ, (सूर्य जैसा कुछ भी मजबूत नहीं है)
- मा सुकबा काहाम कुरइ, (मां से अच्छा कोई नहीं)

(—जगदीश गन चौधुरी (संपादक), त्रिपुराः द लैंड एंड इट्स पिपल)

3.2.3 नागालैंड

नागा समाज अनेक आदिवासी समूहों एवं उपजातियों में विभक्त है। नागालैंड की प्रमुख जनजातियां हैं— चाकेसाङ, अंगामी, जेलियाङ, आओ, सङतम, यिमचुङर, चाङ, सेमा, लोथा, खेमुङन, रेङमा, कोन्यक इत्यादि। नागालैंड की संपूर्ण आबादी जनजातीय है। प्रत्येक समुदाय वेश—भूषा, भाषा—बोली, रीति—रिवाज और जीवन शैली की दृष्टि से पृथक है लेकिन इतनी भिन्नता के बावजूद नागा समाज में परस्पर भाईचारा और एकता की सुदृढ़ भावना है तथा वे एक—दूसरे की जीवन—शैली का सम्मान करते हैं। नागालैंड में लगभग 30 भाषाएं बोली जाती हैं। ये भाषाएं एक—दूसरे से भिन्न हैं। एक गांव की भाषा पड़ोसी गांव के लिए अबूझ है। इन सभी भाषाओं की वाचिक परंपरा में असंख्य लोकगीत, लोककथाएं, मिथक, कहावतें आदि उपलब्ध हैं।

नागालैंड के युवागृह को 'मोरङ' के नाम से जाना जाता है। यहां अविवाहित युवक—युवतियां पारंपरिक नृत्य—गीत का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं और इस तरह नागा लोक साहित्य मौखिक परंपरा में आगे बढ़ता है। कुछ लोकगीतों एवं लोककथाओं की तो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है परंतु अधिकांश लोकगीत—लोककथाएं मिथकों पर आधारित हैं। भाषा की भिन्नता के कारण नागालैंड वासियों ने अपनी एक संपर्क भाषा विकसित कर ली है जिसका नाम है 'नागामीज'। यह असमिया, नागा, बांग्ला, हिंदी और नेपाली का मिश्रण है। नागामीज की न कोई लिपि है न ही सुनिश्चित व्याकरणिक नियम।

प्रदेश में लोक नृत्यों व गीतों की समृद्ध परंपरा है। यहां के नृत्य—गीत उत्साह, ऊर्जा, मस्ती और यौवन से भरपूर होते हैं जो प्रदेश की जीवंत सांस्कृतिक चेतना को प्रतिबिंबित करते हैं। नृत्य प्रायः पुरुषों द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। नृत्य की प्रस्तुति सामूहिक रूप में होती है। कोई भी नृत्य संगीतरहित नहीं है। संगीत नागा नृत्य का अभिन्न अंग है। पर्व—त्योहार, शादी—विवाह अथवा उत्साह के अन्य अवसरों पर नृत्य के माध्यम से नागा समुदाय अपने हर्ष को अभिव्यक्त करता है। झांझ, ढोलक, पेतु इत्यादि पारंपरिक वाद्य यंत्रों के उपयोग से नृत्य का प्रभाव दुगुना हो जाता है। नागालैंड में मुर्गा नृत्य, झींगुर नृत्य, भालू नृत्य आदि खूब लोकप्रिय हैं। इन नृत्यों में पशु—पक्षियों जैसा हाव—भाव और अंग संचालन होता है। 'हेतातेउली' अथवा भालू नृत्य यहां का युद्ध नृत्य है जो योद्धाओं में उत्साह व पराक्रम का संचार करता है। नृत्य मानव के हर्ष प्रकट करने की आदिम शैली है। इसीलिए कहा जाता है कि नृत्य का उद्‌भव गीत से भी पहले हुआ। नागा समाज भी अपने हर्ष—विषाद को प्रकट करने के लिए नृत्य की अलग—अलग शैलियों का प्रयोग करता है।

टिप्पणी

जब गांव में किसी विशिष्ट अतिथि का आगमन होता है तो उसका मनोरंजन करने के लिए रात्रि में ग्राम प्रधान के आवास के सामने अथवा मुक्ताकाश में नर्तकगण नृत्य प्रस्तुत करते हैं। सभी समुदायों की अलग–अलग नृत्य शैलियां हैं। लोकनृत्य के बिना नागालैंड का कोई भी धार्मिक–सामाजिक उत्सव पूर्ण नहीं होता। संगीत–नृत्य में नागा समाज की जीवन–शैली, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक बोध प्रतिबिंबित होता है।

गीत–संगीत नागा समाज के लिए हवा–पानी और श्वास के समान हैं। वे हर्ष और विषाद दोनों स्थितियों में गाते हैं। वर्षा हो या धूप, वसंत हो या शरद, सुख हो या दुख– वे सभी स्थितियों में गीतों द्वारा अपनी भावनाएं संप्रेषित करते हैं। वे समूह में भी गाते हैं और अकेले भी। नागा समाज के अधिकांश लोकगीत अभी भी मौखिक परंपरा में ही विद्यमान हैं जो पुरानी पीढ़ी के पास सुरक्षित है। कहानियां सुनाना और गीत गुनगुनाना नागा समाज के लिए मनोरंजन और समय व्यतीत करने के साधन हैं। यहां उपलब्ध गीतों को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

1. राइ ला– युद्ध गीत (तङखुल नागा)
2. मेइसुमला– युवागृह में गाए जाने वाले गीत
3. लुइशाव ला– फसल गीत
4. यर्रा ला– वसंत ऋतु के गीत
5. चापचत ला– मृत्यु गीत
6. नावखोत ला– लोरी गीत
7. मारन ला– गृह निर्माण संबंधी गीत
8. यङयिर्ला– शरद ऋतु के गीत।

नागालैंड के लोकगीतों की केंद्रीय विषयवस्तु होती है–वीरता का प्रदर्शन, प्रेम, उपासना, धार्मिक विश्वास आदि। 'हेलिअमलेऊ' सर्वाधिक लोकप्रिय गीत है जो प्रेम की भावभूमि पर आधारित होता है। 'हेरिलेऊ' युद्धगीत है। 'हेरिलेऊ' समाज के बुजुर्ग सदस्यों द्वारा गाए जाते हैं। इन गीतों के माध्यम से अतीत में हुए युद्धों एवं पूर्वपुरुषों की उपलब्धिपूर्ण शौर्य–गाथाओं का बयान किया जाता है। इन गीतों का उद्देश्य पूर्वजों के पराक्रम की गौरव गाथा द्वारा नई पीढ़ी को प्रेरित करना व उनमें साहस का संचार करना है। 'नेउलेऊ' प्रदेश की एक विशिष्ट गीत शैली है। इसे आख्यान गीत भी कहा जाता है। इन गीतों में वर्षों पूर्व किसी व्यक्ति द्वारा जीवन के किसी भी क्षेत्र में किये गए उत्कृष्ट व उपलब्धिपूर्ण कार्यों का वर्णन होता है। इन गीतों में नागा समाज की रचनाशीलता झलकती है। 'हेकियालेऊ' नागा समाज का गाथा गीत है। इसके दो रूप हैं– पहला, जिसे समाज के वरिष्ठ सदस्य गाते हैं और इनमें उनके यौवन काल की गौरव गाथा होती है। दूसरा, जिसे बुजुर्ग एवं युवा सभी गाते हैं। बुजुर्ग लोग इन गीतों के द्वारा अपने जीवन वृत्तांत से नई पीढ़ी को अवगत कराते हैं तथा इस प्रकार उनके आख्यान और अनुभव वाचिक परंपरा में भावी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते हैं। युवागृह में गाए जाने वाले गीतों में प्रेम गीतों की संख्या सर्वाधिक है। नृत्यों और त्योहारों के दौरान लड़के–लड़कियों

में प्रेम संबंध विकसित होते हैं और वे अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए गीतों का सहारा लेते हैं। खेतों में काम करते समय नागा लोग गीत गाते हैं जो उनकी थकावट को दूर करने का काम करते हैं। लोरी गीतों में मां की ममता होती है। मृत्यु गीतों की पंक्तियां दुख, पीड़ा और आंसुओं से भींगी होती हैं।

नागालैंड के सभी आदिवासी समुदायों के लोकगीतों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. संस्कार गीत
2. उपासना गीत
3. प्रणय गीत
4. लोरी गीत
5. युद्ध गीत
6. श्रम गीत
7. ऋतु संबंधी गीत और
8. गाथा गीत।.

युद्ध गीतों में किसी गांव अथवा पूर्वजों की वीर गाथा वर्णित होती है। एक युद्ध गीत में उल्लेख है कि एक शक्तिशाली गांव के बहादुर योद्धा दूसरे गांव पर चढ़ाई करने गए परंतु उस गांव में उनका प्रतिरोध करने वाला कोई नहीं था। सभी ग्रामवासी आत्मसमर्पण की मुद्रा में थे। उस गांव के लोगों ने विजेता ग्रामवासियों को मांस और मदिरा का उपहार दिया।

नागा समाज में लोककथाओं और मिथकों की समृद्ध परंपरा है। प्रदेश के सभी समुदायों में अपने देशांतरगमन, पूर्व पुरुषों तथा ईश्वरीय प्रतीकों के संबंध में भिन्न–भिन्न मिथक प्रचलित हैं। वन एवं वन्य प्राणियों से संबंधित लोककथाओं और मिथकों का बाहुल्य है। पूर्वोत्तर के अन्य आदिवासी समूहों की भांति नागालैंड के मिथकों में भी सृष्टि, पेड़, पर्वत, जल, मानव, पशु–पक्षी, जीव–जंतु आदि की उत्पत्ति की कथा वर्णित है। यहां प्रेम कथाएं भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। प्रेमकथाओं के नायक–नायिका एक–दूसरे के लिए आत्मोत्सर्ग करने को तैयार दिखते हैं। संसार के अन्य समाजों की भांति नागा समाज की लोककथाएं भी किसी न किसी मानवीय व सामाजिक मूल्य को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयासरत दिखती है। यहां जड़ वस्तुओं का मानवीकरण कर उनके बीच परस्पर प्रेम का चित्रण किया गया है। आखेट संबंधी लोककथाएं भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं जिनमें पूर्वजों की अनुभवसिद्ध घटनाएं होती हैं।

लोकोक्तियां

- बड़े गांव के लोग घमंडी होते हैं।
- छोटे गांव के लोग साहसी नहीं होते।
- नेतृत्व कुशल व्यक्ति अच्छे शिकारी कुत्ते के समान होते हैं।

टिप्पणी

- स्वयं से झूठ मत बोलो।
- दूसरों से असंभव कार्य की आशा मत करो।
- लघुता में भी अपार संभावनाएं।
- बिना मांगे सलाह देना उचित नहीं।
- अपने पारिवारिक पृष्ठभूमि के संबंध में शेखी बघारना ठीक नहीं।

3.2.4 मणिपुर

मणिपुर अपने शाब्दिक अर्थ के अनुरूप वास्तव में मणि की भूमि है। इसे देवताओं की रंगशाला कहा जाता है। सदाबहार वन, पर्वत, झील, जलप्रपात आदि इसके नैसर्गिक सौंदर्य में चार चांद लगा देते हैं। अतः इस प्रदेश को भारत का मणिमुकुट कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। यहां की लगभग दो–तिहाई भूमि वनाच्छादित है। प्रदेश के पास गौरवशाली अतीत, समृद्ध विरासत और स्वर्णिम संस्कृति है। मणिपुर की प्रमुख भाषा मैतेई है जिसे मणिपुरी भी कहा जाता है। मैतेई भाषा की अपनी लिपि है– मीतेई–मएक। इसके अतिरिक्त राज्य में 29 बोलियां हैं जिनमें प्रमुख हैं– तङखुल, भार, पाइते, लुसाई, थडोऊ (कुकी), माओ आदि। इन सभी भाषाओं की वाचिक परंपरा में लोक साहित्य का विशाल भंडार उपलब्ध है।

मणिपुर में निम्नलिखित आदिवासी समूह रहते हैं– ऐमोल, अनल, अंगामी, चिरू, चोथे, गंगते, ह्मार, लुशाई, काबुई, कचांनगा, खरम, कोईराव, कोईरङ, कोम, लम्काङ, माओ, मरम, मरिङ, मोनसङ, मायोन, पाइते, पौमई, पुंरुम, राल्ते, सहते सेमा सिम्ते, तङखुल, थड़ौउ, तराव, वइफी, जाऊ और एनी कुंकी।

मणिपुर पर्व–त्योहारों एवं उत्सवों की भूमि है। कहा जाता है कि यहां बारह महीने में तेरह त्योहार मनाए जाते हैं। यहां की संस्कृति में अनेक पर्व–त्योहारों, स्वर्णिम इतिहास, अद्‌भुत वास्तुशिल्प, मंत्रमुग्ध कर देने वाले संगीत–नृत्यों, विविधतापूर्ण रीति–रिवाजों का अनोखा संगम है। नृत्य–गीत मणिपुरी जीवन–शैली के अभिन्न अंग हैं।

प्रदेश में अनेक प्रकार की नाट्य शैली प्रचलित है। लोक नाटक को फागीलीला, सुमङलीला आदि के नाम से संबोधित किया जाता है। फागीलीला हास्यनाटक है जिसमें सामाजिक विद्रूपताओं को रेखांकित किया जाता है। नाटक अथवा जात्रा यहां के सामाजिक जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। महिला जात्रा, बाल जात्रा, इशेई लीला (संगीत जात्रा), इपोम (हास्यपरक लीला) इत्यादि सुमङलीला की नाट्यशैलियां यहां खूब लोकप्रिय हैं।

मणिपुरी लोकगीतों को 'खुन्नुङ इशेई' अथवा 'खुतलङ इशेई' कहा जाता है। इन लोकगीतों में जीवन के सभी पहलू शामिल होते हैं। हर्ष–विषाद, आशा–आकांक्षा, प्रेम–घृणा आदि मानवीय भावनाओं को प्रकट करनेवाले इन लोकगीतों की अनेक शैलियां प्रचलित हैं। भिन्न–भिन्न आदिवासी समूहों की गायन शैली में भी पर्याप्त भिन्नता होती है। हल चलाते समय, फसल काटते समय अथवा अन्य उत्पादक कार्य करते हुए मणिपुरवासी अनेक प्रकार के श्रम गीतों का गायन करते हैं। श्रम गीतों को 'लौटरोल', 'फिसा इशेई', 'हिजिन हिराव' आदि नामों से संबोधित किया जाता है। मणिपुर में संस्कार गीतों, उपासना गीतों, त्योहार गीतों आदि की उन्नत परंपरा है। संस्कार गीतों को 'औगरी', 'खेमको', 'अहोङलोन' इत्यादि

टिप्पणी

नामों से जाना जाता है। अनेक मिथक गीत, ऋतु संबंधी गीत, वीर गाथात्मक गीत भी प्रचलित हैं। प्रणय गीतों की भी विविध शैलियां प्रचलित हैं।

मणिपुर अपने आध्यात्मिक गीतों के लिए भी प्रसिद्ध है। आध्यात्मिक गीतों में चैतन्य महाप्रभु के जीवन–दर्शन का उल्लेख होता है। 'मनोहर साई' राम करताल के साथ गाया जानेवाला कर्णमधुर संगीत है। 'लाई हराओबा' में द्विअर्थी शब्दों के द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन किया जाता है। 'खुल्लोङ इशेई' मैतेई समुदाय का श्रमगीत है। इस गीत का केंद्रीय विषय प्रेम होता है। इसे खेतों में काम करते समय गाया जाता है। 'लाई हराओबा इशेई' मणिपुर का उत्सव गीत है। पर्व–त्योहारों एवं आनंद के अन्य अवसरों पर यहां के निवासी उत्सव गीतों द्वारा अपने उत्साह और हर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। 'थाबल चोङबैशई' नृत्य के समय जिस गीत को प्रस्तुत किया जाता है उसे 'थाबल चोङबैशेई' कहा जाता है। धोब, नुपी पाला आदि गीतों में प्रदेशवासी अपनी आत्मा को उड़ेल देते हैं।

मणिपुरी समाज में नृत्य भी एक प्रकार की उपासना और ईश्वर प्राप्ति का माध्यम है। यहां नृत्य को एक पवित्र कर्तव्य माना जाता है। इसे प्रस्तुत करने के लिए कुछ सुनिश्चित नियम हैं। जहां नृत्य की प्रस्तुति हो उस जगह को पवित्र होना चाहिए। किसी भी समय और कहीं भी नृत्य प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए, ऐसा करना पाप माना जाता है। मणिपुरी समाज में धर्म के साथ नृत्य का गहरा जुड़ाव है। जीवन के विभिन्न संस्कारों, यथा– जन्म, विवाह, श्राद्ध आदि के अवसर पर नृत्य प्रस्तुत करने की परंपरा है।

'लाई हराओबा' सृष्टि की उत्पत्ति की अवधारणा पर आधारित लोक नृत्य है। इसमें 'उमङलाई' (वन के देवी–देवता) की उपासना की जाती है। 'डोल जात्रा' का त्योहार फाल्गुन मास में मनाया जाता है। इस अवसर पर पांच दिनों तक 'थाबल चोङबा' नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में महिला–पुरुष सभी भाग लेते हैं। नर्तक दल के सभी सदस्य एक–दूसरे के हाथ पकड़कर नृत्य करते हैं तथा घर–घर जाकर चंदा वसूलते हैं। 'नुपा पाला' नृत्य पुरुषों द्वारा सामूहिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। 'तूनगन लम', 'हेङ', 'नागा तूना', 'गन लम' इत्यादि आदिवासी समुदाय के नृत्य हैं। बांस नृत्य चूड़ाचांदपुर के लुशाई समुदाय का लोकनृत्य है। यह बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। रंगबिरंगे पारंपरिक परिधानों से सुसज्जित बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत बांस नृत्य चित्ताकर्षक व नियनाभिराम होते हैं।

मणिपुर में रासलीला भी बहुत लोकप्रिय है। चार प्रकार के रास मुख्य हैं– महारास, कुंजारास, वसंत रास और नित्य रास। 'दिबास रास' गोपियों द्वारा साड़ी पहनकर प्रस्तुत किया जाता है। 'उदुखोल' में भगवान श्रीकृष्ण की बाललीला को नृत्य और आध्यात्मिक संगीत के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। 'गौरलीला' आठ–दस वर्ष के बालकों द्वारा प्रस्तुत की जाती है। 'खंबा' और 'थोइबी नृत्य' लाईहराओबा के दौरान प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य के द्वारा खंबा व थोइबी की प्रेम कथा का वर्णन किया जाता है।

लोकोक्तियां

- चावल का एक दाना बर्तन के पूरे चावल को खराब कर देता है।
  (एक मछली तालाब को गंदा कर देती है)

- खाली तालाब में ज्यादा मछलियां होती हैं।
  (आशा से अधिक की प्राप्ति)
- बड़े काम में कम समय लगता है, छोटे काम में अधिक।
- क्या पीटने से बर्तन टूट जाते हैं?
  (सुधारने के लिए बच्चों को दंड दिया जाता है)
- बांस पर कौवा ही बैठता है।
  (अधिक ऊंचा उड़नेवाला पाताल में गिरता है)

3.2.5 मिजोरम

मिजो आदिवासियों की भूमि मिजोरम एक छोटा पर्वतीय प्रदेश है। 'मिजो' का शाब्दिक अर्थ 'पर्वतवासी' है। यह शब्द 'मि' और 'जो' के संयोग से बना है। 'मि' का अर्थ है 'लोग' तथा 'जो' का अर्थ है पर्वत।

मिजोरम में मुख्यतः निम्नलिखित समुदायों के लोग निवास करते करते हैं:

राल्ते, पाइते, दुलियन, पोई, सुक्ते, पंखुप, जहाव, फलाई, मोलबेम, ताउते, लखेर, दलाङ, खुङलई, इत्यादि। 'मिजो' इस प्रदेश की मुख्य भाषा है। यहां की अन्य भाषाएं हैं—जाहू, लखेर, हमार, पाइते, लाई, राल्ते इत्यादि। मिजोरम के सभी समुदायों में लोक साहित्य की उन्नत परंपरा है। अभी तक मिजो लोक साहित्य का अधिकांश वाचिक परंपरा में ही विद्यमान है। लोकसंगीत की दृष्टि से मिजो समाज पूर्वोत्तर के अन्य समुदायों से विशिष्ट है। यहां का लोकगीत मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से विशाल व विविध आयामी है। प्रदेश में लगभग 100 प्रकार के लोकगीत हैं परंतु उन लोकगीतों को मोटे तौर पर दस वर्गों में विभक्त किया गया है।

- **बाव हला :** यह मिजोरम का युद्ध गीत है। जब कोई योद्धा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है तो बाव हला गाकर अपनी विजय का शंखनाद करता है। योद्धा इन गीतों के द्वारा अपने साहस व शौर्य का प्रदर्शन करता है तथा अपने लोगों को अवगत कराता है कि मैंने दुश्मनों को पराजित कर दिया है। शत्रु को मारने वाला योद्धा ही बाव हला गाने का अधिकारी है। युद्धक दल के अन्य सदस्य नहीं।
- **ह्लादो :** यह शिकार गीत है। ह्लादो शिकारियों द्वारा शिकार में सफलता प्राप्त करने के उपरांत गाया जाता है। इसका गायन आखेट स्थल पर भी किया जा सकता है, घर वापस आते समय मार्ग में भी और विजय के उपलक्ष्य में आयोजित उत्सव में भी।

  थियम ह्ला और दवी ह्ला : यह लोकगीत पुजारियों तथा जादू–टोना करने वाले व्यक्तियों द्वारा गया जाता है। इसका गायन अनुष्ठान के अवसरों पर किया जाता है।
- **दर ह्ला :** दर ह्ला मिजो समाज के लोकप्रिय गीत हैं। संख्या की दृष्टि से भी इन गीतों की उपलब्धता अधिक है। इसका नामकरण एक वाद्ययंत्र के नाम पर किया गया है।

टिप्पणी

- **पुईपन ह्ला :** ये गीत आनंद और उत्सव के अवसरों पर गाए जाते हैं। पुईपन ह्ला भी मिजो समाज में अत्यंत लोकप्रिय है।
- **लेङ्जम जई :** ये प्रणय गीत हैं। इसका कोई सुनिश्चित रूप नहीं है परंतु इन गीतों में प्रणय निवदेन, आत्मसमर्पण और आत्मदान की भावना होती है।
- **जनजातियों के नामों पर आधारित गीत :** मिजो समाज में वैसे गीतों की लंबी परंपरा है जिनका नामकरण किसी विशिष्ट आदिवासी समूह के नाम के आधार पर किया गया है।
- **गांवों के नामों पर आधारित गीत :** मिजोरम में कुछ गीत ऐसे भी प्रचलित हैं जिनका नामकरण गांवों के नाम के आधार पर किया जाता है।
- **आवाज अथवा ध्वनि पर आधारित गीत :** मिजो समाज में कुछ गीत ऐसे भी विद्यमान हैं जिनका नामकरण आवाज या ध्वनि के आधार पर किया जाता है।
- **व्यक्ति के नाम पर आधारित गीत :** मिजो समाज में किसी विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर आधारित गीतों की भी विशाल संख्या है। इस प्रकार के अधिकांश गीतों का नामकरण किसी रचयिता के नाम पर किया गया है, परंतु कुछ गीतों का नामकरण समुदाय की किसी सुंदर महिला अथवा किसी पराक्रमी पुरुष के नाम पर भी किया गया है।

मिजोरम के लोकगीतों के मुख्य विषय होते हैं–अतीत की गौरव–गाथा, वीर गाथात्मक आख्यान या घटनाएं, आखेट संबंधी अनुभव व घटनाएं, प्रेम, युद्ध संबंधी कथाएं आदि।

मिजोरम में युद्ध नृत्य, त्योहार नृत्य, स्वागत नृत्य की उन्नत परंपरा है। 'चेरव' यहां का विशिष्ट रंगारंग नृत्य है। इसे 'बांस नृत्य' भी कहा जाता है। इस नृत्य में छह–छह लड़कियों के दो समूह होते हैं। सभी लड़कियां पारंपरिक परिधान धारण कर नृत्य करती हैं तथा गीत गाती हैं। यह मिजोरम की सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य शैली है। 'खुल्लम' नृत्य आरंभिक दिनों में सामुदायिक उत्सव के दौरान किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर किया जाता था। यह नृत्य भी अन्य नृत्यों की भांति समूह में प्रस्तुत किया जाता है। 'चेई लम' नृत्य संध्या के समय चावल निर्मित मदिरा का सेवन करने के उपरांत किया जाता है। इस नृत्य में यौवन की उमंग और भरपूर मस्ती होती है। 'खल लाम' त्योहार नृत्य है जो लड़के–लड़कियों द्वारा रातभर चलता है। इस नृत्य में ऊर्जा, उत्साह और उत्तेजना सबकुछ होता है। 'जु' पार्टी में भी नृत्य–गीत प्रस्तुत किये जाते हैं। 'जु' मिजोरम की चावल से निर्मित मदिरा है जिसका सेवन मिजोरम के उत्सवों में अनिवार्यतः किया जाता है।

दूसरे समाजों की भांति मिजोरम में भी अनेक लोकनायक–लोकनायिकाओं की कहानियां प्रचलित हैं। मिजोरम की लोककथाओं का सबसे लोकप्रिय पात्र 'छुरबुरा' है जिसे 'छुरा' भी कहते हैं। कुछ लोग उसे अत्यंत बुद्धिमान मानते हैं तो कुछ उसे अत्यंत मूर्ख। वह एक लोकप्रिय परंतु विरोधाभासी चरित्र है। उसके भाई का नाम 'नहाइया' है जिसे 'ना–आ' भी कहा जाता है। 'छुरा' अपने भाई से बहुत प्रेम करता था। दोनों के संबंध में

टिप्पणी

अनेक कथाएं प्रचलित हैं। दोनों के बीच घर तथा झूम खेत की अदला–बदली की कहानियां, छुरा की लंबी यात्रा की कहानियां, छुरा की मृत्यु की कहानियां आदि मिजोरम के घर–घर में प्रचलित हैं। कहा जा सकता है कि 'छुरा' मिजो समाज का एक अत्यंत प्रिय लोकनायक है और उसका भाई 'ना–आ' एक सरल–निश्छल चरित्र है। 'छुरा' की मृत्यु के संबंध में अनेक विरोधाभासी कथाएं प्रचलित हैं। कुछ कहानियों में वर्णित है कि उसकी मृत्यु लंबी यात्रा के दौरान हुई जबकि कुछ कहानियों के अनुसार मृत्यु के समय वह ग्राम प्रधान के रूप में काम कर रहा था।

'नहाइया' का एक किस्सा बहुत मशहूर है। एक बार उसने सोचा कि पता लगाया जाए कि कौन मित्र और सच्चा हितैषी है। इसलिए वह झूम खेत के मार्ग में ऐसे लेट गया जैसे वह मर चुका हो, परंतु किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। 'ना–आ' मरे या जीवित रहे, दूसरे को क्या? अंततः उसका भाई 'छुरा' उसी मार्ग से आ रहा था। उसने 'ना–आ' को देखा और उसे मृत समझकर जोर–जोर से रोने लगा। उसने अपने भाई को पीठ पर लाद लिया। रास्ते में 'ना–आ' पीठ से उतरकर खड़ा हो गया और कहा कि मैं समझ गया हूं कि मेरा भाई ही मेरा सच्चा हितैषी है और कोई नहीं। इसी प्रकार मिजोरम में गरीब और अनाथ 'लिएंडोवा और उसके भाई' की कहानी, 'तुअलवुंगी और जालपाला' नामक दंपति की कहानी बहुत प्रसिद्ध है।

मिजोरम में प्रचलित लोककथाओं में भावना की प्रबलता है। कुछ कहानियां अविश्वसनीय होते हुए भी लोगों का मार्गदर्शन करने की क्षमता रखती हैं। मानवीय और सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने वाली भी अनेक कथाएं प्रचलित हैं।

मिजो लोगों का विश्वास है कि उनकी उत्पत्ति पृथ्वी से हुई है। एक बहुत बड़ी गुफा (चिनलुङ) थी जिससे इनके पूर्वज की उत्पत्ति हुई। उस गुफा से एक–एक करके मानव प्रकट हुए लेकिन जब एक राल्ते दंपति गुफा से बाहर आया तो इतनी तीव्र गर्जना की जिससे उस गुफा के संरक्षक (ईश्वर) भयभीत हो गए उन्हें लगा कि मनुष्य की जनसंख्या बहुत हो गई है। अतः उन्होंने पत्थर से गुफा–द्वार बंद कर दिया। इसके उपरांत पृथ्वी से मानव की उत्पत्ति का सिलसिला बंद हो गया। ऐसी मान्यता है कि मिजोरम में वह गुफा अभी भी विद्यमान है, परंतु कोई व्यक्ति वहां जाने का साहस नहीं करता।

लोकोक्तियां अथवा कहावतें

- बुरी आदतों एवं गलतियों को सुधारा जा सकता है, पर कुरूपता का कोई इलाज नहीं है।
- अच्छे पेड़ में अच्छा फल, बुरे पेड़ में बुरा। (बोए पेड़ बबूल का, आम कहां से होए)
- नाच न जाने, आंगन टेढ़ा।
- नया राजा, अत्याचारी राजा।
- कल करे सो आज कर।
- अपराधी बचे, निर्दोष फंसे।
- बड़ों के निर्देशों का विरोध मत करो।

टिप्पणी

- घर में प्रवेश करने से पहले आवाज दो।
- आपातकाल में जो मित्रों की सहायता नहीं करे उसे लहंगा पहन लेना चाहिए।
- मौसम और बच्चों के जन्म के समय की ठीक–ठीक भविष्यवाणी करना संभव नहीं।
- इतना धीरे चलो जैसे बड़ा सर्प चलता है।
- बुरी पत्नी और बुरे बाड़ को बदल देना चाहिए।
- भोज में बड़ों के आरंभ करने से पहले खाना आरंभ मत करो।

3.2.6 मेघालय

मेघालय एक छोटा पर्वतीय प्रदेश है। यहां की अधिकांश भूमि पर्वत–घाटियों और वनों से आच्छादित है। यहां खासी, जयंतिया, गारो तीन प्रमुख आदिवासी समूह रहते हैं। खासी, जयंतिया, गारो और अंग्रेजी प्रदेश की प्रमुख भाषाएं हैं। अंग्रेजी राज्य की राजभाषा है। प्रदेश की वाचिक परंपरा में नृत्य, गीत, मिथक, कहावत आदि की समृद्ध विरासत है। 'लाहो' नृत्य मेघालय की प्रमुख नृत्य शैली है। यह त्योहार नृत्य है। इसमें महिला–पुरुष सभी शामिल होते हैं। नर्तकगण अपने रंग–बिरंगे पारंपरिक परिधानों एवं आभूषणों से सुसज्जित हो पूरी मस्ती के साथ नृत्य करते हैं।

खासी समुदाय के लिए नृत्य–गीत जीवन का अभिन्न अंग है। 'शाद नोङकरेम' इस समुदाय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नृत्य है जो पांच दिनों तक चलता है। इस समुदाय द्वारा वसंत ऋतु के समय एक नृत्योत्सव आयोजित किया जाता है जिसे 'शाद सुकमिनसियम' कहते हैं। यह धार्मिक से अधिक सामुदायिक उत्सव है। किसी तालाब, झरना अथवा अन्य जलस्रोतों के निकट यह आनंदोत्सव आयोजित किया जाता है। तीन दिनों तक चलनेवाले इस उत्सव में रंग–बिरंगे पारंपरिक परिधानों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर पूरी मस्ती और उमंग के साथ नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। महिलाएं मुकुट पहनकर नृत्य करती हैं। अविवाहित लड़कियां दल के बीच में धीरे–धीरे पद संचालन करते हुए नृत्य करती हैं। खासी समुदाय का पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्य का नाम है 'का शाद लिम्मो'। इस नृत्य में नर्तकगण अपने हाथों में वृक्ष की डालियां लेकर जीवंतता के साथ नृत्य करते हैं। मेघालय के अन्य नृत्य हैं–दोरे राता, पोमेलो नृत्य आदि।

मेघालय के गारो समुदाय द्वारा अंत्येष्टि के बाद 'मङोना या चुगना' नामक मृत्यु उत्सव का आयोजन किया जाता है। मृतक की स्मृति में कई दिनों तक यह उत्सव समारोहपूर्वक मनाया जाता है। संस्कार के अंतिम दिन मृतक की आत्मा की शांति के लिए सामुदायिक भोज किया जाता है और आमंत्रित अतिथियों और ग्रामवासियों को सूअर मांस, चावल का भोज दिया जाता है। सभी लोग पूरी रात नाचते–गाते हैं। इस संस्कार नृत्य में बांस से बने पारंपरिक वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

'ग्रेङदीक बाअ' भी अंत्येष्टि के उपरांत किया जाने वाला संस्कार नृत्य है। इसमें मृतक की आत्मा की शांति के लिए ग्रामवासी और आमंत्रित अतिथि चावल से बनी मदिरा पीकर पूरी रात नाचते–गाते हैं। नर्तकों द्वारा गाए जाने वाले गीत लयात्मक और अर्थपूर्ण होते हैं।

टिप्पणी

गारो समुदाय में वीर रसात्मक लोकगीतों की समृद्ध परंपरा है जो आत्म गौरव को जागृत करने वाले होते हैं। इस समाज में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं– संस्कार गीत, त्योहार अथवा उत्सव गीत और प्रणय गीत। इन लोकगीतों में नदियों, पहाड़ों, पेड़–पौधों, झूम खेती, देवी–देवताओं आदि का बार–बार उल्लेख मिलता है। प्रणय गीतों में समर्पण–भाव है, नारी होने की विवशता है, एक–दूसरे के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना है तथा कुछ गीतों में तो पुरुष वर्चस्व को सीधी चुनौती है। खासी और जयंतिया समुदाय अपनी सुख–समृद्धि की कामना से प्राकृतिक शक्तियों की पूजा–प्रार्थना करते हैं तथा पर्वत, झील, जलप्रपात, देवी–देवता आदि को प्रसन्न करने के लिए गीत गाते हैं। गीतों में विभिन्न प्रकार के परंपरागत वाद्ययंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है।

मेघालय के जनजातीय समाज में लोककथाओं की समृद्ध परंपरा है। अधिकांश कहानियां विभिन्न वस्तुओं, जीव–जंतुओं, पशु–पक्षियों की उत्पत्ति, देशांतरगमन, प्रेम, वन्य–जीवन आदि से संबंधित हैं। अनेक कहानियां पूर्वजों के साहस और शौर्य तथा आखेट से संबंधित हैं। शिलांग चोटी की कहानी, पृथ्वी की उत्पत्ति की कहानी, बाघ और बंदर की कथा, आलसी कछुए की कथा आदि मेघालय में बहुत लोकप्रिय हैं। पूर्वोत्तर के अन्य आदिवासी समुदायों की भांति मेघालय के समाज में भी प्रायः सभी वस्तुओं, जीव–जंतुओं एवं पशु–पक्षियों की उत्पत्ति के संबंध में मिथक विद्यमान हैं। गारो मिथक के अनुसार सृष्टि के आरंभ में सर्वत्र केवल पानी ही पानी था, सूर्य और चंद्रमा का अस्तित्व नहीं था, सर्वत्र अंधकार व्याप्त था। उस समय 'तातरा राबुगा' ने संसार (सृष्टि) की उत्पत्ति की। इसी तरह विष, पर्वत, चट्टान, वनस्पतियों आदि की उत्पत्ति के संबंध में भी रोचक मिथक मौजूद हैं। अधिकांश मिथक वैज्ञानिक दृष्टि से भले ही प्रामाणिक नहीं है परंतु इनमें रचनाशीलता और कल्पनाशीलता की ऊंची उड़ान देखी जा सकती है।

3.2.7 सिक्किम

तिब्बत, नेपाल, भूटान की अंतरराष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित सिक्किम एक लघु पर्वतीय प्रदेश है। यह सम्राटों, वीर योव्द्धाओं और कथा–कहानियों की भूमि के रूप में विख्यात है। पर्वतों से आच्छादित इस प्रदेश में वनस्पतियों एवं पुष्पों की असंख्य प्रजातियां विद्यमान हैं। सिक्किम की पुष्पित हवा सुगंध से सराबोर रहती है। जैव विविधता, पेड़–पौधों की असंख्य प्रजातियां एवं वन्य–जीवों के कारण इस प्रदेश को वनस्पतिविज्ञानियों–पुष्पविज्ञानियों का स्वर्ग कहा जाता है। राज्य में मुख्यतः लेपचा, भूटिया, नेपाली तथा लिंबू समुदाय के लोग रहते हैं। नेपाली, भूटिया, लेपचा तथा लिंबू यहां की प्रमुख भाषाएं हैं जिनमें से नेपाली को संविधान की अष्टम अनुसूची में शामिल किया गया है। सितंबर महीने में यहां दो दिवसीय 'कंचनदीजोड़ा' नृत्योत्सव आयोजित किया जाता है। इस अवसर पर कंचनजंगा की पूजा–अर्चना की जाती है तथा क़ंचनदीजोड़ा नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। 'लोस्सूङ' (नव वर्ष) के अवसर पर सिक्किमवासी काली टोपी नृत्य प्रस्तुत कर अपना हर्ष प्रकट करते हैं। इस नृत्य के माध्यम से बुराई पर अच्छाई, पाप पर पुण्य, अंधकार पर प्रकाश तथा असत्य पर सत्य की विजय दिखाई जाती है। इस नृत्य की प्रस्तुति पुरुषों द्वारा की जाती है। नर्तकगण विभिन्न प्रकार के मुखौटे पहनकर बौद्ध धर्म से संबंधित कथाएं सुनाते हैं। लिंबू समुदाय के लोग धान की खेती करने के उपरांत ढ़ोल नृत्य द्वारा अपने हर्ष को अभिव्यक्त

करते हैं। लेपचा समुदाय के लोग भी फसल कटने के बाद सामुदायिक नृत्य के द्वारा अपना उल्लास प्रकट करते हैं।

टिप्पणी

सिक्किम का लोकनृत्य प्रदेश की लोक संस्कृति, लोकगीत, लोकजीवन एवं लोक वाद्ययंत्रों की मिश्रित प्रस्तुति है। सिक्किमवासी अपने उल्लास को उत्सव नृत्यों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। पुजारी द्वारा प्रस्तुत संस्कार नृत्य का उद्देश्य रोगग्रस्त व्यक्ति को आरोग्य–लाभ प्रदान करना है। प्रदेश के अधिकांश लोकनृत्य संस्कार अथवा उत्सव से संबंधित हैं। 'यगरङसिङ लङ' लिंबू समुदाय का संस्कार नृत्य है। यह प्रत्येक वर्ष प्रायः दिसंबर माह में पूर्णिमा के दिन प्रस्तुत किया जाता है। लिंबू जनजाति के लोग इस नृत्य के द्वारा विभिन्न देवी–देवताओं की उपासना करते हैं। देवी–देवताओं को नवान्न का भोग लगाया जाता है तथा मांस, मदिरा आदि वस्तुएं अर्पित कर उनकी उपासना में नृत्य किए जाते हैं। इस नृत्योत्सव में पूरा समुदाय सम्मिलित होता है। यह नृत्य एक, तीन, सात अथवा नौ रातों तक चलता है। इसमें लिंबू समुदाय की ऊर्जा, मस्ती और उत्साह दृष्टिगोचर होता है। 'साक्यो–रम–फात' लेपचा समुदाय का त्योहार है। इस त्योहार में सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किया जाता है तथा धन–धान्य की कामना से सात अमर दंपतियों की उपासना की जाती है। लेपचा समुदाय के लोगों की धारणा है कि इन सात दंपतियों की अनुकंपा से ही फसलों की रक्षा होती है। सिक्किम के लोकनृत्यों को मुख्य रूप से निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है:

संस्कार नृत्य

1. खाइनजरी भजन
2. साक्यो–रम–फात
3. तेनदोङ ल्हो रम फात
4. यगरङसिङ लङ

उत्सव नृत्य

1. मरुनी नृत्य
2. कग्येद मुखौटा नृत्य

ऋतु संबंधी नृत्य

1. संगिनी नाच
2. तमके उकमा

बरसिंघा नृत्य, कंकाल नृत्य, दंपू नृत्य भी सिक्किम के अत्यंत लोकप्रिय नृत्य हैं।

सिक्किम के विभिन्न समुदायों में लोकगीतों की समृद्ध विरासत है। यहां के लोकगीतों में कोमल कल्पनाएं तथा निर्दोष मन की सरल भावनाएं अभिव्यंजित हुई हैं। इन लोकगीतों में विभिन्न समुदायों की सांस्कृतिक चेतना की काव्यात्मक प्रस्तुति हुई है। लिंबू समुदाय लोकगीतों के विषय–वैविध्य के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। इनके लोकगीतों को अग्रलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

टिप्पणी

1. **प्रणय गीत**– ख्याली के नाम से मशहूर इस प्रणयगीत के द्वारा युवक–युवतियां अपने प्रेमोद्‌गार प्रकट करते हैं। शोरोक्पा पल्लम सम्लो, पल्लम सम्लो और तामके उकर्ण पल्लम सम्लो प्रणय गीत के अन्य रूप हैं।
2. **हकपारे सम्लो**– यह समाज के बुजुर्ग लोगों का मनोरंजन गीत है।
3. **निसाम्मङ सेवा सम्लो**– यह उत्सव गीत है।
4. **का लङ सम्लो**– यह नृत्य के दौरान गाया जानेवाला मनोरंजन गीत है।

पूर्वोत्तर के अन्य प्रदेशों की भांति सिक्किम के लोग भी सुकुमार कल्पना के धनी हैं। इसलिए यहां की लोककथाओं में कल्पना की महीन बुनावट मिलती है। प्रदेश की वाचिक परंपरा में विद्यमान लोककथाएं यहां की सांस्कृतिक धरोहर हैं जो विभिन्न समुदायों की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालती हैं। इन लोककथाओं के व्यापक संसार में मनुष्य, राक्षस, पशु–पक्षी, वनस्पति आदि सभी का सहअस्तित्व होता है। इन कथाओं में प्रकृति अपने यथार्थ रूप में अभिव्यंजित हुई है। इन कथाओं का सिक्किमवासियों के जीवन में बहुत महत्व है। ये कथाएं सिक्किमवासियों की समझ विकसित करती हैं, उन्हें अधिक मानवीय और उदार बनाती हैं तथा सामाजिक संस्कारों–मूल्यों से उनका साक्षात्कार कराती हैं। वाचिक परंपरा में अधिकतर लोककथाएं गीत, नृत्य, आख्यान आदि के रूप में प्रचलित हैं। इनमें विभिन्न समुदायों के देशांतरगमन का वर्णन है, पूर्वजों की वीरगाथात्मक कथाएं हैं, देवी–देवताओं की चमत्कारपूर्ण कहानियां हैं, वन्य–जीवन की रोमांचक कथाएं हैं तथा भूत–प्रेतों की जिज्ञासापरक कथाएं हैं। समय और परिस्थिति के अनुसार इन लोककथाओं में परिवर्तन–परिवर्द्धन भी होते रहते है।

लोकोक्तियां (नेपाली भाषा)

- नुहुनु मामा मंदा कानै मामा जाती। (ना मामा से काना मामा अच्छा)
- मूर्ख को धन रहदैन। (मूर्ख से धन दूर रहता है)
- मेहनत को फल मिठो हुन्छ। (मेहनत का फल मीठा होता है)
- एक हातले तालि बज्दैन। (एक हाथ से ताली नहीं बजती)
- नाच्न न जान्ने को आंगन टेडो। (नाच न जाने आंगन टेढ़ा)
- खाई नपाई, छाला को टोपी लगाई। (खाने को अन्न नहीं सपने बड़े–बड़े)
- बांदर को पुचछर, लौरो न हतियार। (किसी काम का नहीं)

3.3 पूर्वोत्तर लोक साहित्य का वर्गीकरण

पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. लोकगीत
2. लोकनृत्य
3. लोककथा

टिप्पणी

4. मिथक और

5. लोकोक्तियां अथवा कहावतें

1. लोकगीत

"लोकगीतों की ध्वनि में बालक सोए हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाया है, बैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है, बिरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।" (डॉ. श्याम परमार)। लोकगीत लोकजीवन की महत्वपूर्ण भावाभिव्यक्ति होते हैं। लोकगीतों में ग्राम्य जीवन का स्पंदन होता है, जनसामान्य की आत्मा की प्रतिध्वनि होती है तथा इनमें संपूर्ण जनपद अथवा गांवों के स्वर अंतर्निहित होते हैं। गीतों में ग्रामीण जनता की मसृण भावनाएं अंतःसलिला की भांति प्रवाहित होती हैं। पूर्वोत्तर भारत के सभी समुदायों में लोकगीतों की समृद्ध विरासत है। लोकगीत लयात्मक होते हैं और उनमें कल्पना व भावना की प्रधानता होती है। पूर्वोत्तर भारत के लोकगीतों को सामान्यतः निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) उपासना गीत

(ख) संस्कार गीत

(ग) श्रम गीत अथवा फसल गीत

(घ) प्रणय गीत

(च) युद्ध गीत

(छ) युवागृह संबंधी गीत

(ज) ऋतु संबंधी गीत

(झ) लोकगाथात्मक गीत

(ट) उत्सव गीत

(ठ) स्वागत गीत

(ड) मनोरंजन गीत

(ढ) लोरी गीत

2. लोकनृत्य

नृत्य मानव की प्राचीनतम भावाभिव्यक्ति है। गीत से भी पहले नृत्य का उद्भव हुआ था। "लोकनृत्य वस्तुतः प्राकृतिक नृत्य है। लोकजीवन में जहां भी भावुकता के क्षण आते हैं, वहीं उसके अनुकूल किसी–न–किसी प्रकार के नृत्य का रूप प्रकट होने लगता है। इन नृत्यों में कला तो स्वभावतः होती ही है, पर कलात्मक होने का चैतन्य नहीं होता। अतः आदिम और जंगली जातियों में यह नृत्य जितना सशक्त होता है, उतना अन्य जातियों में नहीं।" (हिंदी साहित्य कोश, भाग–1–धीरेन्द्र वर्मा, संपादक) पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों में अच्छी फसल, संततिवृद्धि, आरोग्यलाभ, भूत–प्रेत निवारण, जादू–टोना, ऋतु–आवाहन, जन्म–मृत्यु

टिप्पणी

संस्कार आदि के लिए नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं। नृत्य इस समाज के जीवन का अभिन्न अंग है। यह जीवन जीने की शैली है, सहज–सरल भावनाओं का प्रकटीकरण है तथा प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का कला–रूप है। मणिपुरी समाज में तो नृत्य को उपासना एवं ईश्वर प्राप्ति का साधन माना जाता है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों में युद्ध नृत्य एवं अंत्येष्टि संबंधी नृत्य की परंपरा भी विद्यमान है जो भारत में अन्यत्र नहीं है। इस क्षेत्र में मृत्यु भी एक उत्सव है तथा नृत्य शोक प्रकट करने का माध्यम। अनेक समुदायों में मुखौटा नृत्य की परंपरा है। नर्तकगण विभिन्न देवी–देवताओं एवं पशु–पक्षियों के मुखौटे पहनकर संपूर्ण ऊर्जा के साथ नृत्य करते हैं। नृत्य में बांस से बने वाद्ययंत्रों का व्यापक प्रयोग होता है। अधिकांश नृत्य सामूहिक होते हैं तथा इसमें महिला–पुरुष सभी सम्मिलित होते हैं। पूर्वोत्तर भारत के लोकनृत्य को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) त्योहार नृत्य

(ख) संस्कार संबंधी नृत्य

(ग) मनोरंजन नृत्य

(घ) मुखौटा नृत्य

(ङ) स्वागत नृत्य

(च) युद्ध नृत्य

(छ) नृत्य नाटिका

(ज) बांस नृत्य

(झ) पशु–पक्षियों के हाव–भाव पर आधारित नृत्य

3. लोककथा

"लोक कथा शब्द मोटे तौर पर लोक–प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता रहा है जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहे हैं।" (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी)

पूर्वोत्तर भारत की वाचिक परंपरा में असंख्य लोककथाएं विद्यमान हैं। इन लोककथाओं का क्षितिज बहुत विस्तृत है। पूर्वोत्तर भारत में असंख्य आदिवासी समूह हैं। सभी समुदायों में अपने देशांतरगमन, पूर्वजों, देवी–देवताओं और पशु–पक्षियों से संबंधित लोककथाएं प्रचलित हैं। इन कथाओं में जीवन के सभी पहलुओं का चित्रण है। रोचकता और जिज्ञासा–भाव इन कथाओं के प्रमुख गुण हैं। अलौकिक पत्थर, वृक्ष, नदी, जलप्रपात, वर्षा, जंगली जानवर इत्यादि से संबंधित कथाएं ज्ञानवर्द्धक होने के साथ–साथ मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने में समर्थ हैं। पूर्वोत्तर की लोककथाएं प्राकृतिक जीवन पर आधारित हैं। पशु–पक्षियों, भूत–प्रेतों, देवी–देवताओं के साथ–साथ जड़ वस्तुओं को भी इन कथाओं में नायक–नायिका बनाया गया हैं। यहां आत्मा का पृथक संसार है, स्वर्ग–नरक की परिकल्पना है, जंगली पशु–पक्षियों की प्रणय लीला है, धूर्त लोमड़ी, उदार हाथी, मायावी जंगल, दयालू बाघ, बुद्धिमान बंदर आदि की रोचक कथाएं हैं। पूर्वोत्तर की लोककथाओं को हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

टिप्पणी

(क) वन्य–प्राणियों से संबंधित लोककथाएं,

(ख) वन, वनस्पतियों और जड़ वस्तुओं से संबंधित लोककथाएं,

(ग) मानव से संबंधित लोककथाएं,

(घ) प्राकृतिक शक्तियों, यथाः आंधी, तूफान, अग्नि, वर्षा, सूर्य, चंद्रमा आदि से संबंधित लोककथाएं,

(ङ) देशांतरगमन, पूर्वजों एवं अतीत में घटित युद्ध संबंधी लोककथाएं,

(च) देवी–देवताओं, भूत–प्रेतों एवं ईश्वरीय प्रतीकों से संबंधित लोककथाएं और

(छ) सृष्टि एवं विभिन्न वस्तुओं की उत्पत्ति संबंधी लोककथाएं।

4. मिथक

"मिथक में एक अद्‌भुत प्रकार की विश्वसनीयता होती है। जिस जनसमूह में मिथक प्रचारित होता है उनके लिए वह इतिहास के समान ही पूर्ण सत्य होता है। मिथक में उस जाति या समूह की भावनाएं आस्था और विश्वास प्रतिबिंबित होते हैं जिनमें वह प्रचारित होता है।" (डॉ. पुष्पपाल सिंह)

मिथक की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत अत्यंत समृद्ध है। यहां की वाचिक परंपरा में हजारों मिथक विद्यमान हैं। संसार की प्रायः सभी वस्तुओं की उत्पत्ति के संबंध में कोई न कोई मिथक अवश्य है। इन मिथकों में आदिवासी समुदायों के पूर्वजों के आख्यान वर्णित हैं। मिथकों का विश्लेषण कर आदिवासी समुदायों के मूल निवास, देशांतरगमन, अतीत में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं आदि का पता लगाया जा सकता है। कुछ मिथक तो काल्पनिक हैं परंतु कुछ सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं। विभिन्न समुदायों के मिथकों में पर्याप्त भिन्नता है। सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में, विभिन्न समुदायों के मिथकों में पर्याप्त अंतर है। इसी प्रकार जल, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, आकाशगंगा, इंद्रधनुष, बंदर, भालू, पर्वत, वन आदि के उद्‌भव के संबंध में विभिन्न आदिवासी समूहों के मिथकों में बहुत भिन्नता है। सभी समुदायों में अच्छी और बुरी आत्माओं से संबंधित मिथक प्रचलित हैं।

5. लोकोक्तियां अथवा कहावतें

"लोक–कहावतों को यदि सामाजिक न्याय की चलती–फिरती अदालतें कहें तो भी अत्युक्ति नहीं। किसी बड़े से बड़े विवाद का कम से कम समय और शब्दों में अचूक निर्णय देने की इनमें अद्‌भुत क्षमता होती है। दलीलें और उपदेश भी जहां हार जाते हैं वहां कहावतें अपना रंग जमाती है। ये शिलाओं पर अंकित राज आज्ञाएं नहीं है वरन् मानव हृदय से उद्‌भूत भावनाओं के ऐसे पक्षी हैं जो एक ओंठ से दूसरे ओंठ पर उड़ते हुए शताब्दियों के ओर–छोर नापते आए हैं।" (रामनारायण उपाध्याय)

पूर्वोत्तर भारत के लोग बातचीत में नित्य लोकोक्तियों अथवा कहावतों का प्रयोग करते हैं। लोकोक्तियों से उनकी बातें प्रमाणपुष्ट होती हैं। शिक्षित समाज की अपेक्षा अशिक्षित व ग्रामीण समाज अपने दैनिक जीवन में कहावतों का अधिक प्रयोग करता है। "कहावतें पांडित्य के वे अंश हैं जो मानव सृष्टि के आदिम काल में अलिखित नैतिक कानून

का काम करती थीं।" (डिजरैली) कम शब्दों में अधिक भाव–राशि को समेटे ये लोकोक्तियां लोगों को दिशा दिखाती हैं, दुष्कर्म करने से रोकती हैं तथा जीवन के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करती हैं। इनमें पूर्वजों के ज्ञानानुभव निहित होते हैं। पूर्वोत्तर में प्रचलित लोकोक्तियों और भारत के अन्य क्षेत्रों की लोकोक्तियों में बहुत समानता है।

पूर्वोत्तर में प्रचलित कुछ कहावतें

- महिलाएं अफवाह फैलाती हैं।
- पाखंडी व्यक्ति एक ही बार किसी को मूर्ख बना सकता है।
- मानव भूल करता है।
- चरित्रहीन महिलाएं सब कुछ खो देती हैं।
- गरीब मनुष्य असहाय होता है।
- सोचकर बोलना चाहिए।
- मानव को सबकुछ नहीं मिलता।
- अफवाहों में सच्चाई नहीं होती।
- जान है तो जहान है।
- आशा का अंत नहीं।
- कांटे से कांटा निकालना।
- मां से अच्छा कोई नहीं।
- अपनी धुन का पक्का।
- जो जैसा करता है, वैसा पाता है।
- धन अंधा होता है।
- ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है।

3.4 पूर्वोत्तर के लोक साहित्य की विशेषताएं

पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी पर्वतशिखरों एवं सुदूर जंगलों में प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं जहां गीत गाते झरनों, बलखाती नदियों, वन्य–जीवों और नयनाभिराम पक्षियों का उन्मुक्त संसार है। यहां का जीवन सरल व स्वच्छंद है। यहां जीवन की आपाधापी नहीं, समय की व्यस्तता नहीं, कोई कोलाहल नहीं– तनावरहित जीवन, न्यूनतम आवश्यकताएं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं, भविष्य की कोई चिंता नहीं। इन परिस्थितियों में इनके उर्वर मस्तिष्क में कल्पना की ऊंची उड़ान उठती है। फलतः लोकगीतों, लोककथाओं, मिथकों, कहावतों, पहेलियों का सृजन होता है। लोक साहित्य की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत अत्यंत समृद्ध है। इस क्षेत्र की पुरानी पीढ़ी को लोक साहित्य का जीवंत भंडारगृह कहा जा सकता है। लोक साहित्य वाचिक परंपरा में पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। प्रायः सभी जनजातीय समुदायों में युवागृह पाए जाते हैं। ये युवागृह लोक साहित्य को संरक्षित करने एवं उसे आगे

बढ़ाने में महती भूमिका का निर्वाह करते हैं। दुर्भाग्यवश ये युवागृह भी आधुनिकीकरण के कारण अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

- पूर्वोत्तर भारत की आर्थिकी कृषि पर निर्भर है। अतः अधिकांश पर्व–त्योहार कृषि से संबंधित हैं। बीज बोने, फसल कटने के उपरांत अनेक पर्व–त्योहार मनाए जाते हैं। नृत्य–गीत इन त्योहारों के अभिन्न अंग हैं। त्योहारों के अवसर पर इष्ट देवों को प्रसन्न करने के लिए सामूहिक स्तर पर नृत्य–गीत प्रस्तुत किए जाते हैं। इसलिए इस अंचल में त्योहार से संबंधित गीतों, नृत्यों और आख्यानों की संख्या सर्वाधिक है।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र के आदिवासी समूहों के बीच प्राचीनकाल में परस्पर लड़ाई–झगड़े होते रहते थे। कभी–कभी ये झगड़े युद्ध का रूप धारण कर लेते थे और अनेक लोग मारे जाते थे। इसीलिए इस क्षेत्र के प्रायः सभी आदिवासी समुदायों में युद्ध नृत्य व युद्धगीत की परंपरा विद्यमान है। ये युद्धनृत्य एवं युद्धगीत वीर रसात्मक होते हैं तथा लोगों में शौर्य व पराक्रम का संचार करते हैं। गीतों में अतीत में घटित युद्ध के उल्लेखों के साथ–साथ समुदाय के पूर्वज योद्धाओं के वीरतापूर्ण आख्यान भी होते हैं।
- पूर्वोत्तर का समाज उत्सवधर्मी है। इस क्षेत्र के अनेक आदिवासी समूहों में मृत्यु को भी उत्सव की भांति समारोहपूर्वक मनाया जाता है। चावल निर्मित मदिरा पीकर सभी ग्रामवासी एवं अतिथि पूरी रात नृत्य करते हैं और गीत गाकर मृतक की आत्मा की शांति के लिए कामना करते हैं। इसलिए इस क्षेत्र में मृत्यु गीत व मृत्यु संबंधी नृत्य की उन्नत परंपरा है।
- पूर्वोत्तर के लोक साहित्य में पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं आदि का मानवीकरण किया गया है। यहां जड़ वस्तुएं भी मनुष्य की तरह बातें करती हैं, प्रणय निवेदन करती हैं तथा एक–दूसरे के सुख–दुख में सहभागी बनती हैं। पशु–पक्षी भी परस्पर विचार–विनिमय करते हैं तथा सुख–दुख में एक–दूसरे की सहायता करते हैं। पर्वत और वृक्ष भी मानव के सुख–दुख से हर्षित–रोमांचित होते हैं।
- इस अंचल के लोक साहित्य में वन, पर्वत, देवी–देवता, भूत–प्रेत, जादू–टोना, तंत्र–मंत्र, नदी, तालाब, वृक्ष इत्यादि से संबंधित आख्यानों, गीतों, कथाओं और पहेलियों का बाहुल्य है। दैवीय गुणों से युक्त वनस्पतियों, संवेदनशील भूत–प्रेतों और चमत्कारी नदियों–झरनों का उल्लेख इस क्षेत्र के लोक साहित्य में बार–बार मिलता है। इसका कारण है इस अंचल में सर्वाधिक सघन वनों की उपलब्धता और औषधीय पेड़–पौधों का बाहुल्य।
- इस अंचल के प्रणयगीतों में प्रेम की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती है। इनमें आत्मसमर्पण, आत्मोत्सर्ग एवं उदात्त प्रणय निवेदन है। प्रेमी–प्रेमिका एक–दूसरे के लिए जीने–मरने को तत्पर रहते हैं। प्रणय गीतों में प्रयुक्त उपमा और प्रतीक भी वनांचल से लिए गए हैं। जैसे, दो प्रेमी एक–दूसरे से वादा करते हैं कि मृत्यु के

टिप्पणी

बाद हम उन दो पंछियों अथवा दो वृक्षों की तरह पुनर्जन्म लेंगे जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता है; अलग हो रहे दो प्रेमी कहते हैं कि जैसे गाय अपने बछड़े को दूर जाते हुए देखती है उसी तरह हम देख रहे हैं।

- इस क्षेत्र की अधिकांश जनजातियों में मुखौटा नृत्य की परंपरा विद्यमान है। नर्तकगण विभिन्न पशु–पक्षियों तथा देवी–देवताओं के मुखौटे पहनकर संपूर्ण समर्पण के साथ नृत्य करते हैं। इस नृत्य के द्वारा संदेशों को संप्रेषित किया जाता है। विशेषकर बौद्ध धर्मावलंबी समुदायों में मुखौटा नृत्य की उन्नत शैली विद्यमान है जिसके माध्यम से बौद्ध धर्म से संबंधित संदेशों का संप्रेषण किया जाता है।
- पूर्वोत्तर के कुछ जनजातीय समाज में पशु–पक्षियों के हाव–भाव के आधार पर नृत्य किए जाते हैं। नर्तकगण भालू, मुर्गा आदि पशु–पक्षियों की तरह अंग–संचालन करते हैं तथा वैसी ही आकृति बनाकर अपना संदेश संप्रेषित करते हैं। मुर्गा नृत्य, भालू नृत्य, झींगुर नृत्य आदि नागालैंड में बहुत लोकप्रिय हैं।
- नृत्य पूर्वोत्तरी समाज के जीवन का अभिन्न अंग है। इसके द्वारा लोग अपने हर्ष–विषाद, उल्लास, उमंग आदि भावनाएं प्रकट करते हैं। पूर्वोत्तर के अनेक समुदायों में नृत्य को उपासना माना गया है। विशेषकर मणिपुरी समाज में नृत्य ईश्वर को प्राप्त करने का पवित्र साधन है।
- इस क्षेत्र के उपलब्ध गीतों में वीरगाथात्मक आख्यान, देशांतरगमन संबंधी घटनाएं, पूर्वजों की उपलब्धियां तथा आखेट संबंधी अनुभव वर्णित होते हैं। अधिकांश लोकगीत व लोककथाएं मिथकों पर आधारित हैं, कुछ ही लोकगीत–लोककथाएं ऐतिहासिक तथ्यों व अतीत की घटनाओं पर आधारित हैं। यहां उपलब्ध कहावतें एवं दंतकथाएं पूर्वजों द्वारा अर्जित अनुभव तथा अतीत की घटनाओं पर आधारित हैं।
- मिथक की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है। पूर्वोत्तर के सभी समुदायों में मिथकों की उन्नत परंपरा है। विभिन्न जनजातियों की मिथक संबंधी अवधारणाओं तथा लोकनायकों–लोकनायिकाओं की संकल्पनाओं में पर्याप्त भिन्नता है। संसार में विद्यमान सभी वस्तुओं की उत्पत्ति के संबंध में यहां मिथक विद्यमान हैं। सृष्टि, जल, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, पर्वत, नदी, भूकंप, आकाशगंगा, देवी–देवता, भूत–प्रेत की उत्पत्ति के संबंध में हजारों मिथक वाचिक परंपरा में विद्यमान है। इसी प्रकार सभी आदिवासी समुदायों में अपने देशांतरगमन, पूर्वजों तथा उनकी चमत्कारपूर्ण विशेषताओं से संबंधित मिथक उपलब्ध हैं। कुछ मिथकों में सूर्य और चंद्रमा को भाई–बहन माना गया है जबकि कुछ में पति–पत्नी माना गया है। अनेक मिथकों में दर्शाया गया है कि पहले आकाश और पृथ्वी अलग–अलग नहीं, बल्कि एक साथ थे। बाद में वे अलग हुए। पूर्वोत्तर के प्रायः सभी समुदायों के मिथकों में एक तथ्य समान है कि सृष्टि के आरंभ में सर्वत्र जल ही जल था, बाद में धरती की रचना हुई तथा सबसे अंत में ईश्वर ने मानव की रचना की।
- पूर्वोत्तर की लोककथाओं में विषय–वैविध्य है। यहां स्वर्ग–नरक की परिकल्पना है, आत्मा एवं भूत–प्रेतों का पृथक संसार है, दयावान दानव है, धूर्त लोमड़ी है, उदार

हाथी है, बुद्धिमान बंदर है, चमत्कारी जंगल है, चालाक भालू है, दो वृक्षों की प्रणय–लीला है, दो प्रेमियों का आत्मबलिदान है, दो मित्रों का अटूट संबंध है, दो भाइयों का परस्पर प्रेम है, पति–पत्नी के बीच मधुर संबंध है। ये कहानियां काल्पनिक होते हुए भी मानवीय व सामाजिक मूल्यों को प्रतिस्थापित करने में समर्थ हैं। शिकार संबंधी कथाएं भी पर्याप्त संख्या में मौजूद है।

- सामूहिकता–बोध पूर्वोत्तर की विशेषता है। किसी व्यक्ति का जीवन समुदाय से अलग नहीं होता है। यहां व्यष्टि नहीं, समष्टि महत्वपूर्ण है। इसीलिए पूर्वोत्तर भारत में गीत–नृत्य की प्रस्तुति सामुदायिक स्तर पर होती है। नृत्य–गीत में पूरा समुदाय भाग लेता है। इससे परस्पर भाईचारे की भावना को सुदृढ़ आधार मिलता है।
- धर्म पूर्वोत्तर क्षेत्र के लोगों के प्राण तत्व हैं। धार्मिक मान्यताएं कदम–कदम पर इनका पथ–प्रदर्शन करती हैं। अतः इष्ट देवताओं, ईश्वरीय प्रतीकों, भूत–प्रेतों आदि से संबंधित उपासना गीतों, संस्कार गीतों, संस्कार संबंधी नृत्यों की संख्या पर्याप्त है। इन नृत्य–गीतों में उत्साह, उत्तेजना, ऊर्जा के साथ–साथ संपूर्ण समर्पण होता है।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र में विद्यमान युवागृह लोक साहित्य को पल्लवित–पुष्पित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहां पर नई पीढ़ी गीत–नृत्य का प्रशिक्षण प्राप्त करती है और वाचिक परंपरा को आगे बढ़ाती है।

सैकड़ों आदिवासी समूहों का क्षेत्र पूर्वोत्तर अपनी विविधतापूर्ण संस्कृति के लिए विख्यात है। सरल जीवन और न्यूनतम आवश्यकताओं के कारण आदिवासी समाज के पास मनन, चिंतन, आत्मावलोकन, कल्पना, नृत्य, गीत, गपशप आदि के लिए भरपूर समय होता है। खाली समय में उनकी कल्पनाएं ऊंची उड़ान भरती हैं तथा उनके उर्वर मन–मस्तिष्क से कहानियों, कविताओं, कहावतों, पहेलियों की अविरल धारा फूट पड़ती है। हजारों की संख्या में कहानियां, गीत, मिथक वाचिक परंपरा में मौजूद हैं जिन्हें अभी तक लिपिबद्ध नहीं किया गया है। दो–चार को छोड़कर पूर्वोत्तर की अधिकांश भाषाओं के पास अपनी लिपि नहीं है। लिपिहीनता इस क्षेत्र के लोक साहित्य के संरक्षण–संकलन–प्रकाशन में सबसे बड़ी बाधा है। अतः आवश्यक है कि नागरी लिपि में पूर्वोत्तर के लोक साहित्य के संकलन–प्रकाशन के लिए भगीरथ प्रयास किए जाएं अन्यथा काल–प्रवाह में साहित्य के इस रोचक विशाल भंडार का क्षरण हो जाएगा तथा हमारा समाज इस समृद्ध विरासत से वंचित हो जाएगा।

3.5 पूर्वोत्तर में प्रचलित कुछ कथाएं एवं मिथक

एक दुखांत नागा प्रेम कहानी

लियङमई नागा जेलियाङरोङ नागा की एक उपजाति है। इस समुदाय के लोग नागालैंड, असम और मणिपुर तीन प्रदेशों में निवास करते हैं। लियङमई नागा की यह प्रेम कहानी बहुत लोकप्रिय है–

एक गांव में दो युवा प्रेमी रहते थे। वे विगत सात वर्षों से एक–दूसरे से प्रेम करते थे परंतु उनका प्रेम व्यर्थ रहा क्योंकि दोनों के माता–पिता उनकी मंगनी के लिए राजी नहीं

टिप्पणी

थे। हताश होकर दोनों ने आत्महत्या करने का फैसला कर लिया। युवक ने कहा– "यदि साथ–साथ जीवन व्यतीत नहीं कर सकते तो मर अवश्य सकते हैं। चलो, नदी में कूदकर अपनी जीवन–लीला समाप्त कर लें तथा वादा करें कि पुनः हम उन दो पक्षियों या वृक्षों की भांति जन्म लेंगे जिन्हें अलग नहीं किया जा सके।" लड़की अपने प्रेमी के प्रति पूर्णतः समर्पित थी, अतः वह बेहिचक इस प्रस्ताव से सहमत हो गई। दोनों नदी में कूद गए। लड़की डूब गई परंतु ठंढ़े जल के स्पर्श से लड़के को ऐसा लगा जैसे वह स्वप्न से जाग उठा हो। उसने महसूस किया कि वास्तव में वह मरना ही नहीं चाहता है। अच्छा तैराक होने के कारण वह नदी तैरकर बाहर आ गया एवं लड़की को नदी में छोड़ दिया। जब वह बाहर आया तो एक चिड़िया निरंतर उसका पीछा करने लगी। चिड़िया चिल्ला रही थीं– देखो, वह नायक जा रहा है जो मरने से इतना भयाक्रांत है। चिड़िया की आवाज लगातार उसका पीछा कर रही थी। युवक का अपराध–बोध उसे बेचैन करने लगा। उसने महसूस किया कि मेरी प्रेयसी बहुत बहादुर थी, उसने वीरतापूर्वक मौत को गले लगा लिया और मैं कैसा कायर हूं कि उसे नदी में छोड़कर बाहर आ गया। पक्षी का कथन सत्य है कि मैं अपनी मौत से डर गया था। युवक उसी नदी में जाकर कूद गया और मौत को गले लगा लिया परंतु इस बार प्रेमी–प्रेमिका के बीच का फासला और अधिक बढ़ गया था। वे मृत्यु के उपरांत भी मिलन–सुख से वंचित रह गए क्योंकि युवक ने नदी के दूसरे किनारे से छलांग लगाई थी तथा दोनों की मृत्यु के बीच समय का भी फासला था।

दोनों प्रेमी अनादिकाल से नदी के अलग–अलग तटों पर बांस के अकेले वृक्ष की तरह रह रहे हैं तथा ग्रामवासी उन अभिशप्त पेड़ों के स्पर्श मात्र से डरते हैं।

–श्रीमती सुजाता मीरी : लियङमई नागाज लिजेंड्स एंड स्टोरीज

खासी मिथक

पृथ्वी की उत्पत्ति

जब पृथ्वी की रचना हुई तो वह एकदम समतल थी, उसपर घना जंगल था, नदियां थीं। एक दिन 'का दिङ', 'का उम' एवं 'का सङी' नामक तीन देवियों की मां का निधन हो गया। ये तीन देवियां थीं– अग्नि, जल तथा सूर्य। अपनी मां के शव का अंतिम संस्कार करना तथा शव को दफन करने के लिए कोई उपाय करना पुत्रियों के लिए आवश्यक था। यह निर्णय हुआ कि सबसे छोटी होने के कारण 'का सङी' (अग्नि) माता की अंत्येष्टि करें तथा शव को दफनाने का प्रयत्न करें। 'का सङी' ने अपने संपूर्ण बल का प्रयोग करते हुए शव पर भरपूर उष्मा डाली परंतु शव का क्षय नहीं हो सका। गर्मी के कारण नदियां सूख गईं तथा वन के पेड़–पौधे झुलस गए। 'का सङी' ने वापस आकर बहनों से कहा– "मैंने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया परंतु मां का शव ज्यों का त्यों अभी तक पड़ा हुआ है।"

इसके बाद दूसरी बहन 'का उम' (जल) ने अंत्येष्टि का दायित्व ग्रहण किया। उसने बादलों के सहयोग से धरती पर इतनी जलवृष्टि कराई कि नदियों में बाढ़ आ गई परंतु मां के शव का क्षय नहीं हो सका। हताश होकर 'का उम' बहनों के पास लौट आई तथा कहा– "मैंने अपने संपूर्ण बल का प्रयोग किया परंतु मां का शव हमारे सामने धरती पर ज्यों का त्यों पड़ा है।"

टिप्पणी

अंततः बड़ी बहन 'का दिङ' (सूर्य) ने अंतिम संस्कार करने का बीड़ा उठाया। उसने ऐसी ज्वाला प्रज्वलित की जिसके कारण जंगल साफ हो गए, पृथ्वी जल उठी और उसके अनेक टुकड़े हो गए, विशाल समतल मैदान की रूपरेखा समाप्त हो गई। माता का शव इसमें विलीन हो गया। इसके उपरांत धरती पर पर्वतों एवं घाटियों का सृजन हुआ तथा धरती और अधिक सुंदर हो गई। कालांतराल में इसपर निवास करने के लिए स्वर्ग से मानव आ गए।

–श्रीमती रेफी : खासी फोक टेल्स

गारो मिथक

प्राचीनकाल में हाथी के पास सूंड़ नहीं थी, अन्य जानवरों की तरह उसके पास भी मुंह एवं पूंछ थे। एक बार एक हाथी पानी पीने के लिए नदी में गया तथा पानी पीने लगा। अचानक एक घड़ियाल जल से निकला, उसने हाथी के मुंह में काट लिया तथा हाथी को पकड़कर जल के अंदर खींचने लगा। हाथी ने जल से बाहर निकलने की भरपूर चेष्टा की परंतु घड़ियाल को ऊपर खींचने में विफल रहा।

दोनों ने एक–दूसरे को अपनी ओर खींचने के लिए अथक प्रयास किए पर असफल रहे। वे दोनों दिनभर एक–दूसरे को विपरीत दिशा में खींचते रहे। परिणामतः उनके मुंह लंबे होते चले गए, परंतु वे एक–दूसरे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। बाद में हाथी ने सख्त मिट्टी को पकड़कर पूरा जोर लगाया और घड़ियाल से मुक्त हो गया, परंतु उसका मुंह स्थायी रूप से लंबा हो गया।

–संपादक : कारोलीन मराक– गारो लिटरेचर

नागा दंतकथा

यह जानकर कि कालांतराल में मानव साथ नहीं रहेंगे, ईश्वर ने विभिन्न वस्तुओं, जैसे– पत्थर, पत्ते आदि पर विभिन्न प्रकार के अक्षर (संदेश) अंकित कर दिए। दुर्भाग्यवश ईश्वर ने नागा लोगों के लिए गाय के चमड़े पर अक्षर (संदेश) लिखा जिसे कुत्ता खा गया। परिणामस्वरूप नागा समुदाय ईश्वर के संदेश से वंचित रह गया। इसलिए नागा लोग कुत्ते को दंड देना औचित्यपूर्ण समझते हैं। दंडस्वरूप नागा लोग कुत्ते को दास बनाकर उससे अपने घर की रखवाली करवाते हैं तथा जब आवश्यकता होती है तो उसे मारकर उसका मांस भी खाते हैं।

–सुजाता मीरी : लियङमई नागाज लिजेंड्स एंड स्टोरीज

एक नागा प्रेम गीत (हिंदी अनुवाद)

मैं इस सुंदर पृथ्वी पर अनेक वर्षों तक रहना चाहता था, परंतु ईश्वर को यह मंजूर नहीं था। मैं इतना अमीर नहीं था कि वधू–मूल्य का भुगतान कर अपनी प्रेयसी को पत्नी बना सकूं। इसलिए मेरी प्रेयसी ने एक अजनबी से विवाह कर लिया। उसका पति उसे इतनी दूर ले जाएगा जहां तक मैं पहुंच भी नहीं सकता। अब मेरी विवशता देखिए, मैंने परंपरा के अनुसार अपनी प्रेमिका को गांव की सीमा–रेखा तक जाकर विदा किया। मेरी आंखें नम थीं और

हृदय आंदोलित था। जब 'नाउमङबो' (एक रिवाज जिसमें शादी के बाद कन्या अपने पति के साथ अपने परिवार से मिलने आती है) के समय तुम गांव आई तो मुझसे मिलने के लिए भी तुम्हारे पास वक्त नहीं था। तुमको मालूम था कि मुझे तुम्हारी आवश्यकता है, फिर भी तुम मिलने नहीं आई। मुझे मालूम है, तुम हमेशा वही करोगी जो तुम्हारे लिए उचित होगा। तुम प्रेम की आवाज को नहीं सुनोगी। मैं अब भी उस स्थल पर जाता हूं जहां हम मिले थे तो मेरी आंखें आंसुओं से भींग जाती हैं, हृदय तड़प उठता है। मैं मानव हूं, अमर नहीं हूं, अतः पृथ्वी पर पुनः वापस नहीं आ सकता, लेकिन मैं तुम्हारी कुशलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता रहूंगा। जिस पथ पर तुमने अपने कोमल कदम रखे थे, वहां अभी भी तुम्हारे सौंदर्य के अमिट निशान बिखरे पड़े हैं। मैं तुमसे सच्चा प्रेम करता हूं, इसलिए तुम्हारे परिवार के सदस्यों को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। मैं मात्र यह उदास गीत गा सकता हूं जब तक मर न जाऊं। मैं हमेशा तुम्हारे सुखद समाचार की प्रतीक्षा करूंगा परंतु तुम्हारी ससुराल में कदम भी नहीं रखूंगा।

एक दुखांत कथा (हालम समुदाय, त्रिपुरा)

एक दंपति के दो बच्चे थे– एक पुत्र और एक पुत्री। लड़की बड़ी थी और लड़का छोटा। प्रतिदिन दंपति खेतों में काम करने जाते थे और लड़की अपने भाई की देखभाल करती थी, खाना बनाती थी तथा घर के छोटे–मोटे कार्य करती थी। एक दिन मां पुत्री को खाना बनाने के लिए आवश्यक निर्देश देना भूल गई। जब वह कुछ दूर चली गई तो बेटी ने मां से खाना बनाने के बारे में पूछा। मां ने 'दङते' की सब्जी बनाने का निर्देश दिया। मां का जवाब स्पष्ट नहीं था क्योंकि वह दूर से बोल रही थी। पुत्री ठीक से समझ नहीं पाई। उसे गलतफहमी हो गई कि मां ने कहा है कि भाई का मांस बना दो। तदनुसार, उसने भाई को मार दिया, उसके शरीर के टुकड़े किए तथा उसका मांस पका दिया। माता–पिता जब घर आए तो इस दुखद घटना को सुनकर अत्यंत शोकाकुल, दुखी और क्रोधित हुए। लड़की की छड़ी से खूब पिटाई की गई, उसका खाना बंद कर दिया गया तथा एक टोकरी में उसको डालकर टोकरी का मुख बंद कर दिया गया। टोकरी को घर के बरामदे में डाल दिया गया। दूसरे दिन हमेशा की तरह, माता–पिता खेत में काम करने चले गए।

एक दिन एक बड़ी 'नोआइ' पक्षी उड़ रही थी। लड़की ने उससे कुछ पंख देने का अनुरोध किया। पक्षी को उस पर दया आ गई और उसने अपने कुछ पंख तोड़कर टोकरी के निकट डाल दिए। लड़की के अनुरोध करने पर गांव के बच्चों ने टोकरी का ढक्कन खोल दिया और उसके शरीर में पंख लगा दिए। इसके उपरांत लड़की हमेशा के लिए उड़ गई।

–श्री जगदीश गन चौधुरी : त्रिपुरा, द लैंड एंड इट्स पिपल (1980)

लुशाई लोककथा

भालू, बाघ और बंदर

एक दिन एक भालू निर्मल जल से भरे जलाशय के निकट आया। वह निर्मल जल को देखकर इतना हर्षित हुआ कि उसने उस जल को अपने लिए संरक्षित कर रख लेने का

निश्चय कर लिया। उसने जलाशय की देखभाल के लिए एक बंदर को नियुक्त किया। इसके बाद वह भोजन की तलाश में जंगल में चला गया। उसके जाने के उपरांत एक हिरन आया। हिरन ने बंदर से कहा– "कृपया मुझे जल पीने दो।" बंदर ने उत्तर दिया "यह भालू अब्बा का जलाशय है। यदि तुममें इतना दुस्साहस है कि तुम उनके जलाशय से पानी पी सकते हो तो पी लो।" हिरन यह सुनकर भयाक्रांत हो गया और वहां से खिसक गया। कुछ देर बाद एक भालू आया तथा उसने जल पीने की अनुमति मांगी, परंतु जब उसने बंदर का उत्तर सुना तो वह बिना समय गंवाए भाग खड़ा हुआ। अंत में एक बाघ आया और उसने पूछा कि क्या वह पानी पी सकता है। बंदर ने वही जवाब दिया जो उसने औरों को दिया था। बाघ अपनी प्रकृति के अनुरूप निर्भयतापूर्वक जल पीने लगा, तभी भालू अब्बा खाना लेकर वापस आ गए। वह बाघ को दिव्य पानी पीते देखकर अत्यंत क्रोधित हुआ। उसने बाघ को दंडित करने की ठान ली। दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ। दोनों जी–जान से लड़े पर एक–दूसरे को मार नहीं पाए। लंबे युद्ध के उपरांत दोनों एक ऊंची चोटी पर पहुंचे और वहां से लुढ़क गए। दोनों की तत्क्षण मृत्यु हो गई। लड़ाई में वे सबकुछ गंवा बैठे जबकि बंदर पानी पीकर तथा भालू द्वारा लाए भोजन खाकर तृप्त हो गया।

(श्री एस. बरकाटकी– ट्राइब्स ऑफ असम)

खासी लोककथा

कुत्ता और मनुष्य के सह–निवास की कथा

प्राचीनकाल में सभी प्राणी आनंदपूर्वक एक साथ रहते थे। वे एक साथ खरीद–बिक्री करते थे तथा हाट का निर्माण भी संयुक्त रूप से करते थे। 'लुरी–लुरा' मोई क्षेत्र का सबसे बड़ा बाजार था जहां पर सभी जानवर अपने सामानों के बेचने के लिए आते थे। उसी हाट में कुत्ता भी अपना सड़ा–गला मटर बेंचने के लिए लाता था। कोई भी प्राणी उसका दुर्गंधयुक्त माल नहीं खरीदता था। जब कोई जानवर उसकी दुकान के सामने से गुजरता तब वह आवाज लगाता था कि मेरा सामान ले लो। उसके सड़े–गले व दुर्गंधयुक्त सामान का कोई खरीदार नहीं था। एक दिन सभी जानवर कुत्ते की दुकान के सामने एकत्रित हुए और कहा "तुम सड़े–गले, गंदे और बदबूयुक्त सामान बेचने के लिए क्यों लाते हो।" सभी जानवरों ने उसके सामान को नीचे गिरा दिया और अपने पैरों से कुचल डाला। इसके उपरांत कुत्ते ने जानवरों के प्रधान तथा बाघ से इसकी शिकायत की, परंतु जानवरों के प्रधान ने कुत्ते की निंदा करते हुए कहा "तुम बाजार में गंदे सामान बेचने के लिए लाते हो, इसलिए तुमको जुर्माना देना होगा।" जब कुत्ते ने देखा कि कोई भी जानवर उसकी शिकायत पर ध्यान नहीं दे रहा है तब अंततः वह मनुष्य के पास गया। मानव ने कहा "आओ, तुम मेरे साथ रहो, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। हमलोग उन सभी जानवरों से प्रतिशोध लेंगे जिन्होंने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है।" कुत्ता सहमत हो गया और उस समय से वह मानव के साथ रहने लगा। तब मनुष्य कुत्ते की सहायता से शिकार करने लगा। कुत्ता सभी जानवरों के पदचिह्नों को अच्छी तरह पहचानता है क्योंकि जानवरों के पैरों की गंध से उसे मालूम हो जाता है जिन्होंने अपने पैरों से उसके सड़े–गले मटर को रौंद डाला था। (मेजर पी. आर. टी. गुर्डन– द खासीज)

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. हुसरी, ढुलिया और भावरिया किस प्रदेश का लोकनृत्य है?
2. भगवान 'गरिया' की पूजा किस प्रदेश में की जाती है?
3. मैतेई किस राज्य में बोली जाती है?
4. .... में द्विअर्थी शब्दों द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन किया जाता है।
5. .... को देवताओं की रंगशाला कहा जाता है।
6. 'मिजो' का शाब्दिक अर्थ .... है।
7. 'बाव ह्ला' किस प्रदेश का लोकगीत है।
8. खासी, जयंतिया और गारो आदिवासी समुदाय के लोग किस प्रदेश में रहते हैं?
9. नेपाली, भूटिया, लेप्चा और लिंबू किस प्रदेश की भाषाएं हैं?
10. नृत्य मानव की प्राचीनतम .... है।

गतिविधि

अपने मित्रों के साथ मिलकर मनपसंद लोकगीत का समूह गायन कीजिए और अपने क्षेत्र में प्रस्तुति दीजिए।

क्या आप जानते हैं?

भारत सरकार ने विभिन्न राज्यों को पारंपरिक लोक कलाओं और संस्कृति को संवर्धित, संरक्षित और प्रसारित करने हेतु सात क्षेत्रीय केंद्र स्थापित किये हैं इनमें से एक पूर्वी क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र है।

3.6 सारांश

इस इकाई में पूर्वोत्तर के लोक साहित्य के बारे में आपने पढ़ा कि

पूर्वोत्तर क्षेत्र भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला है। श्रीमंत शंकरदेव ने पूर्वोत्तर भारत में एक मौन अहिंसक सांस्कृतिक क्रांति का सूत्रपात किया। बिहु, ढुलिया, भावरिया आदि असम के लोकनृत्य हैं। त्रिपुरा के लोकगीतों में प्रदेश का प्रमुख सांस्कृतिक वैभव प्रतिबिंबित होता है। गीत–संगीत नागा समाज के लिए हवा पानी और श्वास के समान है। मणिपुर को देवताओं की रंगशाला कहा है।

मणिपुरी समाज में नृत्य भी एक उपासना और ईश्वर प्राप्ति का माध्यम है। मिजोरम में 100 प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं। जिन्हें मोटे तौर पर दस वर्गों में विभक्त किया गया है। युद्ध नृत्य पूर्वोत्तर भारत के अधिकांश समुदायों में प्रचलित है। पूर्वोत्तर के कुछ समुदायों में अंत्येष्टि उत्सव भी अत्यंत लोकप्रिय है। सिक्किम सम्राटों व वीर योद्धाओं और कथा–कहानियों की भूमि के रूप में विख्यात है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **भाओना** : नृत्य नाटिका।
- **ओजापालि** : कोरस नृत्य।
- **गरिया पूजा** : त्रिपुरा में अच्छी फसल की कामना के लिए की जाने वाली पूजा।
- **लाई हराओबा** : सृष्टि की उत्पत्ति की अवधारणा पर आधारित लोक नृत्य।
- **थियम हला** : जादू–टोना करने वाले व्यक्तियों द्वारा गाया जाने वाला गीत।
- **'जु'** : मिजोरम में चावल से बनाई जाने वाली मदिरा।
- **बांस नृत्य** : मिजोरम राज्य का प्रसिद्ध नृत्य (बैम्बू डांस)।
- **युवागृह** : आदिवासी क्षेत्रों में प्रारंभिक शिक्षा केंद्र।

टिप्पणी

- **युद्ध नृत्य** : नृत्य की मुद्राओं के साथ युद्ध।
- **मुखौटा नृत्य** : चेहरे पर मुखौटे लगाकर किंया जाने नृत्य।

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. असम
2. त्रिपुरा
3. मणिपुर
4. लाई हराओबा
5. मणिपुर
6. पर्वतवासी
7. मिजोरम
8. मेघालय
9. सिक्किम
10. भावाभिव्यक्ति

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. ओजापालि क्या है?
2. होजागिरि किस समुदाय का नृत्य है?
3. मैतेई (मणिपुरी) भाषा की लिपि क्या है?
4. मणिपुर में कितने प्रकार की रासलीलाएं प्रचलित हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
2. लोकनृत्य क्या है? पूर्वोत्तर में कितने प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं? संक्षेप में वर्णन करें।
3. नागालैंड में मुख्य रूप से कितने प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं? नागालैंड में प्रचलित लोकगीतों पर संक्षेप में प्रकाश डालें।
4. लोकगीत की दृष्टि से मिजोरम बहुत समृद्ध है। यहां मुख्य रूप से कितने प्रकार के लोकगीत प्रचलित हैं।
5. पूर्वोत्तर भारत में प्रचलित कथाओं एवं मिथकों में वर्णित लोकजीवन की विवेचना कीजिए।

3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

टिप्पणी

1. श्री रामनारायण उपाध्याय, *समग्र लोक साहित्य।*
2. श्री बिरेन्द्र नाथ दत्ता (संपादक), *फोकस ऑन फोकलोर ऑफ नॉर्थ ईस्ट इंडिया।*
3. श्री ई. नीलाकांत सिंह, *मणिपुरी डांस।*
4. प्रो. भूपेन्द्र नारायण चौधरी, *असमिया लोक साहित्य की भूमिका।*
5. डॉ. सत्येन्द्र, *हिंदी का लोक साहित्य।*
6. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, *लोक साहित्य की भूमिका।*
7. मेजर पी. आर. टी. गुर्डन, *द खासीज।*

इकाई 4 पूर्वोत्तर का लोक साहित्य : अरुणाचल

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 अरुणाचल का लोक जीवन
4.3 अरुणाचली लोक साहित्य के विविध रूप
- 4.3.1 लोकगीत
- 4.3.2 लोकनृत्य
- 4.3.3 लोककथा
- 4.3.4 मिथक
- 4.3.5 लोकोक्तियां अथवा कहावतें

4.4 अरुणाचल के लोक साहित्य का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य
4.5 सारांश
4.6 मुख्य शब्दावली
4.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

अरुणाचल की वाचिक परंपरा में लोक साहित्य का समृद्ध भंडार सुरक्षित है। इस इकाई में लोक साहित्य के विभिन्न रूपों की विवेचना की गई है। प्रदेश के विभिन्न आदिवासी समुदायों में प्रचलित लोकगीतों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है, साथ ही कुछ गीतों के पद्यानुवाद भी दिए गए हैं। इसी प्रकार विभिन्न आदिवासी समूहों में प्रचलित सांस्कारिक नृत्य, त्योहार नृत्य, मुखौटा नृत्य, मनोरंजन नृत्य, युद्ध नृत्य, नृत्य नाटिका इत्यादि का विवेचन किया गया है। प्रदेश के विभिन्न समुदायों में प्रचलित लोककथाओं, मिथकों और लोकोक्तियों की विवेचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस इकाई में अरुणाचल के लोक साहित्य के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य का भी आकलन किया गया है। इस इकाई में अरुणाचल प्रदेश के लोक जीवन की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला गया है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अरुणाचल के लोक जीवन से परिचित हो सकेंगे;
- इस प्रदेश की वाचिक परंपरा में विद्यमान लोक साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- प्रदेश के लोकगीतों, लोककथाओं, लोकोक्तियों, मिथकों और लोक नृत्यों के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- प्रदेश के लोक साहित्य के सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को रेखांकित करने में समर्थ होंगे।

टिप्पणी

4.2 अरुणाचल का लोक जीवन

भारत के सुदूर उत्तर–पूर्व में स्थित अरुणाचल प्रदेश अपने नैसर्गिक सौंदर्य, बहुरंगी संस्कृति, वनाच्छादित पर्वतमालाओं, बहुजातीय समाज, समृद्ध विरासत, भाषायी वैविध्य एवं नयनाभिराम वन्य–प्राणियों के कारण देश में विशिष्ट स्थान रखता है। अनेक नदियों, झरनों एवं जलप्रपातों से अभिसिंचित अरुणाचल की सुरम्य भूमि पर भगवान भास्कर सर्वप्रथम अपनी रश्मि विकीर्ण करते हैं। इसलिए इसे उगते हुए सूर्य की भूमि का अभिधान दिया गया है। यहां पच्चीस प्रमुख आदिवासी समूह निवास करते हैं और यदि उनकी उपजातियों की गणना की जाए तो यह संख्या सौ से भी अधिक हो जाती है। इन आदिवासी समूहों के रीति–रिवाज, संस्कृति, परंपरा, भाषा, पर्व–उत्सव में पर्याप्त भिन्नता है। इनके आनुष्ठानिक विधि–निषेधों में भी बहुत अंतर है। इनकी भाषाओं में तो इतनी भिन्नता है कि एक समुदाय की भाषा दूसरे समुदायों के लिए असंप्रेषणीय है। एक आदिवासी समूह की उपजातियों की भाषाओं में भी भिन्नता है परंतु प्रकारांतर से संपूर्ण अरुणाचली समाज प्रकृति पूजक अथवा ब्रह्मवादी है। विकास के कथित मानकों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रदेशवासी पिछड़े व अविकसित हैं, परंतु इनके पास कुछ ऐसी अनोखी विशेषताएं हैं जो तथाकथित सभ्य एवं सुसंस्कृत समाजों के लिए भी अनुकरणीय तथा वरेण्य हैं, जैसे– सामूहिक कल्याण की भावना, समष्टि केंद्रित उत्सवों का आयोजन, अपनी संस्कृति, भाषा, परंपरा आदि को अक्षुण्ण रखने की प्रतिबद्धता, एकता, शांतिप्रियता तथा आडंबरहीन निर्दोष सरल जीवन। इस प्रदेश में लगभग 83 भाषाएं/बोलियां विद्यमान हैं जिनमें से अनुसंधान द्वारा 50 भाषाओं की पुष्टि हो चुकी है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रदेश कितना वैविध्यपूर्ण है। कुछ बौद्ध धर्मावलंबी जनजातियों को छोड़कर इन भाषाओं के पास अपनी कोई लिपि नहीं है। डॉ. ग्रियर्सन ने अरुणाचल की भाषाओं को तिब्बती–बर्मी परिवार का उत्तरी असमी वर्ग माना है।

अरुणाचल में निम्नलिखित प्रमुख आदिवासी समूह निवास करते हैं–

1. आदी
2. निशिंग
3. आपातानी
4. मीजी
5. नोक्ते
6. वांचो
7. शेरदुक्पेन
8. तांग्सा
9. तागिन
10. हिल मीरी
11. मोम्पा

टिप्पणी

12. सिंहफो
13. खाम्ती
14. मिश्मी
15. आका
16. खंबा
17. खोवा अथवा बुगुन
18. लिसू (योबीन)
19. मिसिंग
20. मिकिर
21. मेंबा
22. सुलुंग
23. देवरी

अरुणाचली जनजातियों का प्राचीन भारतीय संस्कृति से गहरा संबंध है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पूर्वी हिमालय क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को 'किरात' की संज्ञा दी गई है। सर्वप्रथम यजुर्वेद में किरात का वर्णन मिलता है। इसके उपरांत अथर्ववेद, रामायण एवं महाभारत में भी उन मंगोल मूल की भारतीय जनजातियों की चर्चा मिलती है जो भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र की पर्वतघाटियों एवं कंदराओं में निवास करती है। "किरातों का मूल–अभिजन पूर्वी चीन में था। वहीं से लोग तिब्बत, नेपाल, बर्मा, असम, उत्तरी बंगाल और उत्तरी बिहार में आए। भारत में किरातों का आगमन कब हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यजुर्वेद और अथर्ववेद में किरातों का उल्लेख है। उस समय के अन्य प्रमाणों से भी यह अनुमान निकलता है कि किरात ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व भारत पहुंच गए थे और वे हिमालय की तराई तथा पूर्वी भारत में आबाद थे। नेपाल के नेवार और किरंती लोग, कश्मीर के लद्दाखी, दार्जिलिंग के लेपचा, त्रिपुरा और मणिपुर के क्षत्रिय, उत्तर असम के अक्का, मीरी, अबोर और मिश्मी लोग किरात वंश के हैं।" (डॉ. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय) मालिनीथान, भीष्मकनगर, परशुराम कुंड, ताम्रेश्वरी मंदिर आदि के ध्वंसावशेष इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं कि अरुणाचली जनजातियों का प्राचीन भारतीय संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है।

अरुणाचलवासियों का प्रकृति से रागात्मक संबंध है। इनका जीवन वनों पर आश्रित है। वन इनके लिए सब कुछ हैं। वन के साथ प्रदेशवासियों का ऐसा तादात्म्य है कि इससे अलग कर इनके जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जंगल इन्हें भोजन, जलावन की लकड़ियां, भवन निर्माण सामग्री, फल, फूल, मांस, मछली, मधु, औषधीय जड़ी–बूटियां सब कुछ देता है। इसलिए यहां के निवासी वन के प्रति पूजा–भाव रखते हैं और समय–अवसरों के अनुरूप अपनी श्रद्धा निवेदित करते हैं।

अरुणाचल एक कृषि प्रधान राज्य है। यहां की अधिकांश आबादी कृषि पर आश्रित है। कृषि प्रदेशवासियों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में प्रभावकारी भूमिका निभाती है।

प्रदेश के अधिकांश पर्व–त्योहार और सामाजिक उत्सव कृषि से संबंधित हैं। यहां झूम विधि से खेती की जाती है, समतल भूमि पर स्थायी खेती भी की जाती है। झूम खेती पर्यावरण के अनुकूल नहीं है, इसलिए राज्य सरकार झूम कृषि को हतोत्साहित करने एवं स्थायी खेती को बढ़ावा देने का प्रयास कर रही है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले प्रदेश के विकास में पशुपालन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रदेश की सभी जनजातियां पशुपालन करती हैं। मिथुन प्रदेश का सबसे मूल्यवान पशु है। पहले वस्तु विनिमय प्रणाली के लिए मिथुन का उपयोग होता था। विवाह के समय वधू–मूल्य का भुगतान करने और त्योहारों में बलि देने के लिए अब भी मिथुन का उपयोग होता है।

लोसर (मोम्पा), न्योकुम (निशिंग), बूरी–बूत (हिल मीरी), द्री (आपातानी), सि–दोन्यी (तागिन), मोपीन, सोलुंग और अरान (आदी), संकेन (खाम्ती), रेह (ईदु मिश्मी) इत्यादि अरुणाचल के प्रमुख पर्व–त्योहार हैं।

अरुणाचली समाज में विवाह की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं। प्रदेश की जनजातियों की विवाह पद्धतियों में न्यूनाधिक अंतर पाया जाता है लेकिन कुछ बातें सभी जनजातियों में समान है। विवाह पारंपरिक विधि से एवं समाज के बुजुर्गों की देख–रेख में संपन्न होता है। विवाह को सामाजिक स्वीकृति मिलना परम आवश्यक है। प्रेम विवाह भी सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होने के उपरांत ही वैध समझा जाता है। अधिकांश जनजातियों में वधू–मूल्य के भुगतान की परंपरा है। गाय, मिथुन, सूअर, अलंकार इत्यादि के रूप में वधू–मूल्य अदा किए जाते हैं। कुछ जनजातियों को छोड़कर सभी जनजातियों में बहुपत्नी विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। युवक–युवतियों को अपनी पसंद के अनुसार अपना जीवन साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता है। प्रायः सभी जनजातियों में वर्ग के भीतर परंतु गोत्र के बाहर विवाह करने का रिवाज है। समगोत्रीय विवाह प्रतिबंधित है। यहां विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार है। धर्म की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश को चार प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– प्रकृतिवाद अथवा ब्रह्मवाद, बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म तथा ईसाई धर्म।

इस प्रदेश में प्रकृतिवादियों या ब्रह्मवादियों की संख्या सर्वाधिक है। ब्रह्मवाद सभी धर्मों का मूलाधार और सभी धर्मों से प्राचीन है। प्रत्येक समाज आरंभ में ब्रह्मवादी होता है। अन्य जितने धर्म हैं वे ब्रह्मवाद से ही उद्‌भूत हुए हैं। अरुणाचली जनजातियां ब्रह्मवाद अथवा प्रकृति पूजन में विश्वास करती हैं। इन प्राकृतिक शक्तियों को भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है। निशिंग लोग 'अन्ने–दोन्यी' (माता सूर्य) में आस्था रखते हैं, हिल मीरी लोग 'सि–दोन्यी (पृथ्वी–आकाश) के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हैं, तागिन एवं आदी लोग 'दोन्यी–पोलो' में निष्ठा रखते हैं, नोक्ते समुदाय के लोग 'जोङबन' या 'ते सोंग' में विश्वास करते हैं, सिंहफो लोग एक भाग्यविधायिनी शक्ति 'मथुन–मथवा' के प्रति श्रद्धावनत रहते हैं तथा वांचो लोग आकाश देवता को 'रंग' के नाम से संबोधित कर उनकी अभ्यर्थना करते हैं।

आबो तानी प्रकृतिपूजक जनजातियों के सर्वाधिक पूज्य मिथक पुरुष हैं। अरुणाचली जनजातियों का बहुत बड़ा वर्ग आबो तानी अथवा पिता तानी को अपना पूर्वज मानता है। इनकी वाचिक परंपरा में आबो तानी के संबंध में अनेक मिथक और लोककथाएं प्रचलित हैं। ऐसी मान्यता है कि आबो तानी अलौकिक शक्तियों से युक्त पराक्रमी महापुरुष थे। उन्होंने

लोक कल्याण के लिए अनेक कष्ट सहकर प्राकृतिक आपदा से लोगों की रक्षा की थी। निम्नलिखित जातियां स्वयं को आबो तानी की संतान मानती हैं– 1. आदी, 2. निशिंग, 3. आपातानी, 4. हिल मीरी, 5. तागिन, 6. सुलुंग।

टिप्पणी

भाषिक भिन्नता के बावजूद तानी समूह की जनजातियों में सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से समानता है। तानी वर्ग की सभी जनजातियां 'दोन्यी–पोलो' की सत्ता में प्रबल आस्था रखती हैं। इनकी मौखिक परंपरा में दोन्यी–पोलो के संबंध में असंख्य आख्यान उपलब्ध हैं। इनका विश्वास है कि दोन्यी–पोलो हमारी सभी गतिविधियों पर नजर रखते हैं, वे हमारा मार्ग–दर्शन करते हैं, दुष्ट शक्तियों से रक्षा करते हैं तथा सुख–समृद्धि देते हैं। आबो तानी वर्ग की जनजातियां दोन्यी–पोलो के नाम पर शपथ लेती हैं। अधिकांश अरुणाचली जनजातियां दोन्यी–पोलो के प्रति आस्था रखती हैं परंतु उसकी अवधारणा के संबंध में भिन्न–भिन्न मत और विचार हैं। "दोन्यी–पोलो सत्य, न्याय, सुदंरता, नैतिकता, प्रेम और अच्छाई का आध्यात्मिक स्रोत है। यह उस सर्वोच्च और सर्वशक्तिमान सत्ता का प्रतीक और आध्यात्मिक स्रोत है जिसे ईश्वर कहा जाता है, जो संसार को संचालित करता है, जो संसार का रचयिता है। दूसरे शब्दों में, दोन्यी–पोलो की शक्ति के कारण ही सभी प्राणी जीवित हैं, उनका अस्तित्व है और सभी धर्म सफल होते हैं।" (श्री तालम रूकबो–मोरु तान्यी जागृति फाउंडेशन, नाहरलगन का मुखपत्र–फरवरी 1995)

दोन्यी–पोलो की अवधारणा, उसके लिंग और दोनों के बीच संबंधों के बारे में मतभिन्नता है। सामान्यतः ये सूर्य और चंद्रमा के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। अरुणाचली जनजातियों का एक बड़ा समूह बौद्ध धर्म में आस्था रखता है। यहां बौद्ध धर्म की दोनों शाखाओं–हीनयान और महायान के मतावलंबी निवास करते हैं। निम्नलिखित जनजातियां बौद्ध धर्म में विश्वास करती हैं–मोंपा, खाम्ती, खंबा, मेंबा, सिंहफो, शेरदुक्पेन और जखरिङ। इनमें से मोंपा, शेरदुक्पेन और मेंबा महायान शाखा में विश्वास करती हैं जबकि खाम्ती एवं सिंहफो जनजातियां बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा में आस्था रखती हैं। इन बौद्ध मतावलंबी जातियों की धार्मिक आस्था के साथ स्थानीय धर्म, परंपराओं, विश्वासों, देवी–देवताओं का भी समावेश हो गया है। ये लोग भगवान बुद्ध को भिन्न–भिन्न नामों से संबोधित करते हैं।

अरुणाचल के तराई क्षेत्र एवं ब्रह्मपुत्र घाटी की सीमा–रेखा पर हिंदू धर्म का प्रभाव है। मिश्मी जनजाति हिंदू धर्म में विश्वास करती है। नोक्ते जनजाति के लोग वैष्णव धर्म को मानते हैं। देवरी, मिशिंग, मीकीर और तांग्सा समुदाय के लोग भी हिंदू धर्मावलंबी हैं।

प्रकृतिपूजक, बौद्ध और हिंदू धर्म के अतिरिक्त अरुणाचल में ईसाई धर्म को माननेवाले लोगों की भी अच्छी खासी संख्या है। अरुणाचल की सभी धर्मावलंबी जनजातियां अलौकिक शक्तियों, अच्छी–बुरी आत्माओं, भूत–प्रेतों आदि में विश्वास करती हैं। प्रायः सभी जनजातियां भूत–प्रेत को दो वर्गों में विभक्त करती हैं– हितकारी भूत–प्रेत तथा अनिष्टकारी भूत–प्रेत। मृत्यु तथा अंत्येष्टि संस्कार के संबंध में अरुणाचलवासियों की मान्यताओं में पर्याप्त अंतर है। अंत्येष्टि संस्कार से संबंधित रीति–रिवाजों तथा लोकाचारों में भी अंतर है। शव को जलाने एवं दफनाने की दोनों विधियां प्रचलित हैं। प्रायः सभी जनजातियों में मृत्यु के बाद पशुबलि की परंपरा है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. अरुणाचल में कितनी भाषाएं/बोलियां विद्यमान हैं?
2. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पूर्वी हिमालय क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को क्या कहा जाता है?
3. कौन–सी खेती पर्यावरण के अनुकूल नहीं है।
4. आदी, निशिंग, आपातानी, हिल मीरी आदि जातियां स्वयं को किसकी संतान मानती हैं?

टिप्पणी

4.3 अरुणाचली लोक साहित्य के विविध रूप

लोक साहित्य लोक जीवन का प्रतिबिंब होता है। उसमें साधारण जनता की आशा–आकांक्षा, विजय–पराजय, हर्ष–वेदना तथा विधि–निषेध सब कुछ समाहित होता है। इसमें हजारों वर्षों की अनुभवसिद्ध घटनाएं गुंफित रहती हैं। इसकी रचना खेतों–खलिहानों, गांव की अमराइयों और पर्वत–शिखरों पर होती है। लोक साहित्य में समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं पर परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत धीमी होती है। लोक साहित्य ग्रामीण और अशिक्षित जनता का भावोद्गार है। इसमें प्राकृतिक जीवन का राग–रंग होता है, जनता की मसृण भावनाएं होती हैं, जीवन का धूपछांही सौष्ठव होता है तथा सरल मन की काल्पनिक उड़ान होती है।

बहुरंगी संस्कृति, समृद्ध परंपरा तथा प्राकृतिक सुषमा से श्रीसंपन्न अरुणाचल का लोक साहित्य उन्नत और वैविध्यपूर्ण है। यहां का अधिकांश लोक साहित्य गीतात्मक है जो सदियों से वाचिक परंपरा में विद्यमान है। अरुणाचली लोक साहित्य को मुख्यतः पांच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथा, मिथक और लोकोक्तियां अथवा कहावतें।

4.3.1 लोकगीत

अरुणाचल में लोकगीतों की अत्यंत समृद्ध परंपरा है। बहुरंगी संस्कृति और प्राचीन जीवन–मूल्यों के प्रति निष्ठावान यहां के निवासियों के लिए लोकगीत तो प्राण–वायु के समान हैं। यहां की सभी जनजातियों में लोकगीतों की उन्नत परंपरा उपलब्ध है। ये लोकगीत यहां के भोले–भाले लोगों का मनोरंजन करते हैं, दिशा–निर्देशन करते हैं तथा अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं। इन गीतों में पूर्वजों से संबंधित आख्यान, सृष्टि की उत्पत्ति विषयक कथाएं, जनजातियों के उद्भव तथा देशांतर गमन, विभिन्न प्राणियों की उत्पत्ति संबंधी कथाएं वर्णित होती हैं। शिकार से संबंधित पूर्वजों के विभिन्न प्रकार के अनुभवों को भी इन गीतों में स्थान मिला है। इन गीतों में लोगों के निर्दोष और सरल हृदय की सुकोमल भावनाएं प्रकट हुई हैं। अरुणाचली लोकगीतों को मुख्य रूप से निम्नलिखित छह वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) उपासना गीत

(ख) संस्कार गीत

(ग) प्रणय गीत

(घ) शोक गीत

(ङ) लोरी गीत

(च) श्रम गीत

प्रदेश में धर्म को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। अधिकांश जनजातियां दोन्यी–पोलो के प्रति अटूट श्रद्धा रखती हैं। दोन्यी–पोली की उपासना में गीत गाए जाते हैं। गीत–नृत्य के बिना यहां कोई भी उपासना पूर्ण नहीं होती। विभिन्न देवी–देवताओं और ईश्वरीय

टिप्पणी

प्रतीकों की पारंपरिक विधि से पूजा–अर्चना की जाती है तथा उपासना गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में मनुष्य के दैन्य और ईश्वर की सर्वोच्चता का वर्णन होता है। सोलुंग, एत्तोर, आरान, द्री, सी–दोन्यी, मोपुन जैसे पर्व–त्योहारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में सुख–समृद्धि और धन्य– धान्य की कामना होती है। यहां देवी–देवताओं के दो वर्ग हैं– हितकारी देवी–देवता और अनिष्टकारी देवी–देवता। दोनों श्रेणियों के देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उपासना गीत गाए जाते हैं। रोगग्रस्त होने, विपत्ति आने, पशुओं के बीमार पड़ने तथा विषैले जीव–जंतुओं के काटने पर विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा की जाती है, पशुओं की बलि दी जाती है तथा गीत गाए जाते हैं ताकि यथाशीघ्र कष्ट और बीमारी से मुक्ति मिले। अवसर और परंपरा के अनुसार कुछ गीत पुजारियों द्वारा गाए जाते हैं तथा कुछ गीत सामान्य जनता द्वारा। इन गीतों में भोले हृदय की निश्छल पुकार होती है।

'हादे–बेदे–नादो' बोरी आदिवासियों का लोकप्रिय गीत है। किसी व्यक्ति के बीमार पड़ने पर उसे आरोग्य प्रदान करने के उद्देश्य से पुजारी द्वारा एक अनुष्ठान किया जाता है तथा यह गीत गाया जाता है। सर्वप्रथम पुजारी गीत आरंभ करता है, बाद में चार–पांच महिलाएं गीत को दुहराती हैं। इसे केवल महिलाएं ही कोरस (वृंदगान) रूप में गा सकती हैं, पुरुषों द्वारा गाना वर्जित है। इस गीत में किसी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता–

हे हे हादो बेदे नादो–हो
हे हे बेदे बेदो नादो–हो
हे हे अन्यी मेते बुलक हो
हे हे न्यी मेते बुलक हो
हे हे तामी मेते बुलो हो
हे हे लुबु लुवु सिमे–हे
हे हे मेते मिजि बिलोक–हो
हे हे सिकिंग मेदोंग अने–हो
हे हे सिकिंग किपिर लेनी हो
हे हे मेदोंग ढोंग के–केयुंग लोमंग
हे हे सिकिंग–कियु युमी–पायेपंग
हे हे दिगिन अरयंग–अमोंग हो।

(श्री टी. बादु–रेसारूण'1994, अनुसाधन विभाग, अ.प्र. सरकार का जर्नल)

इस गीत में दिव्य शक्तियों से युक्त आदि पुरुष आबो तानी के जन्म और मृत्यु की कथा वर्णित है। इस गीत में बताया गया है कि एक दिन आबो तानी के पेट में भयंकर दर्द हुआ। यह सिकिंग–युमी–पोपंग (दुष्ट शक्ति) का प्रकोप था। पुजारी ने इस दुष्ट शक्ति को प्रसन्न करने के लिए अनुष्ठान किया। इसके बाद वे स्वस्थ हुए। कुछ समय बाद उन्होंने दोन्यी–पोलो की पुत्री से विवाह कर लिया। कुछ दिनों बाद उनकी पत्नी अपनी उपेक्षा से नाराज होकर उनको छोड़कर भाग गई। इसके बाद आबो तानी ने दूसरा विवाह किया। कुछ समय उपरांत पहली पत्नी पुनः वापस आ गई। दोनों पत्नियों में निरंतर झगड़े होने लगे। समयांतराल में कलह के कारण दोनों पत्नियां पति को छोड़कर भाग गईं।

एक बार आबो तानी गंभीर रूप से बीमार पड़े। सूचना पाकर दोनों पत्नियां तानी के पास आईं और उन्हें मृत्यु शय्या पर पड़े देख अत्यंत दुखी हुईं। दोनों ने दोन्यी–पोलो से पति के जीवन की रक्षा हेतु प्रार्थना की लेकिन तानी बच न सके। कहा जाता है कि उसी समय से मृत्यु की शुरुआत हुई।

'गोमेह' भी बोरी जनजाति का उपासना गीत है। यह 'दोंगिन पर्व' के अवसर पर गाया जाता है। इसे शादी–विवाह में भी गया जाता है–

हे... हे... हे
तोदी को तासो ई, जेनोने येनाने
बोरी इ कोङकी बोते बुलुग सुइंगे
सुनोन ने किदिंग, हे बिनसिंग को,
सुइंग को, सुनोन किदिङ
हे बिनसिङ बेसी करिया
तोपी ई बरिया, रेनोन रोत–तोकु।

(श्री टी. बादु–रेसारूण–1994, अनुसाधन विभाग, अ.प्र. सरकांर का जर्नल)

'गोमेह' सामूहिक रूप से गाया जाता है। जब 'दोंगिन' पर्व की तैयारी पूरी हो जाती है तब गांव के अनुभवी पुजारी के घर पर बूढ़े लोग एकत्रित होते हैं और पुजारी 'दोंगिन' पर्व आरंभ होने की कथा सुनाते हैं। इस पर्व की देवी 'पोदी–नान्यी' की अर्चना की जाती है ताकि वह दुष्ट शक्तियों से लोगों की रक्षा करें। देवी को अपोंग, मांस, चावल अर्पित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में 'गोमेह' गाना वर्जित है। औरतों को 'गोमेह' गाने की अनुमति नहीं है। इस गीत में किसी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता है।

अरुणाचली समाज उत्सवधर्मी है। यहां पचास से अधिक पर्व–त्योहार मनाए जाते हैं। नृत्य–गीत इन त्योहारों के अभिन्न अंग हैं। 'आरान' पर्व के अवसर पर आदी समुदाय के लोगों द्वारा ग्रीष्म की देवी 'नान्यी–मीते' की अभ्यर्थना की जाती है और ग्रामवासियों को सावधान किया जाता है कि त्योहार के अवसर पर नान्यी–मीते गांव का भ्रमण करेंगी। उनका भरपूर स्वागत करना चाहिए। ये सुख–समृद्धि देनेवाली एवं वंश–वृद्धि में सहायता करने वाली देवी हैं।

पशुधन प्रदेश की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार है। इसलिए अरुणाचलवासी पशुधन को स्वस्थ रखने के लिए पूजा–अर्चना करते हैं और गीत गाकर अपने इष्ट देव को प्रसन्न करते हैं (आदी लोकगीत)–

अगम बा–बु (पशुधन का देवता)

अगम बाबु दोलंका
होलौंको कु–बिए
एक–लौंको कु–बिए
अगम बा–बु दोयङ लं–का
होलौंग–को कु–बिदङ
नमी दुंगु इम योलन्यो बि–बंग

टिप्पणी

नमोङ–पेगम एकन्यो बि–दिंग
गु–ते ताकुम ता–बत बिदुंग्क
दादी ताकु इम ता–बत विदुंग्कु
अगम बा–बु नो
होन लमकाङ इम दुयाङ लंग–का
बोमोङ लमकङ, इम दु–यङ लंग–का
अमला दोनी बोते ताकम बुलु
कोम जी रेयिना ताकम बुलुमे
कोम जी तुतुना ताकम बुलुमे
गि–दि जेपक इम
अगम जेपक इम गेदुङ्कु

(श्री अदुक तायंग–आदी फोक सौंग्स)

हिंदी पद्यानुवाद

तुम्हें समर्पित सब कुछ
स्वीकार करो अगम बा–बु
मिथुन–मांस और अस्थियां
तुम्हें समर्पित है
सूअर–मांस और अस्थियां
अर्पित करता हूं
यथासाध्य जो अर्पण
अगम बा–बु स्वीकारो
चावल निर्मित मदिरा
भेंट चढ़ाता हूं
सश्रद्ध भोज्य सुंगधित
भेंट चढ़ाता हूं
पशुधन को आरोग्य
श्रीयुक्त करो अगम बा–बु
आबालवृद्धवनिता अर्चन करते हैं
निश्छल मन की विनती
सुन द्रवित हो अगम बा–बु।

अरुणाचलवासी अच्छी फसल तथा जंगली जानवरों से फसलों की सुरक्षा के लिए विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा करते हैं और गीत गाते हैं। वर्षा के देवता को संबोधित कर गीत गाए जाते हैं और अच्छी वर्षा के लिए प्रार्थना की जाती है। अधिक वर्षा होने पर सूर्यदेव की पूजा की जाती है और अतिवृष्टि से रक्षा हेतु प्रार्थना–गीत गाए जाते हैं।

अरुणाचल में अनेक प्रकार के लोकनृत्य प्रचलित हैं। इन लोकनृत्यों में गीत गाए जाते हैं। निशिंग जनजाति के लोग युद्ध नृत्य करते हैं तथा वीर रसात्मक गीत गाते हैं। अनेक लोककथाएं और पौराणिक आख्यान भी लोकगीतों के रूप में उपलब्ध हैं।

आका जनजाति के लोग भी अनेक त्योहार मनाते हैं। पर्व–त्योहारों के अवसर पर इस समुदाय के लोग नृत्य करते हैं और गीत गाते हैं। सभी उम्र के लोग नृत्य–गीत में शामिल होते हैं। आका लोग अपने शत्रुओं को पराजित करने के उपरांत युद्ध नृत्य करते हैं, ढोल बजाते हैं और संपूर्ण मस्ती में गीत गाते हैं। वे लोग अपने मृत शत्रुओं (मनुष्य अथवा बाघ) को पेड़ अथवा खंभे में लटका देते हैं और गीत गाते हुए नृत्य करते हैं–

पचि दो से अने दाने दोह
दुगो दोह से अने दाने दोह
पचि साव से अने धने दोह
दुगो दोह अने धने दोह
खिचि साअ से काले से
दोन्नी साअ से काले से
अन्ना धने कुरु साअ जाव
अन्ना धने जो साअ जोव
सेदजी साअ से कले से
मोंदजी साअ से कले से
अन्ना धने वेओ साअ जोव
अन्ना धने जोव साअ जोव

(श्री डी.एन. सैकिया–रेसारूण, 1994)

हिंदी पद्यानुवाद

हमें शेखी बघारनेवाला मत समझो,
हमने अपनी तलवारों का जौहर दिखाया है
हमारी तलवार ने दुश्मनों के छक्के छुड़ाए हैं
हम जिस मार्ग गुजरे
पगध्वनि सुन शत्रुओं के पैरों में पंख लग गए,
हमारे चरण जहां पड़े,
शत्रु हुए भाग खड़े
हमारे तीरों का निशाना अचूक है,
तलवार की चमक भयकारी,
बाघ का काम तमाम किया
सिंहों का कत्लेआम किया
जब घड़ियाल और अन्य जल–जंतु बाहर आए,
हमने अग्नि से जलाया, तलवार मार गिराया
दूसरे गांव के शत्रु और दुष्टात्मा को
तीर–तलवार से क्षत–विक्षत किया
अशक्त और लहुलूहान किया
आहार की तलाश में
धनेश, गिलहरी, चूहे

टिप्पणी

और अन्य वन्य-जीव बाहर आए
हमने उन्हें मार गिराया
हम इन्हें मारकर दुखी हैं
हम इन्हें मारकर उदास हैं।

अरुणाचली जनजातियों में लोरी गीतों की उन्नत परंपरा है। इन लोरी गीतों में मां की ममता और बच्चों के प्रति निर्मल-निश्छल स्नेह विद्यमान है। माताएं अपने बच्चों के भोले मुख को देख संसार का वैभव भूल जाती हैं। आपातानी लोग लोरी गीत को 'लिबांग-अनीनी', निशिंग लोग 'नित्तिन', हिलमीरी समुदाय के लोग 'निंतिन' तथा आदी लोग 'नित्तम' कहते हैं। आदी समुदाय में मान्यता है कि लोरी गीतों की उत्पत्ति आबो तानी के जन्म के साथ ही हुई। आबो तानी की माता कूमंग नाने की इच्छा थी कि तानी के व्यक्तित्व का विकास एक पूर्ण व समर्थ पुरुष के रूप में हो, वह इतना साहसी और पराक्रमी हो कि सभी जानवरों एवं दुष्ट शक्तियों का मुकाबला कर सके। निम्नलिखित आदी लोरी गीत इसी भावभूमि पर आधारित है-

ओरा-ओरा.......... ।
निग्कि ओहोमी अरो तापो अइला,
योदिंग हचला इमे गिबी नीपा,
परसिङ रोपोमी अमि तीनिया
दोलो सीची मीइ अमि तीनिपा
म्योलो बियोपी अमी तीनिपा।

(श्री योगेंद्र कोहली, अरुणाचल न्यूज, मार्च-जून 1984)

भावार्थ- मां अपने पुत्र को संबोधित करते हुए कहती है कि मैं तुम्हें युवा और ओजस्वी देखना चाहती हूं जो अकेले ही जंगली जानवरों का शिकार कर सके। तुम्हें ऐसा कुशल धनुर्धर बनना होगा जिसके तीर के निशाने से कोई हिरण बच न सके। तुमको ऐसा धावक बनना होगा जो लोमड़ी की पूंछ पकड़ सके।

अरुणाचल के दिबांग वैली और लोहित जिलों में मिश्मी जनजाति का निवास है। मिश्मी समुदाय में भी लोरी गीतों की समृद्ध वाचिक परंपरा है। इनके लोरी गीतों में भूत-प्रेतों, दुष्ट शक्तियों और वन्य जीवों का भय दृष्टिगोचर होता है। एक मिश्मी मां निम्नलिखित गीत में अपने बच्चे को चुप कराने के लए भूत-प्रेतों का भय दिखाती है-

मेरे बच्चे चुप हो जा,
यदि खेप सुन लेगा
तो बहुत बुरा होगा,
यदि अरु-रल्लन सुन लेगा
तो तुमको ज्वर हो जाएगा,
यदि तुम्हारा रुदन अथु सुन लेगा
तो तुम्हें मार डालेगा।

(खेपा, अरु-रल्लन और अथु वनचर भूत-प्रेत हैं)

(श्री टी. के.एम. बरुआ, द ईदु मिश्मीज)

वांचो आदिवासियों में लोकगीतों की समृद्ध विरासत है। इनके गीत लयात्मक, अर्थपूर्ण और भावव्यंजक होते हैं। इनका प्रमुख त्योहार 'ओजीएले' है। यह एक कृषि पर्व है। धान की बुआई संपन्न हो जाने के उपरांत प्रत्येक वर्ष मार्च–अप्रैल महीने में इस पर्व का आयोजन होता है। इस रंगारंग त्योहार में सूअर, भैंस, मिथुन आदि की बलि दी जाती है। युवक–युवतियों के नृत्य–गीत से संपूर्ण वातावरण झूम उठता है।

वांचो जनजाति के युवागृह अथवा सामूहिक शयनागार को 'पाह' कहा जाता है। 'पाह' में रहनेवाले युवक रात गहरी होने पर युवतियों के 'पाह' में जाते हैं। प्रेमी–प्रेमिका एक–दूसरे को 'चाली' (चबानेवाली छाल) और चूना का आदान–प्रदान करते हैं। प्रेमिका अपने प्रेमी के बालों में कंघी करती है तथा दोनों प्रेमगीतों के द्वारा अपनी भावनाओं का इजहार करते हैं। कथोपथन शैली में प्रकट इन प्रणयगीतों की कल्पनाशीलता और कोमल भावनाएं हृदयस्पर्शी हैं–

प्रेमिका (वांचो भाषा)

अ हई हाहो मेना न्गा–न्गाक तान–जंग नु–ता
फाई काई छाम–ता कोवा जिन–जेन।
फाई–काई आन–दाई आ–छाम ता लई–वान
नु–सा निंग–ले लाम ता लई–वान
नु सानिङ ले–आ।।

हिंदी अनुवाद

फुर्सत के क्षण में
या पर्वत की चोटियों पर चढ़ते हुए
हे प्रिय!
दो ही मेरी स्मृति में आते हैं–
एक मां, दूसरे तुम,
ज्यों गाय देखती है अपने बच्चों को बार–बार
जब बछड़ा अलग हो रहा होता है,
वैसे ही
हे प्रिय!
मैं तुम्हें देखती हूं
टकटकी लगाकर तुम्हारी प्रतीक्षा करती हूं
जिस पथ से मैं गुजरती हूं
मेरी आंखों में तुम्हारी तलाश होती है।

प्रेमी (वांचो भाषा)

लुतंग काम–अ निंगले मा पाउ–ता
मा–जान–जान–ता आसाम कैनी आ।
लु–जुम मान जेयाक आसुक–खाक–ले ति,

टिप्पणी

पाउ–कोवा अ छाम फाई मंग
न्म–ले ति–यान जई–आ।।
लु–जुम सा ले पई लेहु–मान जेयाक
काले मा–वे मान–याक काले मा–वे कोवा–वाई–आ।।

हिंदी पद्यानुवाद

हे प्रिय!
जैसे दो पंछी साथ–साथ बैठते हैं
उनका साथ क्षणिक होता है
कुछ पल बाद ही वे अपने–अपने नीड़ में चले जाते हैं
उसी तरह हमारा विरह भी क्षणिक है
विरह की रात बीतेगी
मिलन की सुबह आएगी,
जैसे पंछी पके फल खाकर
पेड़ को त्याग देते हैं
उसी प्रकार मैं भी
अपनी प्रिया की समस्त कामनाओं को
आपूरित कर
उसे छोड़ रहा हूं।

प्रेमिका (वांचो भाषा)

लु–ना सि–जुम मान ना सि–जेयाक–जेयाक
ले अ–ङा–अ ते–ङे–ताई आ
जङ हिङ–छाई–ले।

हिंदी पद्यानुवाद

वृक्ष अब फलहीन हैं
फिर भी पंछी आते हैं बार–बार
व्यर्थ, बेकार
उन्हें पता है कि पत्रहीन–पुष्पहीन
तरु किसी काम के नहीं।

प्रेमी (वांचो भाषा)

सा–वाई सा आंग नु–ले
पान तङछी कि–अ जाइले
सान–फाउ कोवा वाई–अ ह।

हिंदी पद्यानुवाद

पके फल खाना मेरा लक्ष्य नहीं,
मैं तो उस तोते के समान हूं

जो निरुद्देश्य चक्कर काटता है
अंबर का।

प्रेमिका (वांचो भाषा)

सा–हाई–या कि–अ नंग
गात–गाई–ए जहाङ छाम
ते–गा–ले महि जांग–कोवा।

हिंदी पद्यानुवाद

प्यारे तोते!
भूल से भी धान की फसल मत खाना,
मैंने इस पौधे को उस समय रोपा था
जब मेरे मन–प्रांतर में
प्रेम का अंकुर फूटा था।

प्रेमी (वांचो भाषा)

कि–अ लेन–पा कई–नि–ता लंग,
सोवन–ले ता–दई कान
ताप ला–ले पा–ता दंग–लंग आ।

हिंदी पद्यानुवाद

हम तोते झुंड में विचरते हैं
हमें पत्थर मत मारो
हम धान का गुच्छा ले उड़ जायेंगे
फसलों को रौंदना हमारी आदत नहीं।

प्रेमी (वांचो भाषा)

कि–अ नु–सु घाम–ता पन
कादान माई–आन–बा–ले
जुम–नु–तान–ता–कांदान माई
आन्बा–ले।

हिंदी पद्यानुवाद

ओ मेरे तोते!
तुम झुंड में क्यों आते हो?
झुंड में अपनी वेदना कैसे सुनाऊं?

प्रेमिका (वांचो भाषा)

नु जाउ अ–मा ला–अंग–ले पु–ले–यंग
फा–फैमा छाम
वई–आ–ले कान सेन कई–वान काम–कोवा।

टिप्पणी

भावार्थ– मैंने अपनी मां की कोख से जन्म लिया, परंतु वह मेरे लिए उतनी आवश्यक नहीं थी जितना आवश्यक मेरा प्रेमी बन गया है। जब मैं कहीं चली जाती हूं तो मेरा प्रिय मेरी प्रतीक्षा करता है और उसकी सभी इंद्रियां मेरी राह देखती रहती हैं।

प्रेमी (वांचो भाषा)

जिकोवा मान–तिक सेनअ
मंग जोवां मानलाप तिंग–ता
अजे सि–पा ए–ना–सु।

भावार्थ– जिस प्रकार मृत्यु के बारे में कोई नहीं जानता, उसी प्रकार लड़कियों के मन को भी कोई पढ़ नहीं पाता है। यहां तक कि गांव का पुजारी भी अपनी जादुई शक्ति से लड़कियों के मन की थाह नहीं पा सकता।

प्रेमिका (वांचो भाषा)

म जाई–सा लंग जेनअ जि जाई–सा,
जांग हान ना जाई सा–ले अ–तान हा–ता।

भावार्थ– नदी कभी नहीं सूखती, पृथ्वी भी सूर्य का चक्कर लगाना नहीं छोड़ती। इसी प्रकार हम भी एक–दूसरे से प्रेम करते रहेंगे अर्थात हमारा प्रेम शाश्वत है, इसलिए हम अमर हैं।

प्रेमी (वांचो भाषा)

सि–जि–कोवा पि मांताई लुम तिंग–ता,
छि–यान कोवा मांताई–अ आंग–फांग
कोवन–ता।

भावार्थ– इस पृथ्वी पर आकाश के नीचे ऐसी कोई जगह नहीं है जहां पर मृत्यु नहीं आती हो। आत्मा को मृतकों के संसार में अवश्य जाना पड़ेगा। उसी प्रकार ऐसी कोई जगह नहीं है जहां प्रेमी–प्रेमिका के बीच अलगाव नहीं होता।

(श्री टी. के.एम. बरुआ कृत 'वांचो लव सौंग' से सभी गीत लिए गए हैं)

नोक्ते जनजाति में भी प्रणयगीत की समृद्ध परंपरा है। नोक्ते समुदाय के निम्नलिखित गीत में प्रेम का उदात्त रूप व्यक्त हुआ है–

नोक्ते भाषा

बबंग–अ मेरु वान मंगबम
त्यात–अ लेता तोवेज
खु–फोवा–अ गलंग लेबई
रंग–अ मेलप गाना
तंग–अ–अ मेखप गाना।

भावार्थ– मेरे प्रथम प्यार! तुमने जो अपना प्रेमोद्‌गार व्यक्त किया है उसकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं। यदि तुम साथ दो तो मैं तुम्हारे साथ स्वर्ग में भी जा सकता हूं।

नामरु देक रेएर इंग ले–ले
रिंगताई न्गा लेत।

भावार्थ– यदि तुम्हारा प्यार सच्चा है तो मेरे पिताजी कोई व्यवधान खड़ा नहीं करेंगे।

(श्री टी. के.एम. बरुआ, नोक्ते लव सौंग)

आदी जनजाति के लोगों में 'सोमन मिरि' (मनोरंजन गीत) नव उत्साह और नई प्रेरणा का संचार करता है। इस जनजाति के निम्नलिखित गीत में पूर्वजों को आभार व्यक्त किया गया है–

देना गुमिन्क केपंग
देना पतोर केपंग
जे मेलो कि कोने
जे आपगो को कोपे
देना सिलिंग में तोदिंग
देना गोमानकु
देना सिलोने कुनम गोई गिदामे लातबंग
साकेतोंग को अदक
देना दिदमे दोन्यी
गोयी सरिगे दाक्कु
अबा लोलन में पोलो
गोमी करपे तो कुनम
एने न्योबोक पकलक।

(श्री एस.के. घोष, रेसारूण, 1992)

भावार्थ– हमारे पूर्वजों ने बहुत कठिन जीवन व्यतीत किया। उन्होंने हमें बेहतर जीवन उपलब्ध कराने के लिए अथक संघर्ष किया। वे विदेशियों से वीरतापूर्वक लड़े। उस लड़ाई के चिह्न अभी भी इधर–उधर बिखरे पड़े हैं। अब हम लोग सुखपूर्वक रह रहे हैं। इस आरामदेह जीवन के पीछे हमारे पूर्वजों का कठिन संघर्ष, त्याग और आत्म बलिदान है। अब हमारी धरती पर नई चेतना का आलोक विकीर्ण हो चुका है।

मनोरंजन गीत किसी भी समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के वातायन होते हैं। अरुणाचली जनजातियों में नवुयवकों के लिए युवागृह स्थापित करने की परंपरा है। मोसुम, देरे, रासेंग, पाह, मोरंग, पंग इत्यादि कई नामों से युवागृह को पुकारा जाता है। इन युवागृहों में युवक अपना मनोरंजन करते हैं, साथ–साथ रचनात्मक कार्यों में भी भाग लेते हैं। ये युवागृह नृत्य–गीत के केंद्र होते हैं। अनुभवी युवक नवागंतुक सदस्यों को नृत्य–गीत का प्रशिक्षण देते हैं। ये गीत सार्थक और जीवन की शिक्षा से भरपूर होते हैं। आदी जनजाति के निम्नलिखित गीत में युवागृह में रहनेवाला एक युवक अपने मित्र से कहता है कि जब वह 'देरे' (युवागृह) आने के लिए संध्या समय निकलता है तो दुष्टात्मा रूपी कुत्ते निरंतर भूंकते रहते हैं। यह एकल गीत है। यह महिला या पुरुष द्वारा किसी भी आयोजन पर गाया जा सकता है। इसमें किसी वाद्ययंत्र की आवश्यकता नहीं–

टिप्पणी

तेदे देरे तेदे कोकौंग
किली देरे तेदे
युमे उमीरम सा–तोकु–मिलो
तरो किकेज जयेज
मनेज तेदे
अई लिबर बरको
बरमंग
बाई लिबर बरको
बरमंग
गोन अतसम पुकपन
आइलो बंदोई
बईलो बंदोई
बंदो गा–रो रोलेज–रोजे।

(श्री अदुक तायंग–आदी फोक सौंग्स)

अरुणाचली समाज एक मुक्त समाज है। देश के अन्य भागों की अपेक्षा यहां के नवयुवकों को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। सबको अपनी पसंद के अनुसार अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार है। निम्नलिखित आदी गीत में एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से कहता है कि यद्यपि वह नदी के दूसरे तट पर खड़ी है, हमसे बहुत दूर है, फिर भी आत्मिक स्तर पर हम दोनों निकट हैं। मुझे उसके मन की हलचल, धड़कन स्पष्ट सुनाई दे रही है–

ओज गे ओदोम रुम्ने में
ओज गे सिन रोतकोन लो
ओज गे ओदोम रुम्ने न्यीने
ओज गे न्यी पे नेमिंगज
ओज गे किरकी दक्कोम
ओज गे मुमिन के बियी
ओज गे बिमोन रुनम मेमे
ओज गे मान सेमह
ओज गे मस सेमह।।

(श्री एस. के. घोष–रेषारुण, 1992)

अरुणाचली लोकगीतों में अरुणाचली समाज, संस्कृति और परंपरा का मणिकांचन संयोग है। इन गीतों में प्राकृतिक जीवन का राग–रंग, भावनाओं का उत्कर्ष और अलौकिक शक्तियों के प्रति अगाध श्रद्धा निवेदित है। अशिक्षित और आधुनिकता से दूर साधारण जनता इन लोकगीतों में अपने पूर्वजों के अनुभवों व विचारों को महसूस करती है। यह उनके अविकृत मन को शीतल अवलेप देनेवाला ऐसा मधुरमय संगीत है जिसको सुनकर श्रांत–क्लांत मन को शांति मिलती है। इन गीतों में समाज को अनुशासित, नियंत्रित करने की असीम शक्ति है। आधुनिकता और औद्योगीकरण के कारण धीरे–धीरे इन लोकगीतों के

टिप्पणी

प्रति श्रद्धा कम होती जा रही है जो चिंता का विषय है। इन गीतों का संरक्षण और अभिलेखीकरण आवश्यक है।

4.3.2 लोकनृत्य

"लोकनृत्य वस्तुतः प्राकृतिक नृत्य है। लोक जीवन में जहां भी भावुकता के क्षण आते हैं वहीं उसके अनुकूल किसी न किसी प्रकार के नृत्य का रूप प्रकट होने लगता है। इन नृत्यों में कला तो संभवतः होती ही है, पर कलात्मक होने का चैतन्य नहीं होता। अतः आदिम और जंगली जातियों में यह नृत्य जितना सशक्त होता है उतना अन्य जातियों में नहीं।" (डॉ. धीरेंद्र वर्मा (सं.), हिंदी साहित्य कोश–प्रथम भाग)

लोकनृत्यों में सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है। जीवन के विविध विषय लोकनृत्यों द्वारा प्रकट किये जाते हैं। अच्छी फसल, संतान वृद्धि, आरोग्य, भूत–प्रेत निवारण आदि की कामना से लोकनृत्य प्रस्तुत किये जाते हैं। विवाह, जन्म, मृत्यु, पर्व–त्योहार आदि के अवसर पर लोकनृत्य प्रस्तुत करने की परंपरा है।

अरुणाचल की जनजातियों में लोकनृत्यों की परंपरा बहुत प्राचीन है। वे नृत्यों द्वारा अपनी भावनाएं प्रकट करते हैं। ये नृत्य उनके लोक जीवन में रचे–बसे हैं। मस्ती और उमंग में नाचते–गाते अरुणाचलवासी अभी आधुनिकता से कोसों दूर हैं। अतिवृष्टि को रोकने, भूत–प्रेत की बाधा से मुक्ति, दैवी शक्ति को प्रसन्न करने, अच्छी फसल, भूमि की उर्वरा शक्ति में अभिवृद्धि, मृतात्मा की शांति, किसी धार्मिक अथवा नैतिक संदेश को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने, घरेलू जानवरों, परिवार एवं समुदाय के अच्छे स्वास्थ्य तथा सुख–शांति के उद्देश्य से यहां की जनजातियां नृत्य करती हैं। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपरांत अपने हर्ष को प्रकट करने के लिए भी प्रदेशवासी नृत्य करते हैं। अवसरों के अनुरूप नृत्यों की शैली में अंतर होता है। नृत्यों के लिए कोई विशिष्ट परिधान निश्चित नहीं है लेकिन नर्तकगण अपने पारंपरिक वस्त्रों को पहनकर और हाथ में तलवार (दाव) लेकर नृत्य करते हैं। नर्तकियां विभिन्न प्रकार के आभूषण और गुरियों की माला धारण कर नृत्य करती हैं। कभी–कभी उनकी पीठ पर नाचते समय बांस अथवा बेंत से बनी एक विशेष प्रकार की टोकरी भी होती हैं।

अरुणाचली लोकनृत्यों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है–सांस्कारिक नृत्य, त्योहार नृत्य, मनोरंजन नृत्य, नृत्य–नाटिका, मुखौटा नृत्य।

सांस्कारिक नृत्य– अरुणाचली लोकनृत्यों में सांस्कारिक नृत्यों की प्रमुखता है। सांस्कारिक नृत्यों की निम्नलिखित श्रेणियां हैं–

1. परिवार एवं समाज की सुरक्षा, सुख, शांति, समृद्धि और अच्छे स्वास्थ्य के लिए किये जाने वाले नृत्य।
2. फसलों की सुरक्षा और घरेलू जानवरों के स्वास्थ्य एवं उनकी संख्या में वृद्धि के लिए किये जाने वाले नृत्य।
3. अंत्येष्टि क्रिया से संबंधित नृत्य– किसी व्यक्ति अथवा समाज के प्रधान की मृत्यु होने पर अनेक जनजातियों में नृत्य करने की परंपरा है। इसका उद्देश्य मृतात्मा की शांति तथा शोकसंतप्त परिवार के कल्याण की कामना होती है।

4. धरती की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के लिए किये जाने वाले नृत्य।
5. विवाह के समय किये जाने वाले नृत्य।
6. युद्ध नृत्य– यह नृत्य प्राचीन कबीलाई युद्ध की स्मृतिशेष है। यह पुराने दिनों की याद दिलाता है जब कबीलों में प्रायः युद्ध होते रहते थे। उस समय शत्रुओं को मारकर उस पर विजय प्राप्त करने वाला विजेता दल उत्सव आयोजित करता था और नृत्य करता था। आज भी अरुणाचली जनजातियों में युद्ध नृत्य की परंपरा कायम है। आजकल कोई व्यक्ति यदि बाघ को मारता है तो युद्ध नृत्य के द्वारा अपना उल्लास प्रकट करता है।

त्योहार नृत्य– अरुणाचल प्रदेश में सैकड़ों पर्व–त्योहार मनाए जाते हैं। यहां के निवासी पर्व त्योहारों पर नृत्य–गीतों के द्वारा अपने उल्लास को प्रकट करते हैं। यहां त्योहार नृत्य की परंपरा भी बहुत पुरानी है। इन नृत्यों में आनंद, उत्साह, भोलापन ओर निर्दोष अंग संचालन होता है, उमंग और मस्ती होती है तथा जीवन के प्रति अनुराग होता है। नर्तक–नर्तकियां अपने पारंपरिक वस्त्रों और गहनों से सुसज्जित होकर नाचते–गाते हैं।

मनोरंजन नृत्य– मनोरंजन नृत्य का उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना होता है। इस नृत्य के लिए कोई अवसर निश्चित नहीं है, इसे कभी भी, कहीं भी पेश किया जा सकता है। इसमें सभी आयु–वर्ग के लोग भाग ले सकते हैं।

नृत्य नाटिका– नृत्य नाटिका में नर्तकगण किसी पौराणिक कथा के वाचन के साथ–साथ नृत्य भी करते हैं। पौराणिक आख्यानों में धार्मिक अथवा नैतिक संदेश निहित रहते हैं। नृत्य नाटिका की परंपरा भी अरुणाचली समाज में बहुत प्राचीन है।

मुखौटा नृत्य– अरुणाचल की बौद्ध धर्मावलंबी जनजातियां अपने धार्मिक संदेशों को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने के लिए मुखौटा नृत्य करती हैं। मानव, जानवर, पशु–पक्षी, दानव और दैवी शक्तियों के मुखौटे धारण कर नृत्य किये जाते हैं।

निशिंग जनजाति के नृत्य

निशि समाज में चार प्रकार के नृत्य प्रचलित हैं–बुइयासोदन, रोपसोदन, नारथोन नृत्य तथा याब की पूजा से संबंधित नृत्य। बुइयासोदन नृत्य विवाह तथा युलो पर्व के अवसर पर पेश किये जाते हैं। युलो पर्व अच्छी फसल और समृद्धि के लिए मनाया जाता है। उस समय बुइयासोदन नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। विवाह के बाद जब नववधू पहली बार अपने पति के घर जाती है तो भी इस नृत्य की प्रस्तुति आवश्यक है। रात्रि में दूल्हे के घर में उसके मनोरंजन के लिए यह नृत्य किया जाता है। केवल युवा और वयस्क पुरुष ही इसमें भाग ले सकते हैं। वे लोग नृत्य के साथ गीत भी गाते हैं।

रोपसोदन नृत्य प्राचीन युद्ध नृत्य का स्मृतिशेष है। नारथोन नृत्य महिलाओं द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। यह नृत्य सामान्यतः विवाह के अवसर पर पेश किया जाता है। जब दुल्हन अपने पति के घर में रहने के लिए आती है तो महिलाएं नारथोन नृत्य के द्वारा उसका मनोरंजन करती हैं। यह उल्लेखनीय है कि बुइयासोदन और नारथोन दोनों नृत्य विवाह नृत्य हैं लेकिन जहां बुइयासोदन नृत्य पुरुषों द्वारा पेश किये जाते हैं, नारथोन नृत्य महिलाओं द्वारा नववधू के मनोरंजनार्थ उसके कमरे में प्रस्तुत किये जाते हैं। याब की पूजा

टिप्पणी

से संबंधित नृत्य पुजारियों द्वारा किये जाते हैं। इस नृत्य में नर्तक अपने हाथ में तीर–धनुष और तलवार लेकर नाचते हैं।

तागिन जनजाति के नृत्य

तागिन जनजाति में दो प्रकार के नृत्य प्रचलित हैं– कोई निरेतो तथा हुरुगेम्ते। ये दोनों नृत्य विवाह से संबंधित हैं। जब नववधू प्रथम बार अपने पति के घर आती है तो इसकी प्रस्तुति होती है। इस नृत्य में नर्तकों के दो दल होते हैं–एक पुरुषों का और दूसरा महिलाओं का। एक ओर पुरुष नर्तक रहते हैं और दूसरी ओर महिला नर्तकी। वे लोग अपने नृत्य–गीत से नववधू का मनोरंजन करते हैं।

इस जनजाति में युद्ध नृत्य भी प्रचलित है। प्राचीनकाल में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपरांत लोग नृत्य कर अपना विजयोल्लास प्रकट करते थे। यह नृत्य उसी की याद दिलाता है। युद्ध नृत्य को 'निबुतामु' कहा जाता है।

आपातानी नृत्य

आपातानी समाज में तीन प्रकार के नृत्य लोकप्रिय हैं जिनमें से दो त्योहार नृत्य हैं। त्योहार नृत्य का संबंध इस जनजाति के प्रमुख त्योहार 'द्री' और 'मोरोम' से है जबकि तीसरा नृत्य युद्ध नृत्य है। द्री पर्व के अवसर पर बालिकाओं द्वारा किये जाने वाले नृत्य को 'बुसीदु' अथवा 'अयुएला' नृत्य कहा जाता है। इसमें लड़कियां दो पंक्तियों में आमने–सामने खड़ी होकर नृत्य करती हैं। प्रथम पंक्ति की लड़कियां दूसरी पंक्ति की लड़कियों के हाथ पकड़े रहती हैं। वे सब गीत भी गाती हैं। एक लड़की गीत की एक पंक्ति गाती है और बाद में अन्य लड़कियां उस गीत की पंक्ति को दुहराती हैं। 'मोरम' पर्व के अवसर पर 'ताकतामो' नृत्यं प्रस्तुत किये जाते हैं। इस समुदाय के कल्याण तथा समृद्धि की कामना से यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। इस त्योहार में मिथुन की बलि दी जाती है। बलि के समय में 'हुरूखांडु' नृत्य किये जाते हैं। यह पूरी रात चलने वाला नृत्य है। युद्ध नृत्य को आपातानी समाज 'रोपी' के नाम से जानता है। प्राचीनकाल में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपरांत इस नृत्य को पेश किया जाता था। आजकल किसी व्यक्ति द्वारा बाघ के मारे जाने पर रोपी नृत्य किया जाता है।

हिल मीरी नृत्य

हिल मीरी समाज में चार प्रकार के लोक नृत्य प्रचलित हैं–बोएन अथवा कुबा तेन्दोन, पोजुक, नितिन तथा पोनुंग। बोएन अथवा कुबा तंदोन नृत्य विवाह नृत्य है। विवाह के बाद जब नववधू अपने पति के घर पहली बार आती है तो बोएन या कुबा तेन्दोन नृत्य पेश किये जाते हैं। पोजुक इस समाज का युद्ध नृत्य है। फसलों के कट जाने के बाद जाड़े के दिनों में 'नितिन' नृत्य की प्रस्तुति होती है। यह एक मनोरंजन नृत्य है। इसमें लड़कियां और महिलाएं भाग लेती हैं। नर्तकियां एक–दूसरे के हाथ पकड़कर नृत्य करती हैं और गीत गाती हैं।

पोनुंग नृत्य के लिए कोई अवसर विशेष निश्चित नहीं है। इस नृत्य में केवल लड़कियां भाग लेती हैं लेकिन दल का नेतृत्व महिला अथवा पुरुष कोई भी कर सकता है। नर्तक–नर्तकियों के नेता को 'पोनुंग निबु' कहा जाता है। दल का प्रधान अपने हाथ

में तलवार लेकर आगे–आगे गाता और नाचता है। बाद में उस पंक्ति को लड़कियां दुहराती हैं।

वांचो नृत्य

अन्य जनजातियों की भांति ही वांचु जनजाति में भी युद्ध नृत्य की प्राचीन परंपरा विद्यमान है। यह पुराने कबीलाई युद्ध का स्मृतिशेष है। इस नृत्य में युद्ध से संबंधित अस्त्र–शस्त्र को लेकर तथा अपने पारंपरिक परिधानों को धारण कर नृत्य किये जाते हैं। ढोल–नगाड़े बजाकर वातावरण को उत्तेजक बनाया जाता है। इस नृत्य के समय युद्ध जैसा तनाव उत्पन्न हो जाता है जो पुराने दिनों के भीषण युद्ध का स्मरण दिलाता है। इसके अतिरिक्त कई अन्य नृत्य भी वांचु समाज में प्रचलित हैं। अपने चीफ की मृत्यु पर, नये भवन के निर्माण पर तथा त्योहारों के अवसर पर अलग–अलग प्रकार के नृत्य पेश किये जाते हैं। युवागृहों में युवक–युवतियों द्वारा मनोरंजक नृत्य की प्रस्तुति होती है।

नोक्ते नृत्य

नोक्ते समुदाय में युद्ध नृत्य और त्योहार नृत्य पाए जाते हैं। 'बांस नृत्य' को स्थानीय भाषा में 'खौङ–खौङ' खेप कहा जाता है। इस नृत्य में लड़के–लड़कियां सभी भाग लेते हैं। इसमें नर्तकगण दो दलों में विभक्त होते हैं–एक दल बांस पर ताल देता है तथा दूसरा दल नृत्य करता है।

तांग्सा नृत्य

तांग्सा जनजाति में त्योहार नृत्य अधिक लोकप्रिय है। त्योहार नृत्य में स्त्री–पुरुष सभी भाग लेते हैं। ढोल–नगाड़े इनके प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। अधिकांश नृत्य सामूहिक हैं। 'शम्मा' तांग्सा जनजाति का एकल नृत्य है जो अवसर विशेष पर पेश किया जाता है। यह सांस्कारिक महत्व का नृत्य है। किसी व्यक्ति के बीमार पड़ने पर उसे स्वस्थ करने के लिए यह एकल नृत्य किया जाता है। ऐसा विश्वास है कि इस नृत्य से रोगी के शरीर में प्रविष्ट दुष्ट शक्ति भाग जाती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। यह पुजारियों द्वारा रात्रि के समय प्रस्तुत किया जाता है।

सिंहफो नृत्य

सिंहफो लोग फसल काटने और शिकार करने के समय नृत्य करते हैं। अपने मुखिया की मृत्यु के बाद भी उनकी आत्मा की शांति के लिए तथा उन्हें अपनी अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए नृत्य किये जाते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से उनके परिवारजनों को रोग नहीं होगा एवं वे लोग सुखी रहेंगे।

आका और मीजी नृत्य

आका और मीजी जनजातियों में सांस्कारिक और त्योहारी नृत्यों की समृद्ध परंपरा है। इन जनजातियों का विश्वास है कि असामयिक मृत्यु दुष्टात्मा के आक्रमण के कारण होती है। समुदाय के किसी व्यक्ति की असामयिक मृत्यु होने पर लोग गांव में घूम–घूमकर नृत्य करते हैं। इन दोनों जनजातियों में मुखौटा नृत्य भी लोकप्रिय है। नर्तकगण अपने शरीर को पत्तों से आच्छादित कर और चेहरे पर मुखौटा धारण कर नृत्य करते हैं। मुखौटा नृत्य

टिप्पणी

का उद्देश्य गांव पर महामारी के प्रकोप को रोकना है। मुखौटा नृर्तक दल का नेतृत्व पुजारी करता है। इस नृत्य में महिलाएं भाग नहीं ले सकती हैं। आका और मीजी समुदाय के लोग विवाह के अवसर पर, फसल काटते समय एवं गृह निर्माण के समय मनोरंजन नृत्य करते हैं। आका जनजाति का एक महत्वपूर्ण नृत्य है 'पची–दुगो–दोह'। यह इनका युद्ध नृत्य है।

खाम्ती नृत्य

खाम्ती जनजाति में नृत्य–नाटिका की समृद्ध परंपरा है। इस नाटिका के द्वारा पौराणिक कहानियां और घटनाएं प्रस्तुत की जाती हैं। यह नाटिका 'संकेन' आदि त्योहारों पर पेश की जाती है। संगीत इस नाटिका का एक अपरिहार्य अंग है। इनके वाद्य यंत्र ढोल, बांसुरी, घंटा, मंजीरा इत्यादि है। इनके वाद्ययंत्र स्वनिर्मित होते हैं। इनका प्रयोग खाम्ती समाज में प्राचीनकाल से होता रहा है। नृत्य–नाटिका का मुख्य कथ्य मुर्गा–युद्ध होता है। इसमें दो नर्तक मुर्गे का मुखौटा पहनकर नृत्य करते हैं। अपने गले में वे ढोल लटकाकर युद्धरत मुर्गे का अभिनय करते हैं।

मिश्मी नृत्य

सांस्कारिक और त्योहारी नृत्य मिश्मी जनजाति के महत्वपूर्ण नृत्य हैं। सांस्कारिक नृत्य अंत्येष्टि, बीमारी और युद्ध से संबंधित हैं। परिवार एवं समुदाय के कल्याण के लिए भी नृत्य का आयोजन होता है। लोग भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के लिए भी नृत्य करते हैं। उर्वरा नृत्य में दो लड़के, पुरुष और महिला का अभिनय करते हैं। दिगारू मिश्मी जनजाति दो प्रकार के नृत्य करती है–'बुइया' और 'नुइया'। 'बुइया' नृत्य त्योहार नृत्य है। यह नर्तक और उसके परिवार की खुशी और समृद्धि के लिए किया जाता है। इसमें स्त्री–पुरुष सभी भाग लेते हैं और उम्र का कोई बंधन नहीं है। फिर भी प्रायः बच्चे और बूढ़े इस नृत्य में भाग नहीं लेते हैं। नर्तकगण अपने सामान्य वस्त्र धारण कर नृत्य करते हैं। 'नुइया' नृत्य सांस्कारिक नृत्य है जो अंत्येष्टि संस्कार से संबंधित है। यह नृत्य पुजारियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

अरुणाचली जनजातियों के लोकनृत्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युद्ध नृत्य की परंपरा सभी जातियों में उपलब्ध है। इनके अधिकांश नृत्य सामूहिक प्रकृति के हैं। अधिकतर जनजातियों में मुखौटा नृत्य की उन्नत परंपरा है। मुखौटा नृत्य के समय किसी पौराणिक कथा का वाचन किया जाता है अथवा किसी धार्मिक संदेश को संप्रेषित किया जाता है। धार्मिक उत्सवों में मुखौटा नृत्य की प्रस्तुति होती है। 'अजिलामु चाप' मोंपा और शेरदुक्पेन जनजातियों का प्रमुख मुखौटा नृत्य है। अलग–अलग उत्सवों के लिए अलग–अलग मुखौटे निश्चित हैं। नर्तकगण अपने पारंपरिक परिधानों और गुरियों की बनी माला तथा अन्य गहनों को धारण कर मस्ती और उमंग के साथ नाचते–गाते हैं। इनके वाद्य यंत्र पारंपरिक और प्राचीन हैं। इन लोकनृत्यों में यहां के निवासियों का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन प्रतिबिंबित होता है। इसलिए इन नृत्यों को उचित संरक्षण और प्रोत्साहन देना अनिवार्य है। कुछ जनजातियों के नृत्य–गीत आधुनिकता के प्रवाह में अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु संघर्षरत हैं।

टिप्पणी

4.3.3 लोककथा

विभिन्न आदिवासी समूहों की भूमि अरुणाचल प्रदेश में हजारों लोककथाएं मौखिक परंपरा में उपलब्ध हैं। इन कथाओं में जीवन के सभी पहलुओं के चित्रण हैं। रोचकता इन कथाओं के प्रमुख गुण हैं। अधिकांशतः ये कथाएं वन एवं वन्य–प्राणियों से संबंधित हैं। इन कथाओं में नैतिक संदेश निहित रहते हैं। प्रकृति से संबंधित कथाओं के अतिरिक्त परियों से संबंधित कथाओं की भी भरमार है। भूत–प्रेत, अलौकिक पत्थर और वृक्ष, नदी, वर्षा, जंगली जानवर, धूर्त मनुष्य, अलौकिक शक्ति संपन्न मानव इत्यादि से संबंधित कथाएं रोचक होने के साथ ही ज्ञानवर्द्धक भी होती हैं। यहां की लोककथाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) वन्य–प्राणियों से संबद्ध लोककथाएं,

(ख) मनुष्यों से संबद्ध लोककथाएं, तथा

(ग) प्राकृतिक शक्तियों से संबद्ध अलौकिक कथाएं।

वन्य प्राणियों से संबंधित लोककथाओं में मनुष्य, जानवर, पक्षी सभी को परस्पर वार्ता करते हुए दिखाया गया है। कुछ कथाओं में वर्णित है कि जंगल के सभी जानवर साथ–साथ रहते थे। कुछ नासमझी के कारण वे सभी एक–दूसरे से अलग रहने लगे अथवा एक–दूसरे के शत्रु बन गए। इन कथाओं का प्रमुख उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना है। मनोरंजन के साथ ही इन कथाओं में कुछ संदेश और नैतिक मूल्य भी छिपे होते हैं।

बाघ और बिल्ली की कथा (सिंहफो लोककथा)

प्राचीनकाल में मनुष्य और जानवर सभी एक साथ रहते थे। उनमें कोई भाषायी भेद नहीं था। एक दिन बाघ शिकार से वापस आया। वह अपने साथ एक हिरन को मारकर लाया था। वह बहुत भूखा था। बाघ ने बिल्ली से कहा कि वह पड़ोस के गांव से शीघ्र आग लेकर आए और मांस को पकाकर तैयार करे। बिल्ली आग लाने पड़ोस के गांव में गई। उसने एक बूढ़ी महिला को सुगंधित चावल पकाते हुए देखा तो उसके मुख में पानी आ गया। उसने महिला से कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है। बूढ़ी ने उसे खाने के लिए चावल दिए। चावल बहुत स्वादिष्ट और लसीला था। लसीला होने के कारण बिल्ली को खाना खाने में बहुत देर हो गई। इधर शेर उसकी प्रतीक्षा में घंटों बैठा रहा। क्रोध और भूख से बेचैन होकर वह बिल्ली की खोज में निकला। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि बिल्ली रास्ते में मिल गई तो उसे कच्चा खा जाएगा। बिल्ली भी इस बात से अवगत हो चुकी थी। इसलिए वह छिप गई। उसी समय से दोनों का संबंध सदा के लिए समाप्त हो गया। आज भी बिल्ली शेर के भय से छिपती रहती है।

जानवरों को बलि देने की कथा (तांग्सा लोककथा)

प्राचीनकाल में मनुष्य और जानवर अलग–अलग रहते थे लेकिन उनके रहन–सहन में कोई अंतर नहीं था। बीमार होने पर जानवर और मनुष्य एक ही दवा का प्रयोग करते थे। उस समय की औषधि जादू जैसा असर करती थी। औषधि के प्रभाव से मृत प्राणी भी जीवित हो जाते थे। इसलिए जानवरों और मनुष्यों की मृत्यु नहीं होती थी। परिणामस्वरूप धरती

टिप्पणी

पर जानवरों और मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगी। अधिक मनुष्यों के लिए अधिक अन्न चाहिए। इसलिए खेती की जमीन बढ़ती जा रही थी और उसी अनुपात में चारागाह घटते जा रहे थे। जानवरों के लिए घास और चारे का अभाव होने लगा। इसलिए जानवर मानव की फसलों को खाने लगे। मानव ने जानवरों को रोका लेकिन जानवरों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। मानव के सम्मुख अन्नाभाव की समस्या उत्पन्न हो गई। निराश होकर सभी मनुष्य वैद्यराज के पास पहुंचे। वैद्यराज जानवरों पर बहुत नाराज हुए और उन्होंने फैसला किया कि अब से जानवरों का न तो इलाज करेंगे और न ही दवा देंगे। जानवर दवा और इलाज के अभाव में मरने लगे और मनुष्यों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने लगी। सभी जानवर क्रोधित होकर बदला लेने के लिए तैयार हो गए। सभी जानवरों ने फैसला किया कि मानव के इलाज में काम आने वाली औषधियों को नष्ट कर दिया जाए। जानवरों ने सभी प्रकार की वनौषधियों, जड़ी–बूटियों और लताओं को रौंद दिया। दवा के अभाव में मनुष्यों की चिकित्सा करना संभव नहीं था। इसलिए मनुष्य मरने लगे पर वैद्यराज उनकी चिकित्सा करने में असमर्थ थे। सभी जीवित मानव उस पहाड़ी को छोड़कर दूसरी पहाड़ी पर रहने के लिए चले गए तब वैद्यराज को जीवन निरर्थक लगने लगा। निराशा के कारण उन्होंने आत्महत्या कर ली। उनकी मृत्यु के बाद मनुष्यों ने एकमत से निर्णय लिया कि वनौषधियों को खाकर जानवर अमर हो गए हैं। इसलिए यदि हम लोग जानवरों को मारकर उनका मांस बीमार मनुष्यों को खिलाएं तो वे स्वस्थ हो सकते हैं। उसके बाद जब भी कोई व्यक्ति बीमार पड़ता तो जानवरों को मारकर उनका मांस उसे दिया जाता। उसी समय से पशुबलि की प्रथा आरंभ हुई।

धूर्त मनुष्य की कथा (सिंहफो लोककथा)

एक वृद्ध सिंहफो ने मरते समय अपने पुत्र को पास बुलाकर कहा–"मेरा अंतिम समय आ गया है। मरने से पहले मैं तुमको दो बातें बताना चाहता हूं। तुम हमेशा उन पर अमल करना। पहली यह कि कोई गोपनीय बात किसी औरत को नहीं बताना और दूसरी कि घर के दरवाजों पर कांटेदार वृक्ष नहीं लगाना।" पिता के मरने के बाद पुत्र ने इन दोनों बातों की परीक्षा करने के उद्देश्य से अपने घर के सामने कांटेदार वृक्ष लगा दिए और सुंदर लड़की से शादी कर ली। एक दिन वह चुपचाप जंगल में गया और एक कुत्ते को मारकर जमीन में दफना दिया। कुत्ते के खून से सना हुआ चाकू लेकर वह घर आया और पत्नी से कहा कि आज मैंने एक आदमी का खून कर दिया। प्रमाण के लिए उसने खून लगा चाकू अपनी पत्नी को दिखाया। पत्नी डर से चिल्लाने लगी और बोली–तुम हत्यारे हो, तुमने आदमी का कत्ल किया है। अब मैं एक पल भी तुम्हारे साथ नहीं रहूंगी। मैं राजा के पास शिकायत करने जा रही हूं। वह दौड़ती–हांफती राजा के पास गई और कहा कि मेरे पति ने एक आदमी को मार दिया है। राजा ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वे सिंहफो को पकड़कर दरबार में हाजिर करें। राजा के सिपाही सिंहफो को पकड़ने के लिए उसके घर गए। सिपाही उसे पकड़कर ला रहे थे कि सिंहफो की पगड़ी कांटेदार पेड़ में उलझ गई और उसी में अटकी रह गई। पगड़ी का उतरना अपमान की निशानी है। सिंहफो बिना पगड़ी खाली सिर ही राजा के दरबार में पहुंचा। राजा ने उससे पूछा–"क्या तुमने किसी आदमी की हत्या की है? इस संबंध में सच्चाई का बयान करो।"

टिप्पणी

सिंहफो ने जवाब दिया– "मैंने किसी आदमी का खून नहीं किया है। वास्तविक स्थिति यह है कि मैंने अपने पिताजी की बातों की सत्यता जानने के लिए एक कुत्ते को मारकर जमीन में दफना दिया और पत्नी से झूठ बोला कि मैंने एक आदमी का कत्ल कर दिया है।" राजा ने अपने सिपाहियों और जासूसों को आदेश दिया कि सिंहफो के कथन की छानबीन कर पता लगाया जाए कि यह आदमी खूनी है या निर्दोष। सिपाहियों ने जांच करने के बाद कहा कि सिंहफो का कथन सत्य है, यह हत्यारा नहीं है। राजा ने सिंहफो को रिहा कर दिया। वह उसकी बुद्धि से प्रभावित हुआ और अपनी पुत्री से उसकी शादी कर दी।

गिलहरी की उत्पत्ति की कथा (आदी लोककथा)

प्राचीन काल में एक गांव में ओकी और बंदो नामक दो मित्र रहते थे। उनकी मैत्री अटूट थी। वे साथ–साथ खाते, खेलते और सभी काम करते थे। गांव के पास ही एक छोटी–सी नदी थी जिसमें काफी मछलियां थीं। दोनों मित्र नियमित रूप से साथ–साथ नदी में मछली मारने के लिए जाते थे। कभी–कभी जब एक मित्र देर तक सोता रह जाता तो दूसरा उसे जगाने जाता और तब वे साथ–साथ नदी तट पर मछली मारने जाते। दुर्भाग्यवश उनकी मैत्री को किसी की कुदृष्टि लग गई।

एक रात आकाश मेघाच्छन्न था। बादलों के कारण रात्रि का अंधकार और घनीभूत हो गया था। संपूर्ण वातावरण कालिमा की चादर में सिमटा–सहमा था। रात भर बादल और बिजली का खेल चलता रहा। सूर्योदय से कुछ देर पहले ऐसा लगा कि ओकी को उसका मित्र बंदो पुकार रहा है। ओकी हाथ में दाव लेकर बाहर निकल पड़ा लेकिन बाहर कोई नहीं था। उसने सोचा कि सुबह हो गई है और उसका मित्र बाहर नदी पर चला गया है, इसलिए उसे भी शीघ्र प्रस्थान कर देना चाहिए। वह तेजी से नदी की ओर बढ़ने लगा लेकिन उसका मित्र रास्ते में कहीं नहीं मिला। नदी तट पर जाने के बाद उसने नदी में एक व्यक्ति को देखा। उसने अनुमान लगाया कि शायद यह जल में निवास करने वाली एक दुष्टात्मा है। ओकी को बहुत डर लगा। प्रेतात्मा उसकी ओर धीरे–धीरे बढ़ रही थी। ओकी भय से कांपने लगा और भागने का प्रयास करने लगा लेकिन वह प्रेतात्मा के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाया।

जब बंदो को पता लगा कि उसका मित्र नदी पर पहले ही चला गया है तो उसे संदेह हुआ। यथाशीघ्र वह नदी के तट पर पहुंचा। वहां का दृश्य देखकर उसका दिल दहल गया। उसने देखा कि उसके मित्र का सिर जमीन पर लुढ़क रहा है। वह इधर–उधर भागने लगा लेकिन सिर ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अंततः वह एक पेड़ पर चढ़ गया और सहायता के लिए चिल्लाने लगा। वह चिल्लाता रहा और अंततः गिलहरी में परिवर्तित हो गया।

अरुणाचल प्रदेश की वाचिक परंपरा में असंख्य लोककथाएं विद्यमान हैं। इन लोककथाओं में सरल–निश्छल लोगों की कल्पनाशीलता व सर्जनात्मक प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है। इन कथाओं में विषय–वैविध्य है तथा इनका फलक बहुत विस्तृत है। रोचकता और जिज्ञासा–भाव इन कथाओं के प्रमुख गुण हैं। इन कथाओं में प्रकृति के अनेक रूपों के दर्शन होते हैं।

टिप्पणी

4.3.4 मिथक

लोक–मिथक लोक जीवन के विराट संपुट होते हैं। इस संपुट में प्राचीन संस्कृतियों के ऐसे उपादान भरे होते हैं जिनके आधार पर जातीय धारणाओं की सही व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है। यह संपुट एक ऐसे भंडार की तरह होता है जो कभी रिक्त नहीं होता। (डॉ. भवदेव पांडेय–मड़ई 2002)

अरुणाचली समाज में संसार, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, नरक, देवता, राक्षस, मनुष्य, जल, अन्न, पर्वत, स्तनपायी, सरीसृप, उभयचर आदि वस्तुओं, पशु–पक्षियों व जीव–जंतुओं की उत्पत्ति से संबंधित हजारों मिथक प्रचलित हैं। ये मिथक वाचिक परंपरा में ग्राम्य लोगों के कंठों में विद्यमान हैं (डॉ. वेरियर एल्विन–मिथ्स ऑफ नॉर्थ–ईस्ट–फ्रंटियर ऑफ इंडिया–शिलौंग–1969, सभी मिथक उक्त पुस्तक से गृहीत)।

संसार की उत्पत्ति (हिल मीरी मिथक)

सृष्टि के आरंभ में सर्वत्र केवल जल था, जल के अतिरिक्त कुछ नहीं था। जहां तक आंखें देख सकती थीं, केवल जल ही था, लेकिन जल के ऊपर 'टेरी–रमुला' का वृक्ष उग आया। समय बीतने के बाद पेड़ में एक कीड़े का जन्म हुआ जिसने लकड़ी को कुतरना शुरू कर दिया। लकड़ी का बुरादा पानी में गिरने लगा। बहुत समय के उपरांत सृष्टि की रचना हुई। अंततः वृक्ष जमीन पर गिर गया। वृक्ष के धड़ के निचले भाग की छाल सृष्टि का वायुमंडल बनी, ऊपरी भाग की छाल से आकाश बना, धड़ चट्टान बन गया एवं उसकी शाखाएं पर्वत बन गईं।

सूर्य–चंद्रमा (कमान मिश्मी मिथक)

बहुत पहले आकाश में चार सूर्य थे और उनसे इतनी गर्मी निकलती थी कि गर्मी के कारण फसलें नष्ट हो जाती थीं, सभी चीजें सूख जाती थीं। इसलिए लोगों ने एक बैठक बुलाई और फैसला किया कि चार में से तीन सूर्यों को मार दिया जाए, क्योंकि एक ही सूर्य प्रकाश और उष्मा के लिए पर्याप्त था। लोगों ने समाज के आठ बहादुर व्यक्तियों का चयन किया और दो कुत्तों के साथ उन्हें आकाश में तीन सूर्यों को नष्ट करने के लिए भेज दिया।

बहादुर दल के सदस्यों ने आकाश की लंबी यात्रा के लिए प्रस्थान किया। वहां पहुंचकर वे लोग तीन सूर्यों से लड़ने लगे और अंततः तीन सूर्यों को परास्त कर नदी में फेंक दिया। लेकिन इस काम में बहुत समय लगा। आकाश की जलवायु भी उनके अनुकूल नहीं थी। इसलिए उन लोगों ने 'तपये' नामक कुत्ते को सूर्य की रखवाली करने के लिए आकाश में छोड़ दिया और वे सभी वापस आ गए। भयंकर और कष्टदायक यात्रा में उनमें से सात व्यक्ति मर गए। एक मनुष्य और एक कुत्ता धरती पर वापस आए। उसने धरतीवासियों को तीन सूर्यों के साथ घटित घटनाओं के बारे में बताया। जब लोगों ने यह समाचार सुना तो पृथ्वी पर उल्लास छा गया क्योंकि पृथ्वीवासी सूर्यों की गर्मी से भीषण कष्ट भोग रहे थे।

आकाश में बचा चौथा सूर्य अपने साथियों की मृत्यु के कारण बहुत उदास था और उनके लिए दिन–रात रोता रहता था। इससे उसका प्रकाश मंद पड़ गया था एवं वह अत्यंत जीर्ण–शीर्ण हो गया था। वह पृथ्वीवासियों को पर्याप्त धूप और प्रकाश भी

नहीं दे पाता था। जब 'तपये' कुत्ते ने सूर्य की यह स्थिति देखी तो वह सूर्य पर झपटा और उसे काट लिया। उसी समय से तपये वर्ष में एक बार सूर्य को काटता है ताकि सूर्य को अपना कर्तव्य याद रहे और वह भरपूर प्रकाश और गर्मी देता रहे। इसी कारण से ग्रहण होता है।

सिंहफो मिथक

सर्वप्रथम जब पृथ्वी और आकाश की रचना हुई तो दोनों एक साथ थे। निंगुन–चिनन और उनकी पत्नी तुंकम–वैसन पृथ्वी पर प्रकट हुए। दोनों एक–दूसरे को बहुत प्यार करते थे। शीघ्र ही निंगन–चिनन ने जुड़वां बच्चे को जन्म दिया। लड़के का नाम सीता (चंद्रमा) और लड़की का नाम चान (सूर्य) था। मां ने डोरी काटकर उन्हें नीचे फेंक दिया। तब सभी प्रकार की घास और पेड़–पौधों की उत्पत्ति हुई। तुंगकम–वैसन ने बच्चों को खेलने के लिए एक सीढ़ी बनाई। सूर्य और चंद्रमा इसके माध्यम से आकाश में चढ़ गए। इसके बाद निंगन–चिनन ने एक मनुष्य, एक लौकी जैसी चीज़ तथा एक चट्टान को जन्म दिया। तीनों बच्चे एक साथ खेलते थे। एक दिन जब वे खेल रहे थे तो चट्टान (लंग–नि–चांग) ने अपने लौकी जैसे भाई को तोड़ दिया। उसके पेट से असंख्य छोटे मानव बाहर आए। ज़ब सूर्य–चंद्रमा आकाश में चले गए तो मानव अत्यंत हर्षित हुआ, लेकिन जब वे नीचे आए तो सर्वत्र अंधकार व्याप्त हो गया। इसलिए जब सूर्य–चंद्रमा दूसरी बार आकाश में गए तो तुंगकम–बैसन ने सीढ़ी तोड़ दी। इसलिए सूर्य और चंद्रमा पुनः धरती पर वापस नहीं आ सके। जब सूर्य बड़ी हुई तो उसे विवाह करने की इच्छा हुई। उसने अपने भाई चंद्रमा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा लेकिन चंद्रमा ने जवाब दिया कि हम लोग भाई–बहन हैं, इसलिए भाई–बहन में शादी संभव नहीं है। सूर्य ने बलपूर्वक चंद्रमा को अपनाना चाहा लेकिन चंद्रमा दूर भाग गया और भागकर लामा बन गया। उसका प्रकाश मंद पड़ गया। लेकिन सूर्य औरत थी, इसलिए हमेशा गर्म और कामोत्तेजित रहती थी और इसलिए आज भी वह पूर्ण तेज के साथ चमकती रहती है।

जल (नोक्ते मिथक)

जल मानव के शरीर की मुख्य वस्तु है। जब मानव की मृत्यु हो जाती है तो उसके शरीर का जल आकाश में चला जाता है और पुनः वर्षा के रूप में धरती पर गिरता है। मनुष्य वर्षा का जल पीता है और उसके शरीर का जल उसकी पत्नी के शरीर में जाता है और वह गर्भवती होकर बच्चे को जन्म देती है।

आदि पुरुष (बुगुन अथवा खोवा मिथक)

सृष्टि के आरंभ में जब संसार में कोई नहीं था तो सर्वप्रथम अपुफुलवा ओर मुइनीनी का आविर्भाव हुआ। भगवान सजे–संगे ने देखा कि दोनों अलग–अलग रह रहे हैं तो उन्होंने सोचा कि यदि दोनों एक साथ नहीं रहेंगे तो मानव जाति की उत्पत्ति कैसे होगी। इसलिए उन्होंने फांग्मा नामक एक पुरुष शक्ति तथा दुइमा नामक नारी शक्ति को उनके पास भेजा। इन दोनों दिव्य शक्तियों ने दोनों को कामोत्तेजित किया। इसके बाद अपुफुलवा उसी प्रकार एक औरत के लिए बेचैन हो गया जिस प्रकार मनुष्य अन्न, जल और मदिरा के लिए बेचैन होता है। यही हालत मुइनीनी की भी थी। वह भीं किसी पुरुष को प्राप्त

टिप्पणी

करने के लिए उसी प्रकार बेचैन हो गई। कामोत्तेजित अपुफुलवा और मुइनीनी एक साथ रहने लगे और इसी के बाद मानव का जन्म हुआ। आज भी यदि फोंग्मा पुरुष की सहायता नहीं करे तो पुरुष नपुंसक हो जाता है और यदि दुइमा महिला की मदद नहीं करे तो महिला बांझ हो जाती है।

आग की उत्पत्ति (वांचो मिथक)

जब मनुष्य के पास आग नहीं थी तो वह जंगल में जानवरों की भांति रहता था। एक दिन जब मनुष्य जंगल में पेड़ों को काट रहा था तो उसने एक पक्षी पर पत्थर फेंका। पत्थर एक चट्टान पर लगा और चट्टान में से आग निकलने लगी। मनुष्य ने दूसरा पत्थर मारा और पुनः चिंगारी निकलने लगी। उस चिंगारी से आस–पास की सूखी झाड़ियों में आग लग गई। इस प्रकार आग की उत्पत्ति हुई।

जोंक (निशिंग मिथक)

जिंगी तानी आबो तानी के पुत्र थे। वह एक मादा की तलाश में जंगल में भटक रहे थे लेकिन उन्हें मादा नहीं मिली और अंततः निराश होकर वे 'ओक' नामक पत्ती के पास गए। उचित समय पर पत्ती गर्भवती हुई और एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम 'तापे' था, लेकिन अपने पुत्र को पिलाने के लिए पत्ती की छाती में दूध नहीं था। दूध के अभाव में तापे लगातार चिल्ला रहा था, तब उसके पिता ने उसे अपनी गोद में लेकर अपने घुटनों का रक्त पिलाया। इसलिए तापे (जोंक) अभी तक मानव का रक्त पीता है।

हाथी (धम्माई या मीजी मिथक)

बहुत पहले 'लुचोमु–बुई' नामक देवता अपनी पत्नी 'जुसुंग–लनुई–मुहु' के साथ पहाड़ों पर रह रहे थे। एक दिन उनकी पत्नी ने एक हाथी को जन्म दिया। वह संसार का पहला हाथी था। मां अपनी छाती से उसे दूध पिलाती थी लेकिन उसे पर्याप्त दूध नहीं मिल पाता था। तब उसने अपने बच्चे को थोड़ा खाना देना शुरू किया, पर वह इससे भी संतुष्ट नहीं हुआ। वह और अधिक भोजन के लिए हमेशा रोता रहता था। वह बहुत बड़ा हो गया परंतु इतना दुर्बल और पतला था कि कोई काम नहीं कर पाता था। यहां तक कि वह चलने फिरने में भी असमर्थ था।

एक दिन जंगल के देवताओं ने एक भोज में सभी जानवरों, पक्षियों और मछलियों को आमंत्रित किया। हाथी इतना कमजोर था कि वह जमीन पर घिसटते हुए जा रहा था। जब तक वह पहुंचा, सब भोजन समाप्त हो चुका था। जब अन्य जानवरों ने उस क्षीणकाय प्राणी को धीरे–धीरे घिसटते हुए देखा तो उन्हें बहुत दया आ गई। वे सभी इसलिए दुखी थे कि हाथी के खाने के लिए भोजन शेष नहीं था। सभी जानवरों ने अपने पेट से थोड़ा–थोड़ा अन्न निकाला और हाथी को खाने के लिए दिया। हाथी के पास बहुत सारा भोजन जमा हो गया जिसे खाकर वह मोटा और मजबूत बन गया। इसलिए हाथी आज भी बहुत मजबूत है।

अरुणाचल प्रदेश में उपलब्ध मिथकों के अध्ययन से विदित होता है कि संसार के अन्य समाजों में प्रचलित मिथकों के समान ही यहां भी मान्यता है कि सृष्टि के आरंभ में केवल जल था। बाद में पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। तीसरे चरण में पेड़–पौधों और जानवरों

टिप्पणी

की उत्पत्ति हुई। यहां के अनेक मिथकों में कहा गया है कि पहले आकाश और पृथ्वी अलग–अलग नहीं, बल्कि एक साथ थे। बाद में वे अलग हुए। सूर्य और चंद्रमा के संबंध में भी अनेक मिथक प्रचलित हैं।

कुछ मिथकों में उन्हें भाई–बहन बताया गया है, तो कुछ में पति–पत्नी। कुछ मिथक कहते हैं कि सूर्य चंद्रमा की पत्नी है तो कुछ में सूर्य को पुरुष माना गया है और चंद्रमा को स्त्री। कुछ मिथक यह संकेत देते हैं कि पहले चार सूर्य थे जिनमें से तीन को मार दिया गया, कुछ पुराख्यान संकेतित करते हैं कि दो सूर्य थे जिनमें से एक को मार दिया गया। इसलिए एक का प्रकाश मंद हो गया। इसी प्रकार तारे, सूर्यग्रहण, पर्वत, नदी, जीव–जंतुओं आदि के संबंध में भी मिथक उपलब्ध हैं। ये आख्यान विभिन्न अवसरों पर पुजारियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। गांव में बने युवागृह भी आख्यानों को युवक–युवतियों में लोकप्रिय बनाते हैं। नृत्य–गीतों में भी कोई न कोई आख्यान या पौराणिक कथा रहती है। यहां के निवासी जब अंगीठी के समीप बैठते हैं तो इन आख्यानों के द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार ये पौराणिक कथाएं वाचिक परंपरा में पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ती रहती हैं।

4.3.5 लोकोक्तियां अथवा कहावतें

"कहावतें वे आलोक दीप हैं जिनकी सहायता से अंधकारपूर्ण अतीत भी चमक उठता है।"
(डॉ. कन्हैयालाल सहल)

अरुणाचल के गांवों में बसे लोगों की जुबान से लोकोक्तियां अनायास ही निकलती रहती हैं। इन कहावतों के मूल में कोई गंभीर अनुभव, कोई घटना अथवा प्रचलित कोई कथा रहती है। कम शब्दों में अधिक भाव–राशि को समेटे ये लोकोक्तियां लोगों को दिशा दिखाती हैं, बुरे कर्म करने से रोकती हैं तथा सुकर्म की प्रेरणा देती हैं। इनमें पूर्वजों के जीवनानुभवों से प्राप्त ज्ञानराशि निहित है। अंगीठी के पास बैठने पर अथवा उत्सवों आदि के समय एकत्रित होने पर अरुणाचलवासी बातचीत के दौरान लोकोक्तियों और कहावतों के द्वारा अपनी बातों को पुष्ट करते हैं।

ईदु मिश्मी लोकोक्तियां

1. एक्को–बे एम्बु आगु यागो लापरामी,

   भावार्थ– पत्नी और बच्चों को गुप्त बात बताना अच्छा नहीं है।

2. याइकु में इजी नारू–चा लायी,

   भावार्थ– प्रायः महिलाएं ही अफवाह फैलाती हैं।

3. इकु रू–गा इत्तो अतरा गोदो अहरू–मी,

   भावार्थ– कुत्ते के भौंकने अथवा मुर्गी के बांग देने पर ध्यान नहीं देना चाहिए। अर्थात अफवाहों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

4. नान्यी–जी थेको–को, नाबा–जी थेनना,

   भावार्थ– माता जैसी पुत्री, पिता जैसा पुत्र।

टिप्पणी

5. इक्कु–मे थु अंदोगा–गा उजी,

भावार्थ– गरीब लोग यदि कुत्ते की तरह झगड़ा करें तो उसका कोई महत्व नहीं है।

6. इक्की–पी इक्कोबे बिगेचा लाही बाबा येयी,

भावार्थ– पाखंडी व्यक्ति एक बार ही किसी को मूर्ख बना सकता है।

7. इम्मु खेगे–में चिरुगा यीमी,

भावार्थ– मनुष्य को सब कुछ नहीं मिलता है।

8. इम्मु लाहिंदी येहा लाहा यी,

भावार्थ– मनुष्य भूल करता है।

9. ताजी आ में कापा बाबा येयी ताजु कापा, आ मे ताजी बाबाब येयी,

भावार्थ– हमेशा चालाक के पुत्र ही चालाक नहीं होते, कभी–कभी मूर्ख व्यक्ति के पुत्र भी चालाक निकल जाते हैं।

(श्री जे. पुलु–रेसारुण, खंड 29, 1994)

तागिन लोकोक्तियां

1. किओकोम कुइ ता–पु, ता–पु कुई किओकोम,

भावार्थ– तेज, बुद्धिमान और प्रभावशाली व्यक्ति का पुत्र मूर्ख भी हो सकता है और मूर्ख व्यक्ति का पुत्र चालाक भी हो सकता है।

2. मेतुंग तुंगकेने इमे गुसाम (गुलेन्या), न्यीलु बोकने न्यीकम पलमा,

भावार्थ– जिस प्रकार लकड़ी का अकेला टुकड़ा जल नहीं सकता है उसी प्रकार अकेला व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता अर्थात एकता में बल है।

3. न्यी कचींग में ओ–लो लेबींग, सेमीक ओ–लो तयास,

भावार्थ– दुर्भाग्य अकेले नहीं आता है।

4. मीनसा यालुंगे गो–दु नेला,

भावार्थ– किसी की बाहरी वेशभूषा देखकर उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है अर्थात किसी व्यक्ति को छोटा नहीं समझना चाहिए।

5. न्यी येमा देदे सोसोला हेक्के यांगोम यानेगे पोसीक,

भावार्थ– गरीब व्यक्ति सर्वत्र असहाय होता है।

6. सोने रिबुने तिरदेन लामा, सरदे कुनेम तिरदेन लामा,

भावार्थ– दुर्जन का सुधरना कठिन है।

7. बेने लोलेन मक्पो केकेला,

भावार्थ– चरित्रहीन महिलाएं सब कुछ खो देती हैं।

8. अनीक निंगे पेजीक, अकक निंगे कोजक, युयु निंगे तक्यु, मामा निंगे ता–रिक,

भावार्थ– जो मनुष्य कोई काम करने के पूर्व उस पर गंभीर चिंतन–मनन करता है और काम धीरे–धीरे और लगातार करता है उसे अच्छा फल मिलता है लेकिन जो मनुष्य बिना विचार किए हड़बड़ी में कार्य करता है उसका फल अच्छा नहीं होता है।

9. चेलु अंगु गुलका, दोलु असा सलाका,

भावार्थ– सभी जगह मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

10. होमे बेबोलो कु गेन्नगो,

भावार्थ– वैवाहिक संबंध से दो परिवारों में स्थाई रिश्ता कायम होता है।

(श्री के. पार्टिन, रेसारुण–खंड 20, 1994)

मोंपा लोकोक्तियां

1. लपना खेमा सुरंग जंग, मलप खेमा सुरंग मेय,

भावार्थ– शिक्षा मनुष्य को बुद्धिमान बनाती है, बिना शिक्षा के मनुष्य गूंगा है।

2. मेन्तो येंगपुक दुइका ये मयेन्य, गूती अरंग दुरंग धा फेयेनवेंगे,

भावार्थ– समय और ज्वार किसी की प्रतीक्षा नहीं करते।

3. गाले–गाले जेना बौगपोल ल्हासा कोरयोंगे,

भावार्थ– धीरे–धीरे और निरंतर प्रयास करने से खच्चर भी ल्हासा की सैर कर सकता है अर्थात धीरे–धीरे और निरंतर प्रयास करने से लक्ष्य की प्राप्ति निश्चित है।

(श्री एल. वांग्चु, रेसारुण, खंड 20, 1994)

आपातानी लोकोक्तियां

1. मिल्लो ब्यास्सा हिरूंग ब्यास्सा,

भावार्थ– मनुष्य को अपना रास्ता खुद बनाना चाहिए जिस प्रकार जंगली सूअर अपना मार्ग स्वयं बनाता है।

2. नीइ दी नीइ दिनीइंग यास्सी नई लुनीइ लुनीइंग यास्सी,

भावार्थ– कोई मानव यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके विचार और कार्य पूर्णतः सही और अंतिम हैं।

3. नीइ अनीइ मि इजी नखिंग मा, पाबो अबा मि ओह नखिंग्मा,

भावार्थ– सरकारी सेवकों से झगड़ा नहीं करना चाहिए।

4. मिल्लो कि गुंगचु तवु, हिरूग मि लइदु कवु,

भावार्थ– बोलने के पूर्व सोचना चाहिए।

5. अका सोने सोमे, ही न्यारनी–इ–न्यारखे,

भावार्थ– चट्टानों पर पेड़–पौधे नहीं उग सकते और जंगल की झाड़ियों में सूअर नहीं रह सकता। इसी प्रकार प्रतिकूल वातावरण में मनुष्य शांतिपूर्वक नहीं रह सकता है।

6. लाली गामीइ हो बरमी पीइतिंग तिन्दु,

भावार्थ– महिला संबंधियों की सुरक्षा करना और उनकी भलाई के लिए प्रयत्नशील रहना पुरुषों का कर्तव्य है।

(श्री पी.बी. कबनंग, रेसारुण, खंड 20, 1994)

टिप्पणी

5.4 अरुणाचल के लोक साहित्य का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य

संस्कृति मनुष्य में सामाजिकता का विकास करती है और समाज से अनुकूलन करने की क्षमता विकसित करती है। वह मानव की आदिम प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर सामाजिक प्राणी बनाती है। "बच्चा जब जन्म लेता है तब न वह सामाजिक प्राणी होता है और न ही समाज विरोधी बल्कि उसमें केवल सामाजिक बनने के कुछ गुण विद्यमान रहते हैं। संस्कृति उसका संस्कार कर उसे एक जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करती है" (वीरेंद्र परमार– कथाकार आचार्य शिवपूजन सहाय, 2010)। संस्कृति हमारे वैचारिक पक्ष से संबद्ध है। साहित्य, संगीत, कला, धर्म, प्रथा, लोकाचार, कर्मकांड, अनुष्ठान, सामाजिक–नैतिक मूल्य इत्यादि संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।

अरुणाचल प्रदेश आदिवासी संस्कृति का अक्षय कोश है। यहां के गांवों और पर्वत घाटियों में लोकसाहित्य पल्लवित–पुष्पित होता है। अपनी परंपराओं, प्रथाओं, लोकाचारों एवं सामाजिक मूल्यों के प्रति अटूट आस्था रखनेवाले प्रदेशवासी पौराणिक आख्यानों, लोककथाओं, लोकगीतों के माध्यम से जीवन जीने की कला सीखते हैं। धर्म अरुणाचली लोकसाहित्य का प्राण–तत्व है। अतः यहां के लोकसाहित्य पर धर्म का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति पूजक हों अथवा बौद्ध धर्मावलंबी– सभी एक सर्वोच्च सत्ता या ईश्वरीय प्रतीक के प्रति निष्ठा रखते हैं। भिन्न–भिन्न समुदायों में अलग–अलग नामों से उसे संबोधित किया जाता है। धर्म एवं धार्मिक मान्यताएं पग–पग पर यहां के लोगों का पथ–प्रदर्शन करती हैं। प्रदेश के लोकसाहित्य का अधिकांश भाग धर्म से अनुप्राणित है अथवा धर्म से संबंधित है। लोकगीतों, लोककथाओं, मिथकों में अलौकिक शक्तियों, देवी–देवताओं तथा ईश्वरीय प्रतीकों के प्रति श्रद्धा निवेदन है, आरोग्य व धन–धान्य की कामना है, प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा हेतु भयाक्रांत मन की निश्छल पुकार है और अपने दैन्य का प्रकटीकरण है।

अरुणाचल के सभी समुदायों में प्रकारांतर से प्रकृति पूजा का विधान है। पर्वत, नदियां, जंगल, झरने, तालाब, वर्षा, सूर्य, चंद्रमा, आंधी, तूफान आदि की पूजा–अर्चना की जाती है, गीत गाए जाते हैं तथा प्राकृतिक शक्तियों के बारे में आख्यान सुनाए जाते हैं। लगभग सभी प्राकृतिक शक्तियों, जीव–जंतुओं और देवी–देवताओं की उत्पत्ति के संबंध में आख्यान या लोककथा उपलब्ध हैं। प्रदेश में प्रचलित उपासना गीतों, लोककथाओं, त्योहार गीतों में प्राकृतिक शक्तियों के प्रति आत्म निवेदन व समर्पण–भावना का प्रतिपादन हुआ है।

सृष्टिकर्ता के अतिरिक्त प्रदेशवासियों की देवी–देवताओं, भूत–प्रेतों के प्रति अखंड आस्था है। सभी आदिवासी समुदाय इन देवी–देवताओं तथा भूत–प्रेतों को दो वर्गों में

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. अरुणाचली लोकगीतों को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है?
6. अरुणाचल के दिबांग वैली और लोहित जिलों में कौन–सी जनजाति निवास करती है?
7. सभी अरुणाचली जनजातियों में कौन–से नृत्य की परंपरा उपलब्ध है?
8. अरुणाचल की लोककथाओं को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है?
9. नववधू के मनोरंजन के लिए कौन–सा नृत्य किया जाता है?
10. वन्य प्राणियों से संबंधित लोककथाओं में किसे आपस में वार्ता करते हुए दिखाया गया है?

टिप्पणी

विभक्त करते हैं– हितकारी और अनिष्टकारी। इनकी मान्यता है कि इन भूत–प्रेतों और देवी–देवताओं का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सभी समुदाय इनकी आराधना करते हैं तथा नृत्य–गीतों के द्वारा उन्हें संतुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। दोन्यी–पोलो, आबो तानी, सेदी, सि–दोन्यी, वियु, रंग, बऊ रंग, जोका, हङ–वङ, नर, ताइसिम, मुजेर, लिल्लो, लिजी, लिरम, दोजी, यापङ, मुरङ, सुबु इत्यादि ईश्वरीय प्रतीकों, देवी–देवताओं तथा भूत–प्रेतों के नाम हैं जिनके संबंध में अरुणाचली समाज में अनेक आख्यान, संस्कार गीत, उपासना गीत और लोककथाएं प्रचलित हैं। सभी आदिवासी समुदायों में गृह देवता, आकाश देव, ग्रामदेव, जल देव की परिकल्पना तथा उनके संबंध में आख्यान उपलब्ध हैं।

रूढ़ियां अथवा लोकाचार किसी समूह के प्रथागत विश्वास हैं जिनके द्वारा समाज को अनुशासित किया जाता है। अरुणाचल के लोकसाहित्य में प्रचलित रूढ़ियों, प्रथाओं, अंधविश्वासों, तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, चमत्कार आदि की अधिकता है।

अरुणाचली समाज में पुजारी की प्रभावशाली भूमिका होती है। पुजारी को विभिन्न समुदायों में पृथक–पृथक नामों से संबोधित किया जाता है। पुजारी आध्यात्मिक जगत और मानव जगत के बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। वह सभी संस्कारों और त्योहारों को संपन्न कराता है। कुछ संस्कार गीतों, उपासना गीतों और आख्यानों का कथन–वाचन तो केवल पुजारियों द्वारा ही किया जा सकता है, जनसाधारण के लिए इनका कथन–वाचन प्रतिबंधित है।

अरुणाचली समाज में युवागृह का विशेष महत्व है। युवागृह सामाजिक–धार्मिक जीवन का केंद्रीय स्थल है। प्रदेश के सभी समुदायों में युवागृह की अवधारणा है परंतु कुछ समुदायों में इसका अस्तित्व समाप्त हो चुका है। "युवागृहों में युवावर्ग को लोकजीवन, पौराणिक आख्यानों, लोकगीतों एवं लोककथाओं तथा युद्ध का प्रशिक्षण दिया जाता है। युवागृह आदिवासी समाज की सांस्कृतिक गरिमा और परंपरागत मूल्यों को सुरक्षित–संरक्षित करनेवाली बहुद्देश्यीय सामाजिक संस्था है। अरुणाचली लोकसाहित्य की वाचिक परंपरा को अक्षुण्ण रखने में इन युवागृहों की महत्वपूर्ण भूमिका है" (वीरेन्द्र परमार– अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, 2009)।

अरुणाचल के लोकसाहित्य में जीवन से पलायन अथवा वैराग्य भाव नहीं है बल्कि जीवन जीने की कला विद्यमान है। सामुदायिकता की भावना, उत्सवधर्मिता और लोककल्याण की भावना अरुणाचली लोकसाहित्य की प्रमुख विशेषताएं हैं। कुछ जनजातियों में तो मृत्यु को भी एक उत्सव के रूप में समारोहपूर्वक आयोजित किया जाता है। यहां के लोकसाहित्य में श्रोताओं या पाठकों को बांधे रखने की अपूर्व क्षमता है क्योंकि उसमें रोचक घटनाओं, चमत्कारी महापुरुषों एवं दैवीय अनुभूतियों का वर्णन होता है। अरुणाचली लोककथाओं में जानवर और मनुष्य आमने–सामने बातें करते हैं, एक–दूसरे के सुख–दुख में शामिल होते हैं तथा एक–दूसरे की सहायता करते हैं। पशु–पक्षियों, प्राकृतिक शक्तियों और भूत–प्रेतों का मानवीकरण कर इन लोककथाओं द्वारा ईमानदारी, नैतिकता, सच्चाई इत्यादि मानवीय मूल्यों का संदेश दिया गया है। प्रदेश में प्रचलित लोकनृत्यों के द्वारा धार्मिक संदेश संप्रेषित किये जाते हैं। प्रदेश में प्रचलित लोकोक्तियों व मुहावरों में हजारों वर्षों के जीवनानुभवों से अर्जित ज्ञानराशि निहित रहती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

11. अरुणाचल प्रदेश किस संस्कृति का अक्षय केंद्र है?
12. अरुणाचल के सभी समुदायों में किस पूजा का विधान है?
13. अरुणाचली समाज में आध्यात्मिक जगत और मानव जगत के बीच मध्यस्थ का काम कौन करता है?
14. युवाओं को लोकजीवन, पौराणिक आख्यानों तथा युद्ध का प्रशिक्षण कहां दिया जाता है?

टिप्पणी

> **गतिविधि**
>
> अपने क्षेत्र के युवागृह में जाइए और वहां के अनुभवों पर स्थानीय पत्र–पत्रिका के लिए आलेख तैयार कीजिए।

> **क्या आप जानते हैं?**
>
> अरुणाचल प्रदेश की राजधानी ईटानगर का नाम यहां स्थित एक किले के आधार पर किया गया है। यहां स्थित ईटा किला का निर्माण 14–15वीं शताब्दी में किया गया था।

4.5 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि अरुणाचल का लोक जीवन वैविध्यपूर्ण है। प्रकारांतर से वहां के सभी आदिवासी समुदाय प्रकृति पूजक अथवा ब्रह्मवादी हैं। प्रदेश की वाचिक परंपरा में लोक साहित्य की उन्नत विरासत सुरक्षित है। लोकगीतों एवं लोककथाओं में जीवन के सभी रंग विद्यमान हैं। प्रणय गीतों में आत्मदान व आत्मोत्सर्ग की भावनाएं प्रबल हैं। लोक नृत्य प्रदेशवासियों के जीवन के अभिन्न अंग हैं। नृत्यों के द्वारा वे लोग अपनी भावनाओं को अभिव्यंजित करते हैं। लोक नृत्यों की प्रस्तुति सामूहिक रूप में की जाती है। यहां का समाज समूहवाद में आस्था रखता है, व्यक्तिवाद का जीवन में कोई महत्व नहीं है। प्रदेश की वाचिक परंपरा में संसार की सभी वस्तुओं की उत्पत्ति के संबंध में मिथक मौजूद है। अरुणाचली अपनी बातों को तथ्यपरक व प्रमाणपुष्ट बनाने के लिए लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग करते हैं।

अरुणाचल के लोक साहित्य में जीवन से पलायन नहीं बल्कि जीवन के प्रति अनुराग है। यहां के गीत जलप्रपात के निर्मल जल की भांति निर्दोष व कल्मषरहित हैं, कथाएं कल्पनाप्रसूत होते हुए भी जीवन–यथार्थ से साक्षात्कार कराती हैं। मिथक कथाओं में अरुणाचली समाज की भावनाएं, आस्था और विश्वास प्रतिबिंबित होते हैं। लोकोक्तियां गागर में सागर के समान हैं जिनमें शताब्दियों के अनुभव व ज्ञान की गंगा लहराती रहती है।

4.6 मुख्य शब्दावली

- **किरात** : पूर्वी मिलाय़ क्षेत्र के निवासी।
- **वधू–मूल्य परंपरा** : वर पक्ष द्वारा कन्या पक्ष को दी जाने वाली निश्चित राशि।
- **देशांतर गमन** : दूसरे देश के लिए प्रस्थान।
- **मिथक** : प्राचीन प्रचलित कथाएं।
- **आबो–तानी** : अलौकिक शक्तियों से पराक्रमी महापुरुष।

टिप्पणी

- महायान एवं हीनयान : बौद्ध धर्म की विचारधाराएं।
- मुर्गा युद्ध : दो मुर्गों को आपस में लड़ाकर दांव लगाना।

4.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 83
2. किरात
3. झूम
4. आबो तानी की
5. छह
6. मिश्मी
7. युद्ध नृत्य
8. तीन
9. नारथोन
10. जानवरों को
11. आदिवासी
12. प्रकृति पूजा
13. पुजारी
14. युवागृहों में

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मिथक क्या है? बताइए।
2. युद्ध नृत्य किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. 'आबो तानी' क्या है? समझाइए।
4. प्रकृतिपूजक अथवा ब्रह्मवादी आदिवासी समुदायों के नाम लिखें।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अरुणाचल प्रदेश के लोक जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. अरुणाचली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन करें।
3. अरुणाचल प्रदेश के लोक नृत्यों का वर्गीकरण करें तथा उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

4. अरुणाचल के लोक साहित्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
5. अरुणाचल में लोकप्रिय प्रणय गीतों की मुख्य विशेषताएं क्या हैं? वांचो और नोक्ते प्रणय गीतों के संदर्भ में व्याख्या करें।

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. श्री वीरेन्द्र परमार, *अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य,* राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–110002.
2. श्री ताई न्योरी, *हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द आदीज।*
3. श्री माता प्रसाद, *मनोरम भूमि : अरुणाचल।*
4. श्री जे.एन. चौधरी, *अरुणाचल पेनोरेमा।*
5. डॉ. वेरियर एल्विन, *मिथ्स ऑफ द नॉर्थ–ईस्ट फ्रंटियर ऑफ इंडिया।*
6. श्री पी. थंकप्पन नायार, *ट्राइब्स ऑफ अरुणाचल प्रदेश।*

इकाई 5 हिंदी और पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 लोक साहित्य का परिभाषीकरण
5.3 लोक साहित्य की विधाएं
5.4 पूर्वोत्तर और हिंदी लोक साहित्य की तुलना का आधार
5.5 असमिया और हिंदी लोक साहित्य
5.6 अरुणाचल और हिंदी का लोक साहित्य
5.7 मणिपुर और हिंदी का लोक साहित्य
5.8 मेघालय और हिंदी का लोक साहित्य
5.9 त्रिपुरा और हिंदी का लोक साहित्य
5.10 मिजोरम और हिंदी लोक साहित्य
5.11 नागालैंड और हिंदी लोक साहित्य
5.12 सारांश
5.13 मुख्य शब्दावली
5.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.15 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

किसी भी बोली और भाषा के विकास का पहला चरण लोक साहित्य ही है। यह साहित्य समाजगत एवं स्फूर्त होता है। सामाजिक अवस्थाओं के विकास के साथ–साथ इसमें वस्तुगत और व्यवस्थित अभिव्यक्ति होती है– यह कह देने से ही स्पष्ट हो जाता है कि लोक साहित्य में कला और संरचना संबंधी तत्वों पर ध्यान नहीं दिया जाता। लोक की सत्ता को लेकर भी भ्रम की स्थिति बनी हुई है। डॉ. रवींद्र भ्रमर ने लिखा है– "इस शब्द के प्रचलित अर्थ दो हैं–एक तो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जन साधारण। साहित्य और संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है। इस दृष्टि से केवल गांवों ही नहीं, वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज जो अपने परंपरा–पोषित रीति–रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है, लोक का प्रतिनिधित्व करता है।" (डॉ. रवींद्र भ्रमर, *हिंदी भक्ति साहित्य में लोक तत्व*)

प्रश्न यह है कि क्या लोक की अवधारणा से सभ्य और शिक्षित समाज को बाहर कर देना तार्किक है? देखा यह गया है कि लोक के विस्तार में सभ्य समाज भी शामिल है। लोक को ग्राम या जनपद का पर्याय मानना उचित नहीं है। लोक और लौकिकता में

अन्योन्याश्रित संबंध है। डॉ. श्याम परमार का कहना है कि, "वेद और लोक की भिन्नता ने वेद की प्रतिष्ठा के साथ लोक के स्वतंत्र महत्व को क्रमशः समुन्नत किया, किंतु आज लोक का प्रयुक्त प्रभाव वेदेतर संस्कृति के सीमित अर्थ से ऊपर उठ चुका है। उसकी प्रभावशीलता वैदिक और अवैदिक दोनों क्षेत्रों को स्वाभाविक रूप से स्पर्श करने लगी है।" (डॉ. श्याम परमार, *मालवी लोक साहित्य*) इस कथन के निहितार्थ में जाने पर लोक और वेद का भेद यह समझ में आता है कि लोक को सीमित अर्थ में नहीं देखना चाहिए। लोक साहित्य के विवेचन–प्रसंग में वेद और लोक का भेद यह है कि शास्त्रीय मूल्यों को ग्रहण करने वाला साहित्य अलग है और स्वाभाविक रूप से रचा जाने वाला साहित्य लोक साहित्य है। यह भेद हर बोली और भाषा के साहित्य में मिलता है क्योंकि यह समाज आधारित है। जहां कबीलाई समाज है और आदिम साम्यवादी व्यवस्था के तत्व पाए जाते हैं, वहां भी अभिव्यक्ति का यह भेद मिलता है।

क्या लोक शब्द अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का भावानुवाद है? इस सवाल पर भी अध्येताओं में मतभेद है। भारत में जन शब्द का प्रयोग लोक के निवासियों के संदर्भ में प्रयुक्त होता रहा है। जन शब्द किसी प्रदेश के निवासियों के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है और इसका सार्वभौमिक अर्थ भी है। हमारे यहां तीन लोक की अवधारणा के साथ बहुलोक की अवधारणा भी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि, "कुछ लोग मृत्यु के बाद कर्मों के अनुसार लोकों में जाने और फिर धरती पर जन्म लेने की कल्पना करते हैं। जिन्होंने सीमित परिणाम में शुभ कर्म किये हैं, वे चंद्रलोक जाते हैं।" इसका मतलब यह हुआ कि इस लोक के परे भी कई लोक हैं, पर हमारे अध्ययन का विषय यही लोक है। इसी लोक की मानव–जाति की आदिम, किंतु परिवर्तनशील सृजनात्मक प्रवृत्तियों के विवेचन तक यह सीमित है। कोई भी सृजन भाषा अथवा उसके आदिक रूप बोली में ही संभव है। इसलिए डॉ. शर्मा कहते हैं कि, "जिस अवस्था में उत्पादन के साधन बहुत पिछड़े होते हैं, वितरण के लिए विशेष भौतिक मूल्य प्राप्त नहीं होते, उसमें मानव समाज छोटे–छोटे समूहों में बंटा होता है। उस अवस्था में हर बारह कोस पर बदलने वाली बोलियां ही दिखायी देती हैं। बहत्तर कोस के दायरे में बोली और समझी जाने वाली भाषा की आवश्यकता ही नहीं होती। जनों में परस्पर विनिमय की आवश्यकता उत्पन्न होने पर उनकी किसी एक बोली के आधार पर परिनिष्ठित भाषा उत्पन्न होती है। भाषाओं के बारे में जितनी भी सामग्री प्राप्त है, उससे यही सिद्ध होता है कि बोली के आधार पर परिनिष्ठित भाषा का विकास होता है। परिनिष्ठित भाषा से बोलियां उत्पन्न नहीं होतीं। दो भाषाओं या बोलियों के मिश्रण से उत्पन्न होने वाले रूपों की बात अलग है।" (डॉ. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज)

विवेच्य प्रसंग में इस कथन का महत्व यह है कि बोलियां किसी मानक भाषा का आदि रूप हैं और लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य जैसा बंटवारा कुछ अटपटा सा लगता है। इसलिए मानक भाषा में लिखे गए साहित्य के समानान्तर लोक साहित्य को रखना ही उचित प्रतीत होता है। लोक साहित्य संहिताविहीन नहीं होता, इतना अवश्य है कि उसकी अपनी संहिता होती है, जो अपेक्षाकृत अधिक लचीली होती है। लोक साहित्य

टिप्पणी

जिस समाज में मूर्त होता है, उसकी संस्कृति उसमें फलीभूत होती है। इसलिए उसका एक सांस्कृतिक पक्ष भी है।

प्रस्तुत इकाई की विषय वस्तु पूर्वोत्तर भारत और हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य की समीक्षात्मक विवेचना है। अलग–अलग स्रोतों के लोक साहित्य में विषय वस्तु और अंतर्वस्तु संबंधी क्या समानता है और क्या असमानता है: यह देखना इस इकाई का प्रयोजन है। इसके तहत असमिया, अरुणाचली, मणिपुरी, मेघालयी लोक साहित्य सहित त्रिपुरा, मिजोरम तथा नागालैंड के लोक साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही उपरोक्त पूर्वोत्तरी लोक साहित्य से हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य का संबंध भी निरूपित किया गया है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- लोक साहित्य की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- लोक साहित्य की विविध परिभाषाओं से अवगत होंगे;
- लोक साहित्य की विविध विधाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- पूर्वोत्तर के लोक साहित्य के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- पूर्वोत्तर के लोक साहित्य और हिंदी लोक साहित्य के बीच संबंध जानेंगे।

5.2 लोक साहित्य का परिभाषीकरण

लोक साहित्य को परिभाषित करने की समस्या से हर अध्येता को जूझना पड़ा है। इसलिए कि लोक साहित्य प्रायः मौखिक होता है, किंतु सभ्यता के विकास के साथ उसे लिपिबद्ध करने की परंपरा का भी विकास हुआ है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सिर्फ मौखिक और स्मृति के बल पर चले आए साहित्य को लोक साहित्य मानने में संकोच करते हैं। इसका कारण यह है कि तब लोक साहित्य एक स्थिर और ठहरा हुआ साहित्य बन कर रह जाएगा। जबकि तथ्य बताते हैं कि लोक साहित्य में समय के साथ परिवर्तन होता रहा है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का कहना हैं कि, "सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान की जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं।" (डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका) यह परिभाषा भ्रम पैदा करती है। लोक साहित्य में निरक्षर ही नहीं, साक्षर जनता की अनुभूतियों और भावनाओं की भी अभिव्यक्ति होती है। सभ्यता के प्रभाव से यदि लोक साहित्य अछूता है तो उसे जड़ ही कहा जाएगा। यह भी देखने में आया है कि समय के साथ लोक साहित्य के पाठ–विश्लेषण की प्रक्रिया भी बदल जाती है। डॉ. रवींद्र भ्रमर कहते हैं कि "लोक साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे

बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहा है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता–सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुलमिल कर ही कहता है। संभवतः लोक साहित्य लोक संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिंब भी होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल लोक साहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना–पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है। लोक भाषा के माध्यम से लोकचित्त की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।" (डॉ. रवींद्र भ्रमर, हिंदी लोक भक्ति साहित्य) 'बहुधा' शब्द यहां इस बात का संकेत करता है कि लोक साहित्य हमेशा ही अलिखित नहीं रहता। उसके रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है, परंतु हमेशा नहीं। यदि सहजता लोक साहित्य का गुण और उसकी विशेषता है तो शिष्ट साहित्य के लिए सहजता कोई अवगुण नहीं है।

क्या लोक साहित्य अपने समय के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से बंधा या जुड़ा हुआ नहीं होता? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि समय का प्रभाव उसी तरह लोक साहित्य पर पड़ता है, जिस तरह शिष्ट साहित्य पर। क्या आदिम अवशेष अनिवार्य रूप से लोक साहित्य में बना रहता है? इस प्रश्न के उत्तर में डॉ. सत्येंद्र का कहना है कि, "लोक साहित्य के अंतर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती है, जिसमें आदि मानव के अवशेष मौजूद हों। परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध भाषागत अभिव्यक्ति, जो लोकमानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो...। ऐसा कृतित्व जो लोकमानस के समान तत्वों से युक्त हो। उसके व्यक्तित्व के साथ संबद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।" (डॉ. सत्येंद्र, मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन) क्या कोई अभिव्यक्ति कालनिरपेक्ष हो सकती है? परिस्थितियां ज्ञात–अज्ञात रचनाकार को समान रूप से प्रभावित और संवेदित करती हैं। लिखित और अलिखित दोनों ही रूपों के साहित्य को सामाजिक व ऐतिहासिक समस्याओं से जूझना पड़ता है। इसलिए लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए इतिहास और समाजशास्त्र के परस्पर संबंधों और उनके प्रभावों का विवेचन आवश्यक हो जाता है। लोक साहित्य के महत्व का रेखांकन करते हुए शंकरलाल यादव ने लिखा है–"विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहां–जहां इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गए, वहां उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक साहित्य ही दिशानिर्देश करता है।" (डॉ. शंकरदयाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य) इस निष्कर्ष में भले ही अतिव्याप्ति लगे, पर यह सच है कि किसी जाति के इतिहास को जानने का एक मजबूत आधार लोक साहित्य भी है। लोक साहित्य का अध्ययन मानव विज्ञान के लिए भी बहुत काम की चीज है। कितनी ही प्रकार की जातियों और उपजातियों की प्रवृत्तियों का अध्ययन लोक साहित्य के माध्यम से संभव हो सका है। इसलिए कुछ विद्वानों ने लोक साहित्य को जातीय साहित्य के निर्माण की एक कड़ी के रूप में देखने पर बल दिया है। कुछ विद्वान जाति विज्ञान में लोक साहित्य के योगदान को प्रमुखता से रेखांकित करते हैं।

टिप्पणी

5.3 लोक साहित्य की विधाएं

जनसामान्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए अनेक तरीकों और रूपों का उपयोग करता है। अभिव्यक्ति की प्रकृति के अनुसार जो स्वरूप निर्मित होता है, वही विधा के नाम से जाना जाता है। लोक साहित्य का अधिकांश रूप लोकगीतों और लोकवार्ताओं में अभिव्यक्त है, किंतु छोटी–छोटी कहानियों, लोकगाथाओं और दंतकथाओं में भी विपुल साहित्य उपलब्ध है। साहित्य का आदि रूप काव्य है और काव्य का आदि रूप गीत है, इसलिए कुछ विद्वान लोक साहित्य की मुख्य विधा लोकगीत को ही मानते हैं। डॉ. कुबेर मिश्र ने लिखा है कि, "लोककाव्य और लोकगीत में वही संबंध है, जो काव्य और गीतिकाव्य में होता है। काव्य की अनेक विधाएं होती हैं, जैसे मुक्तक काव्य, प्रबंध काव्य, गीति काव्य, नाट्य काव्य आदि। इस तरह काव्य और गीति काव्य का अंग–अंगी भाव का संबंध है। इनमें काव्य अंगी और गीति काव्य अंग है। इसी तरह लोक काव्य में भी अंग–अंगी भाव का ही संबंध है। लोक काव्य में लोक प्रचलित सभी काव्य विधाएं सम्मिलित हैं, जैसे लोकगाथा, लोक मुक्तक, लोक नाट्य, लोक चम्पू और लोकगीत।" (डॉ. कुबेर मिश्र, मॉरिशस के भोजपुरी लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन) इन विधाओं के अस्तित्व में आने के पीछे भी सामाजिक और ऐतिहासिक कारण ही हैं। लोक साहित्य की एक विशेषता यह है कि उसमें कथात्मकता अवश्य पायी जाती है। पद्य में गद्य की परंपरा लोक साहित्य से ही विकसित हुई प्रतीत होती है। कथात्मकता के कारण यह अनुमान लगाना आसान हो जाता है कि इनका रचयिता कोई न कोई अवश्य है। इनका सामूहिकीकरण बाद में होता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का कहना है कि "हमारी धारणा सर्वदेशीय लोकगीत अथवा गाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में यह है कि प्रत्येक गीत या गाथा का रचयिता मुख्यतः कोई न कोई अवश्य है। साथ ही कोई गीत या गाथा जनसमुदाय का प्रयास हो सकता है। लोकगाथाओं की परंपरा सदा से मौखिक रही है। अतः यह बहुत संभव है कि गाथाओं के रचयिताओं का नाम लुप्त हो गया हो।" (डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, मॉरिशस के भोजपुरी लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन) लोक साहित्य की विधाओं की विवेचन–प्रक्रिया के बीच यह तथ्य सामने आता है कि लोक साहित्य की विधाओं में एक प्रकार की अंतःसूत्रता है। विधाओं की आपसी आवाजाही के कारण भी सामाजिक और सांस्कृतिक ही हैं।

लोक साहित्य की प्रमुख विधा लोकगीत है। मानव ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए सबसे पहले इसी विधा का चुनाव किया। लोक गीतों में वैयक्तिक चेतना भी होती है और सामूहिक चेतना भी। इसमें विभिन्न वर्ग के लोग अपने सुख–दुःख को व्यक्त करते आए हैं। डॉ. श्याम परमार ने लिखा है कि, "इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं। जवानों में प्रेम की मस्ती आयी है। बूढ़ों ने मन बहलाये हैं। वैरागियों ने उपदेशों का पान कराया है। विरही युवकों ने मन की कसक मिटायी है। विधवाओं ने अपने एकांगी जीवन में रस पाया है। पथिकों ने थकावटें दूर की हैं। किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं। मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।" (डॉ. श्याम परमार, राजस्थानी लोकगीत, (पूर्वार्द्ध) प्रस्तावना)

अभिप्राय यह है कि लोकगीतों में सभी रंग हैं। लोकगीतों का विकास श्रम संस्कृति के साथ हुआ। इसके कई रूप हैं– जैसे संस्कार गीत, श्रम गीत, ऋतु गीत, सामाजिक और राष्ट्रीय गीत, आध्यात्मिक गीत, जाति गीत, मनोरंजन गीत और प्रकृति गीत। लोकगीत के बाद लोकगाथा लोक साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। प्रो. किटरेज के अनुसार, "लोकगाथाएं किसी घटना के कारण ही निर्मित होती हैं और उसके निर्माण के साथ ही साथ उस विशेष प्रांत के वातावरण की स्थानीयता का भी उसमें समावेश हो जाता है।" (प्रो. किटरेज, इंग्लिश एंड स्कॉटिश पापुलर बैलेड्स, इंट्रोडक्शन)

लोकगाथाएं किसी ऐतिहासिक घटना पर आधारित हों, यह आवश्यक नहीं है। किसी उद्देश्य विशेष के प्रचार के लिए भी लोकगाथाओं का अस्तित्व में आना संभव है। इसमें कल्पना की भूमिका होती है और कल्पना का कोई न कोई आधार अवश्य होता है। यह आधार रचयिता के सामाजिक सरोकारों और संस्कारों से भी जुड़ा होता है। इसके भी कई भेद हैं– जैसे वीर कथात्मक गाथा, प्रेम कथात्मक गाथा, रोमांच कथात्मक गाथा। लोकगाथाओं में कभी–कभी महाकाव्यात्मकता की अनुगूंज सुनाई देती है। इनमें चरित्र और परिवेश का भी चित्रण होता है। इससे साबित होता है कि शिष्ट साहित्य ने लोक साहित्य से बहुत कुछ सीखा है। लोककथा की परंपरा भी बहुत पुरानी है। वैदिक साहित्य में अनेक लोककथाएं मिलती हैं। लोककथा भी किसी न किसी उद्देश्य की संवाहक होती है। लोककथा को सामूहिक चेतना की उत्पत्ति माना जाता है। लोककथाओं का एक रूप पुराणों में भी मिलता है, पर उसके आधार पर कोई ठोस और वस्तुगत विवेचन नहीं किया जा सकता।

लोककथा का पहला प्रारूप पशुओं–पक्षियों की वार्ताओं के माध्यम से सामने आता है। इसका मूल स्वरूप नीतिकथा से संबंधित है। बौद्ध जातक कथाएं लोककथा का ही रूप हैं। किंवदंतियां भी एक सीमा के बाद लोककथा में बदल जाती हैं। श्रीराम शर्मा ने लिखा है, "लोककथा संज्ञा को साधारण अर्थवाचक संज्ञा के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। इसमें मौलिकता का अभाव होता है। यह सुनी जाती हैं और बार–बार कही जाती हैं। कभी–कभी कंठस्थ की गयी लोककथा में नये कथक्कड़ के द्वारा कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन कर दिए जाते हैं।" (श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य : सिद्धांत और प्रयोग)

लोककथाएं किसी एक जगह उत्पन्न होती हैं– ऐसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। समय और देश के साथ उनमें परिवर्तन होता रहता है। लोककथा में तथ्य की अपेक्षा भाव और बोध अधिक रहता है। लोककथाएं पहले अपने व्यवस्थित स्वरूप में अलग–अलग समूहों में जन्म लेती हैं और जब विभिन्न समूह एक–दूसरे के निकट आते हैं, तब उनके स्वरूप में परिवर्तन होने लगता है। सुधीर निगम के अनुसार, "लोक साहित्य में सबसे रोचक और सशक्त विधा लोककथा मानी जाती है। संस्कृत भाषा में लोककथा का शब्दिक अर्थ 'सर्वप्रिय कहानी' है। लोककथाओं का सांस्कृतिक विवरण और नैतिक बोध हर वाचक के साथ बदल जाता है क्योंकि उनमें स्थान परिवर्तित होने पर नये और स्थानीय प्रसंग जुड़ जाते हैं। विभिन्न कहानियों के टुकड़े मिल जाते हैं। लेकिन उनका मूल ढांचा और मुख्य कथानक वही रहता है। यही अपरिवर्तनशीलता उसकी पहचान है।"

(सुधीर निगम, संस्कृति) लोककथाओं में कई तरह के पात्र आते रहते हैं और उसमें चमत्कार भी जुड़ा रहता है। कुछ लोककथाओं की अंतर्वस्तु देश–काल सीमा को पार कर जाती है।

लोकनाट्य भी लोक साहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक है। इसे लोक के मनोरंजन का आडंबरहीन साधन माना गया है। इसकी परंपरा मध्यकाल में शुरू हुई। लोकोक्ति, लोकतुक्का, कहावतें, मुहावरे, पहेलियां, लघुगीत आदि भी लोक साहित्य के अंग हैं। इन्हें प्रकीर्ण विधा के अंतर्गत रखा जाता है। लोकोक्तियों में अनुभव और बुद्धि का समन्वय होता है तो पहेलियों में इन दोनों के साथ मनोरंजन और स्मरणशक्ति भी जुड़ जाती है।

5.4 पूर्वोत्तर और हिंदी लोक साहित्य की तुलना का आधार

लोक साहित्य का संबंध स्थान विशेष की ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों से भी होता है। इसलिए पूर्वोत्तर के लोक साहित्य से विवेचन के पहले इन पर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। असम का ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व सर्वमान्य है। इसका पूर्व नाम प्राग्ज्योतिषपुर था। महाभारत काल में इसके राजा भगदत्त थे। यहां सदियों से अनेक जातियों–प्रजातियों का संगम होता रहा है। अरुणाचल भी जनजाति बहुल प्रदेश है। डॉ. सी.ई. जीनी का कहना है कि, "वैष्णव धर्म में असमिया भाषियों के अतिरिक्त स्थानीय जनजातियों में 'वोक्ते' जाति के लोग भी सम्मिलित हैं। कहा जाता है कि 'वोक्ते' जाति के एक सरदार ने असम के महापुरुष शंकरदेव से दीक्षा ग्रहण की थी तथा अपना नाम नरोत्तम रखा था। इस दृष्टि से 'वोक्ते' एवं असमिया वैष्णव धर्म के अनुयायियों में सांस्कृतिक संपर्क और साम्य दिखायी पड़ता है।" (डॉ. सी.ई. जीनी, पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य) यहां अनुसूचित जनजाति के लोगों की संख्या अधिक है।

मिजोरम का अर्थ है, जाति विशेष के आदमियों के रहने का क्षेत्र। यहां भी जनजाति विशेष के लोग रहते हैं। त्रिपुरा में बौद्ध भी हैं, जनजातियां भी हैं और नवागत बांग्लाभाषी भी हैं। मणिपुर में हिंदू और मुसलमान तो रहते ही हैं, मेथेई जनजाति के लोग भी रहते हैं। इस जनजाति के लोग खेती करते हैं। इनकी सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपरा अति प्राचीन है। नागालैंड भी जनजाति बहुल प्रदेश है। यहां 14 जनजातियां पायी जाती हैं, जिनकी अपनी–अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है। इनका अपना–अपना लोक साहित्य भी है। मेघालय में गारो और खासी जनजातियों का बाहुल्य है। इनका भी अपना लोक साहित्य है। ये प्रदेश इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि भारत की सांस्कृतिक विविधता में एकता के अटूट सूत्र विद्यमान हैं। डॉ. सी.ई. जीनी का कहना सही है कि "यद्यपि शेष भारतवासियों के लिए पूर्वांचलजन पहाड़ी हैं, परंतु राष्ट्रीय ज्ञान की दृष्टि से यह अभिशाप है कि हम अपने ही राष्ट्रवासियों के विषय में ठीक से जानकारी नहीं रखते हैं।... पूर्वांचलवासी केवल पहाड़ी नहीं, वरन अनेक जनजाति बहुल हैं और उनकी अपनी पृथक–पृथक सामाजिक थातियां और सांस्कृतिक धरोहरें हैं।"

इन धरोहरों को जानने का सबसे सबल माध्यम लोक साहित्य ही है। यह भी देखना आवश्यक है कि इन प्रदेशों के लोक साहित्य से हिंदी का लोक साहित्य कितना मिलता–जुलता है और कितना भिन्न दिखायी देता है। एक ही मूल होने के बावजूद अनेक भेद जहां दिखायी देते हैं, वहां सामाजिक और सांस्कृतिक भेद को विश्लेषित करना आवश्यक हो जाता है।

हिंदी और पूर्वोत्तर के लोक साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन का अभिप्राय सिर्फ भिन्नता दिखाना ही नहीं है, बल्कि इनमें परस्पर साम्यता की तलाश करना भी है। देश की मूलधारा से कुछ मामलों में पूर्वोत्तर की साहित्यिक और सांस्कृतिक संपदा विलक्षण है। फिर भी बहुत–सी चीजें ऐसी हैं, जिनकी अंतर्वस्तु में अद्‌भुत समानता है।

लोक साहित्य में आस्था और धार्मिक विश्वास गुंथे होते हैं और उसमें मानवीय संवेदनाओं का अनगढ़ रूप ही मिलता है। लोक साहित्य का अपना एक चरित्र होता है। उसमें कुछ आदर्शों की सृष्टि होती है, जिस पर देशकाल का प्रभाव होता है। बालाशौरि रेड्‌डी ने लिखा है कि, "किसी जाति या संस्कृति की सही पहचान उसके लोक साहित्य द्वारा होती है। लोक साहित्य में जनता की आशाएं–आकांक्षाएं, सुख–दुख, हास–परिहास, आचार–व्यवहार तथा समग्र जीवन शैली प्रतिबिंबित होती है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत घटित होने वाला जीवन संघर्ष रमणीय ढंग से चित्रित होता है। शिशु के जन्म से लेकर जीवन के हर कदम पर होने वाले विविध संस्कार यज्ञोपवीत, शादी–व्याह, विदाई के प्रसंग, उत्सव एवं पर्वों के संदर्भ में गाये जाने वाले गीतों का अनुशीलन एवं परिशीलन करने पर ज्ञात होता है कि भारत के सभी प्रदेशों के जनपदों में गाये जाने वाले गीतों में अद्‌भुत साम्य है। भाषाई आचरण को हटा दें तो उसके भीतर स्पंदित होने वाली अनुभूतियां एक जैसी दर्शित होती हैं। यह एकसूत्रता हमारी सांस्कृतिक विरासत की पहचान है।" (बालशौरि रेड्‌डी, गवेषणा, अंक 95–96)

लोक साहित्य और संस्कृति का संबंध अटूट होता है। लोक साहित्य विचारशून्य नहीं होता और विचार परिवेशजन्य होते हैं। भौगोलिक परिस्थितियां भी लोक साहित्य के निर्माण में भूमिका निभाती हैं। पूर्वोत्तर भारत की जीवन शैली और कलात्मक अभिरुचियां अपनी अस्मिता को अलग कायम रखते हुए एक–दूसरे को अनुप्राणित करती रहती रही हैं। इसलिए भी इनके बीच समानता का होना स्वाभाविक है। जहां तक हिंदी के लोक साहित्य का इन पर प्रभाव का प्रश्न है, यह ध्यातव्य है कि बोलियां आपस में जब मिलती हैं, तब एक–दूसरे से बहुत कुछ ग्रहण करती हैं। भाषा के साथ भी यही बात लागू होती है। हिंदी प्रदेश बहुत बड़ा है और यहां भी अनेक बोलियां बोली जाती हैं। सबकी अलग–अलग अस्मिता है, फिर भी मानवीय संवेदना का स्तर प्रायः एक जैसा है। आंचलिक भेद मानवीय संवेदना को विभाजित नहीं कर सकता– यह लोक साहित्य के विवेचन से जाना जा सकता है।

5.5 असमिया और हिंदी लोक साहित्य

हिंदी के लोक साहित्य का अर्थ है, उसकी विभाषाओं में रचा गया लोक साहित्य। हिंदी के लोक साहित्य में लोकविश्वासों को बहुत महत्व दिया गया है। उसी तरह असमिया लोक साहित्य में भी लोकविश्वासों का बहुत महत्व है। बच्चे के जन्म के समय आग

जलाने से भूत–प्रेत बच्चे को हानि नहीं पहुंचा सकते–यह मान्यता असमिया लोकगीतों में भी है और भोजपुरी गीतों में भी अंतर्व्याप्त है। डॉ. विवेक कुमार ने लिखा है कि, "असम में नवजातक के जन्म के एक महीने के भीतर उसकी गणना की जाती है। ज्योतिषी को बुलाकर मंगल और अमंगल ग्रहों के बारे में जानकारी ली जाती है। मृत्यु के बाद मृतक का दहन किया जाता है और शोक मनाया जाता है। असमिया लोकगीतों में कहा गया है कि मृतक की आत्मा की शांति के लिए गोदान करना चाहिए। असमिया समाज के लोग पिता के मरने के एक महीने बाद तक केला नहीं खाते और मां के मरने के एक महीने बाद तक दूध नहीं पीते। इस तरह की सूचनाएं लोकगीतों के माध्यम से मिलती हैं।" (डॉ. विवेक कुमारः असमिया और भोजपुरी लोक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन) भोजपुरी और हिंदी की अन्य बोलियों के लोक साहित्य में भी बच्चे के जन्म के बाद ज्योतिषियों से उनके भविष्य के बारे में पूछने का उल्लेख मिलता है। यात्रा के समय बिल्ली के रास्ता काटने को अशुभ माना जाता है और कौए के बोलने को प्रिय के आगमन का सूचक माना जाता है। तुलसी के बिरवा को असमिया के लोकगीतों में पवित्र माना जाता है और हिंदी की बोलियों के लोकगीतों में भी। पान का बीड़ा दोनों की बोलियों में प्रेम और सम्मान का प्रतीक माना जाता है।

असम की एक बोली है मिसिंग, जिसके लोकगीतों के विवेचन से ज्ञात होता है कि मिसिंग जनजाति में विवाह तीन प्रकार से संपन्न होते हैं–सामाजिक प्रथा के अनुसार किया जाने वाला विवाह, जिसे हिंदी क्षेत्र में ब्रह्म विवाह कहते हैं, गंधर्व विवाह और सेवा–सत्कार के द्वारा किया जाने वाला विवाह। ये तीनों प्रथाएं हिंदी क्षेत्र में भी प्रचलित हैं। शर्मिला ताये ने लिखा है : "मिसिंग समाज का प्रमुख त्योहार है–'आलि आए लिगाङ। यह त्योहार हर साल फागुन महीने के प्रथम बुधवार को मनाया जाता है। 'आलि आए लिगाङ' का अर्थ इस प्रकार है–'आलि' का मतलब होता है, मिट्टी के नीचे होने वाली फसल, जैसे आलू, गाजर आदि। 'आए' अर्थात पेड़ों में लगने वाले फल' और 'लिगाङ' का अर्थ है बीज लगाने के लिए किया गया कार्य। एक साथ इसका अर्थ होता है–बीजारोपण का प्रथम दिन। इस त्योहार में जो नृत्य किया जाता है, उसे 'गुमराग पाक्षोंग' कहते हैं और जो गीत गाए जाते हैं, उसे 'ओय नितोम' कहते हैं।" (शर्मिला तापे, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013) फागुन का महीना हिंदी क्षेत्र में भी उल्लास और उमंग का महीना माना जाता है। यही समय है, जब आलू और गाजर या शकरकंद की फसल तैयार होती है। यद्यपि आज के विकसित टेक्नालॉजी के समय में आलू की फसल और पहले भी तैयार हो जाती है, किंतु जिस समय के लोकगीतों का हम विवेचन कर रहे हैं, उस समय मिट्टी के नीचे की फसलें फागुन में ही तैयार होती थीं। बीजारोपण की व्यंजना में जाएं तो यह अर्थ करना आसान हो जाएगा कि वर्षों बाद पति–पत्नी आपस में मिलते हैं और नयी सृष्टि की प्रक्रिया संपन्न होती है। ब्रज भाषा में जो फाग गाए जाते हैं, उसमें फागुन में यदि पति घर पर नहीं है तो पत्नी उसे कोसती है और कहती है कि उसके बाद आने वाली स्त्रियों की गोद भर गई, पर उसकी गोद अभी सूनी है क्योंकि उसका पति घर पर नहीं है। अवधी में भी जो फाग मिलते हैं, उसमें इस आशय की अभिव्यक्ति मिलती है–

'फागुन मास बिते कइसे सजनी
नहिं आये घर कंत हमार
बिरह अगिन तन जारी है
कोई सखि गावत कोई सखि नाचत
कोई सखिया रे उड़ावै बहार
बिरह अगिन तन जारी है।'

इस अवसर पर युवक–युवतियां ही नहीं, हर अवस्था के लोग नृत्य करते हैं। असम में और हिंदी क्षेत्र में फसल कटने पर त्योहार मनाया जाता है। इन्हीं स्थितियों को ध्यान में रखकर लोकगीतों को सार्वभौमिक कहा गया होगा।

असम के राजवंशी संपद्राय में नामाती गीतों का प्रचलन है। नोरोपी राम बरुआ के अनुसार "नामाती गीत राजवंशी संप्रदाय में विवाह कार्य संपादन के दौरान गाया जाता है। सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित विवाह कार्य हर जन संप्रदाय के लिए महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। प्रत्येक संप्रदाय के लोग विभिन्न रीति–नीति के माध्यम से स्त्री–पुरुष के शुभ मिलन स्वरूप इस विवाह कार्य को संपन्न करते हैं। राजवंशी संप्रदाय में भी विवाह कार्य को रोचक बनाने के लिए अनपढ़, निरक्षर लोगों ने नामाती गीत की सृष्टि की थी, जो पारंपरिक रूप से इस संप्रदाय में चली आ रही है। नामाती गीत की शैली को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ये गीत बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। इन गीतों के सर्जक राजवंशी जनगोष्ठी के लोग हैं जो अनार्य हैं और प्राक् ऐतिहासिक काल से विवाह कार्य सुचारु रूप से संपन्न करते आए हैं। इन गीतों के माध्यम से विवाह कार्य में रोचकता आयी है।" (नोरोपी राम बरूआ: समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013) विवाह से संबंधित गीत सभी संप्रदायों में पाए जाते हैं। भोजपुरी, अवधी और ब्रज में विवाह गीतों की भरमार है। विवाह के अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों में दूल्हा–दुल्हन का रूप वर्णन, हल्दी, विदाई आदि की प्रमुखता होती है। नामती गीतों में भी इन्हीं चीजों को विशेष महत्व दिया जाता है। एक गीत में कहा गया है कि 'मंडप के नीचे दुल्हा–दुल्हन बैठे हैं/उन्हें घेरे बैठे हैं लोग।' एक दूसरे गीत में कहा गया है कि 'ढोल बजाता है ढोलिया, ताल मिलता नहीं/फटा ढोल लेकर आते हैं सिर्फ चूड़ा खाने के लिए।' इस तरह के व्यंग्य बारातियों को संबोधित कर के किए जाते हैं और यह हिंदी के लोकगीतों में भी मिलते हैं। लड़की की विदाई होती है तो उसकी सहेलियां रोती हैं–इस पर एक व्यंग्य है, 'मेढक रोता है मिट्टी के नीचे टर्र–टर्र कर/दुल्हन के घर की लड़कियां रोती हैं किस बात को लेकर।' मतलब यह है कि हर लड़की को एक दिन अपना मायका छोड़कर ससुराल जाना ही है, फिर रोने–धोने से क्या फायदा। इस तरह की बातें हर बोली और भाषा के गीतों में कही गई हैं–भले ही उनके कहने का ढंग भिन्न–भिन्न हो। यह भिन्नता देश और काल के कारण भी होती है और गाने वाले की अपनी शैली के कारण भी।

असमिया लोक जीवन में डाक की उक्तियों का बहुत महत्व है। ऐसा लगता है कि डाक बहु प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे, जिनके पास जीवन और समाज के साथ मौसम का भी गहरा अनुभव था। जैसे हिंदी भाषी क्षेत्र में घाघ की कहावतें प्रसिद्ध हैं, वैसे ही असमिया

टिप्पणी

समाज में डाक की उक्तियां महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। डाक को लेकर कुछ विवाद भी हैं, पर असमिया समाज यह मानता है कि वे असम के ही थे। डाक कहते हैं–

रूप सोणा हीरार मूल्य
गंगार जलत नुहिके तुल्य
जिजने जत पाप आचरे
पर धन पर नारीक हरे
जदि गया गंगा स्नान करे
सकलो पापक तेखने हरे।

सोना, हीरा आदि का मूल्य कुछ भी नहीं है। जो जितना भी पाप कर्म करता है, दूसरों की संपत्ति, दूसरों की स्त्री का हरण करता है, वह व्यक्ति गंगा जाकर स्नान कर ले तो उसके सारे पाप धुल जाएंगे। गंगा इतनी पवित्र है कि उसे मुक्ति मिल जाएगी। (डाक : समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011) स्पष्ट है कि डाक धार्मिक व्यक्ति थे और गंगा को पापहारिणी मानते थे। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका गंगा–क्षेत्र से भी संबंध रहा होगा और वे भारतीय शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने खेती, ज्योतिष, यात्रा, स्त्री–पुरुष–लक्षण, अर्थनीति, धर्म और राजनीति के विषय में अपने विचारों को व्यक्त किया है। उनकी उक्तियां आज के वैज्ञानिक युग में भी वैसे ही सही साबित होती हैं, जैसे घाघ की कहावतें सत्य सिद्ध होती हैं। डाक कहते हैं कि जिनके जन्म लग्न में शनि होता है, उनके जीवन में पानी में डूब कर मरने की आशंका बनी रहती है। जिसके भाग्य में मंगल और रवि एक साथ रहते हैं, वह या तो कवि होता है या शास्त्रज्ञ।

यात्रा के विषय में डाक कहते हैं कि यदि रास्ते में सुंदर स्त्री मिल जाए तो यात्रा सफल हो जाती है। यदि यात्रा के समय मन दुविधा में पड़ जाए तो यात्रा नहीं करनी चाहिए क्योंकि तब यात्रा में विघ्न पड़ सकता है। वे यह भी कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने माता–पिता की पूजा करता है, वह कभी अर्थाभाव में नहीं रहता। खेती के बारे में डाक कहते हैं–

तितिरा षाढि जोपा रूआ कल
माहेके पषेके चिकुनावा तल
पात पसला लाभत वावा
लंकार वनिज घर ते पावा

अगर आप केले की खेती करना चाहते हैं तो फिर तीन सौ साठ केले के फल उगाइए, फिर महीने या फिर हफ्ते दो हफ्ते में उसकी सफाई कीजिए। केले के फल के साथ–साथ उसके पत्ते और अन्य चीजें भी मुनाफे में मिल जाएंगी। इस प्रकार आप घर बैठे ही दूर–दराज के व्यापार के समान मुनाफा उठा सकते हैं और धनवान बन सकते हैं। (डाक : समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011) यह कथन घाघ के कृषि–विषयक ज्ञान और तत्संबंधी उक्तियों तथा कहावतों की याद दिलाता है। सुश्री नन्दिता दत्त ने लिखा है: "इन वचनों का असमिया जन समाज में बहुत ही गहरा प्रभाव रहा है। यह असमिया प्राचीन लोकसंस्कृति का केवल निर्देशन ही नहीं है, बल्कि इन वचनों के माध्यम से प्राचीन

असमिया समाज का चित्र भी साफ झलकता है। यहां तक कि असमिया मुहावरे, लोकोक्तियां आदि 'डाकर–वचन' से काफी हद तक प्रभावित रही हैं। असमिया साहित्य के साथ–साथ हिंदी और बंगाली साहित्य के विद्वान भी डाक के वचनों को अपना धरोहर मानते हैं। इनका असम में 'डाकर–वचन' तो बंगाल में 'खनार वचन' तो कहीं हिंदी में 'घाघ की उक्तियां नाम पड़ा है। अतः इन तीनों का आपस में सामंजस्य रहना स्वाभाविक है।" (नन्दिता दत्त : समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011) इससे लगता है कि ये तीनों वचन एक ही व्यक्ति के रचे हुए हैं, जबकि ऐसा नहीं है। घाघ ने धर्म विषयक बाते नहीं की हैं। राजनीति के बारे में भी उनकी उक्तियां नहीं मिलती। घाघ मूलतः और अंततः कृषि और मौसम वैज्ञानिक के रूप में सामने आते हैं। उनका कथन सार्वभौमिक महत्व रखता है। डाक का क्षेत्र विस्तृत है, पर घाघ की तरह वैज्ञानिक नहीं है। उनमें उपदेश भावना अधिक है और घाघ में यथार्थबोध गहरा है।

5.6 अरुणाचल और हिंदी का लोक साहित्य

अरुणाचल में अनेक जनजातियां रहती हैं। यहां कई बोलियां बोली जाती हैं। प्रायः अलग–अलग जनजातियों की अलग–अलग लोककथाएं हैं, जिनमें उनके विश्वासों और मिथकों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इन पर हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य का भी प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ. महेश सोनकिया ने लिखा है कि, "अरुणाचल में जितनी लोककथाएं प्रचलित हैं, उतनी शायद ही किसी अंचल में प्रचलित हों। इसका कारण जनजातीय विविधता ही है। अधिकांशतः ये कथाएं प्रकृति और वन्य प्राणियों से संबंधित हैं, किंतु उनका लक्ष्य मनुष्य और उसका समाज ही है। इन कथाओं में मनुष्य के लिए कोई न कोई संदेश अवश्य रहता है। इनमें रचयिता का अनुभव भी गुंजायमान रहता है। मानव जीवन से संबंधित लोककथाओं में यथार्थ बोध की झलक मिलती है। कुछ कथाएं ऐसी भी हैं, जिनमें चमत्कारों के प्रति आकर्षण दिखायी देता है।" (डॉ. महेश सोनकिया, अरुणाचल की लोककथाएं)

अरुणाचल की लोककथाओं में बाघ और बिल्ली की कथा बहुत प्रसिद्ध है। बाघा और बिल्ली पड़ोसी थे। एक दिन बाघ एक हिरन मार कर लाया, वह भूखा था। उसने बिल्ली से मांस पकाने के लिए कहा। बिल्ली पड़ोस में आग लेने गयी तो वहां चावल पक रहा था। उसने चावल पकाने वाली बुढ़िया से चावल खाने के लिए मांगा और फिर खाने में उसे देर हो गयी। उधर भूख के मारे बाघ का बुरा हाल था। उसने बिल्ली को मार कर खा जाने का निश्चय किया। यह खबर बिल्ली को मिल गयी और वह छिप गयी। तब से उन दोनों के बीच संबंध समाप्त हो गया और बाघ के भय से बिल्ली छिप कर रहने लगी। इस लोककथा का संदेश यह है कि कमजोर और बलवान की दोस्ती नहीं चल सकती। इस आशय की बहुत–सी लोककथाएं हिंदी प्रदेश की बोलियों में भी पायी जाती हैं। हां, उनके पात्र और स्थान बदले हुए दिखायी देते हैं।

अरुणाचल में एक जनजाति है नोक्ते, जिसका लोकपर्व है चालुलोकु। इस जनजाति के लोग देवता की उपासना करते हैं। अच्छी वर्षा होने पर फसल अच्छी होती है। गांव

के लोग कटाई–मड़ाई करने के बाद अपने जल देवता की पूजा करते हैं। यह पर्व तीन दिन तक चलता है। पहले दिन भोज्य पदार्थों का संग्रह किया जाता है। दूसरे दिन पकवान रांग देवता को अर्पित किया जाता है। "पर्व का तीसरा दिन 'थनलांगजा' के नाम से जाना जाता है। लोकनृत्य के क्रम को आगे बढ़ाते हुए इसी दिन युवा मंडली नृत्य करते हुए घर–घर जाती है। इस नृत्य मंडली में केवल लड़के होते हैं। गांव के प्रत्येक परिवार के सदस्य नृत्य मंडली के स्वागत में मांस और चावल से निर्मित मदिरा परोसते हैं। अंततः सभी युवा पुरुष मोरूंग में एकत्रित होकर वहां रखे विशाल ड्रम को जोर–जोर से पीटते हैं। ड्रम बजाकर यह संदेश दिया जाता है कि इस वर्ष का यह उत्सव समाप्त हुआ। नये वर्ष की मंगल कामना के साथ उत्सव का समापन हो जाता है। दूसरे दिन गांव के सभी लोग सामूहिक शिकार के लिए जाते हैं। यह विधान बुरी आत्माओं के क्षय और नवीन ऊर्जा के संचार के लिए किया जाता है।" (डॉ. अरुण कुमार पांडेय, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल, 2013)

हिंदी प्रदेश की बोलियों में इस तरह का कोई पर्व नहीं मनाया जाता। भौगोलिक कारणों से यह पर्व अलग है। वस्तुतः नोक्ते जनजाति का सामाजिक जीवन नदियों के किनारे विकसित हुआ है। भाषा के आधार पर नोक्ते जनजाति के अनेक भेद हैं। भाषिक विविधता के बावजूद नोक्ते अपने सामाजिक, सांस्कृतिक तथा परंपरागत रीति–रिवाज और लोक–कला में समृद्ध हैं। प्रकृति के सहचर होने के कारण जनजातीय समाज का जीवन उत्सवधर्मी होता है। ये लोग संसार की समस्त दुश्चिंताओं से दूर एक ऐसे भावलोक में रहते हैं, जो सर्वथा शुद्ध, सरल, सहज और निर्दोष है। इसलिए ये प्रत्येक दिन को जीवन के उत्सव के रूप में जीते हैं। हिंदी प्रदेश में भी कई ऐसे अंचल हैं, जहां के निवासी अपनी सांस्कृतिक विरासत को पर्वों और उत्सवों के माध्यम से बचाए हुए हैं। जिनके बारे में हमें लोककथाओं और लोकगीतों के जरिए जानकारी मिलती है। 'चोलुलोकु' जैसे अनेक पर्वों और उत्सवों की जानकारी अरुणाचल की जनजातियों की लोककथाओं के माध्यम से मिलती है।

अरुणाचल में एक कथा प्रचलित है, जिसके अनुसार एक गांव में बुद्धिमान सिंहफो रहता था। उसकी भैंस राजा के बाग में चली जाती थी। राजा ने चेतावनी दी कि अब यदि भैंस बगीचे में आएगी तो वह उसे मार डालेगा। सिंहफो ने कहा कि ठीक है, पर उसकी खाल आप मेरे लिए रखें। भैंस के मारे जाने पर वह खाल लेकर एक निर्जन वन में जाकर एक पेड़ पर चढ़ गया। शाम को दो चोर उसी पेड़ के नीचे आए और रुपए बांटने लगे। सिंहफो ने खाल को पीटना शुरू किया। उसकी आवाज सुनकर चोर थैली छोड़कर भाग गए। वह थैली लेकर राजा के पास आया और कहा कि मैंने भैंस की खाल बेच कर बहुत–सा रुपया कमाया है। अब राजा ने अपनी भैसों को मारकर चमड़े को बेचने के लिए भेजा, पर कोई खरीददार नहीं मिला। राजा को लग गया कि सिंहफो ने उसे मूर्ख बनाया है। राजा ने उसे एक पिंजड़े में कैद करके एक पेड़ पर टंगवा दिया। उसके किनारे एक नदी थी। राजा ने अपने आदमियों से कहा था कि कुछ दिन बाद इसे नदी में डुबो देना। फिर कुछ ही समय बाद एक घुड़सवार उधर से गुजरा तो उसने सिंहफो से पिंजड़े में रहने का कारण पूछा। सिंहफो ने उससे कहा कि जो भी इस पिंजड़े

में आएगा, वह राजा बनेगा और मैं राजा नहीं बनना चाहता। यदि तुम राजा बनना चाहो तो इस पिंजड़े में आ जाओ। इस तरह वह उसे पिंजड़े में डालकर राजा के पास आया और कहा कि आपके आदमियों ने मुझे गहरे पानी में नहीं डुबोया था, इसलिए एक ही घोड़ा मिला। राजा फिर उसकी चाल में आ गया और अपने दरबारियों के साथ पिंजड़े में लटक गया। सिंहफो ने सबकी रस्सी काट दी और सभी पानी में डूब गए। फिर तो सिंहफो राजप्रासाद में आराम से रहने लगा।

यह लोककथा यह संदेश देती है कि आदमी को लालच में नहीं पड़ना चाहिए और किसी अपरिचित पर विश्वास नहीं करना चाहिए। जिससे एक बार धोखा खा लिया जाए, उसकी बात में नहीं आना चाहिए, उससे सजग रहना चाहिए। हिंदी प्रदेश की अनेक लोककथाओं में इस तरह के संदेश बिखरे पड़े हैं। सच तो यह है कि हर लोककथा कोई न कोई संदेश अवश्य देती है।

अरुणाचल प्रदेश में आपातानी लोककथा में शेर और बंदर की कहानी प्रचलित है। इसके अनुसार एक दिन एक बंदर एक घने जंगल में भोजन की तलाश कर रहा था। इस क्रम में वह जंगल के बीच में पहुंच गया। अचानक एक भूखा शेर उसके सामने आ गया। शेर ने बंदर से कहा कि मैं तुझे खाऊंगा। बंदर के सामने कोई बचने का उपाय नहीं था। उसने शेर से कहा कि ठीक है, पर कुछ दूर साथ चलने दीजिए। शेर मान गया। फिर जब शेर उसे खाने के लिए कहा तो उसने कहा कि आप मुझे पर्वत शिखर पर ले चलें और वहीं मेरा भोजन करें। शेर पहाड़ की चोटी पर कुछ देर आराम करने लगा। अब बंदर को अपनी मृत्यु निकट दिखायी दे रही थी। उसने पवनदेव से प्रार्थना की। बंदरों के देवता दोगी–लिपंग ने उस निरीह बंदर की प्रार्थना स्वीकार कर अचानक भयंकर आंधी उठायी। आंधी इतनी तीव्र थी कि वृक्षों की शाखाएं टूट–टूट कर भूमि पर गिरने लगीं। झंझावात के प्रभाव से पेड़ धरती को स्पर्श करने लगे। तूफान के कारण धूलकण उड़ने से दिन में ही अंधेरा हो गया। उचित अवसर का लाभ उठाकर बंदर एक वृक्ष पर चढ़ गया। वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाने लगा और चिल्ला–चिल्ला कर अपने भाई–बंधुओं को सावधान करने लगा। उसकी चेतावनी से सभी जानवर और बंदर सचेत हो गए। कहा जाता है कि उसी समय से बंदर और पक्षी जब भी शेर को देखते हैं या शेर की गंध या आहट उन्हें मिलती है तो अपने असामान्य व्यवहारों को प्रकट कर वे इसकी सूचना अन्य प्राणियों को दे देते हैं। हिंदी में भी इस आशय की अनेक लोककथाएं मिलती हैं।

डॉ. महेश सोनकिया ने लिखा है कि, "अरुणाचल प्रदेश की इस तरह की लोककथाओं में कमजोर और बुद्धिमान जानवरों की बुद्धिमानी का पता चलता है। हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य में भी कमजोर, किंतु बुद्धिमान जानवरों और पक्षियों ने कई बार बलवान पशुओं से अपनी जान बचायी है।" (डॉ. महेश सोनकिया, अरुणाचल की लोककथाएं) इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि बलवान पशु प्रायः मूर्ख होते हैं और बुद्धिमान पशुओं के झांसे में जल्दी ही आ जाते हैं। हिंदी प्रदेश में प्रचलित सियार और शेर की लोककथा को इसी कोटि में रखा जा सकता है। इसमें एक सियार अपनी बुद्धिमत्ता से शेर को कुएं में उसकी परछाईं दिखाकर झांसे में डाल देता है और अपनी जान बचा लेता है।

इस प्रदेश की एक और प्रसिद्ध लोककथा है–झील का रहस्य। यहां 'लेक ऑफ नो रिटर्न' नामक एक झील है, जिसके पास एक सुंदर गांव था। इस गांव के लोग बहुत खुशहाल थे। एक दिन गांव वालों ने एक ऐसी मछली को पकड़ा, जो काफी विशाल थी। लोगों ने उसे पकाकर आपस में बांटा। बस एक औरत और उसके पोते को वह पकी हुई मछली नहीं मिली। उस शाम गांव का मौसम बदल गया। आसमान में घने बादल छाने लगे और थोड़ी देर में ही तीव्र गति से वर्षा होने लगी। रह–रह कर बिजली भी चमकने लगी थी। सभी गांव वाले आराम से सो गए, पर बुढ़िया को चिंता होने लगी। और इसलिए उसे नींद नहीं आ रही थी। तभी उसे एक आवाज सुनायी दी। गौर से सुनने पर एक बूढ़ा कुछ कहते हुए सुनायी दिया। वह बूढ़ा गांव छोड़कर भाग जाने को कह रहा था। बूढ़ी और उसके पोते ने वैसा ही किया। भागते–भागते उन्हें पेड़ों के गिरने की भयंकर आवाज सुनायी दे रही थी। धीरे–धीरे पूरा गांव डूब गया और बूढ़ी और उसका पोता बच गए। कहते हैं कि उस झील से विचित्र–सी आवाजें आने लगीं। जिस मछली को गांव वालों ने खाया था, वह एक प्रेन नाम के ड्रेगन का बच्चा था। पहले यह माना जाता था कि जो वहां जाता है, वह मर जाता है, पर अब वह दर्शनीय स्थल बन चुका है। डॉ. महेश सोनकिया के अनुसार, "यह लोककथा लोक विश्वास पर आधारित है और इसके पीछे एक संदेश भी है। जब गांव वालों ने अनोखी मछली देखी तो उन्हें उस पर शंका करनी चाहिए थी। यह अकारण नहीं था कि बूढ़ी और उसके पोते को वह मछली खाने को नहीं मिली। लोक विश्वास तो यह भी था कि कोई हवाई जहाज भी उसके ऊपर से गुजरता था तो जा नहीं पाता था। आज के वैज्ञानिक युग में ये बातें निराधार लगती हैं, किंतु इसके पीछे जो अंतर्वस्तु है, उसे ध्यान में रखना आवश्यक है।" (डॉ. महेश सोनकिया, अरुणाचल की लोककथाएं) हिंदी प्रदेश में इससे मिलती–जुलती लोककथाएं नहीं मिलतीं। इसका कारण भी परिवेश है। लोक विश्वास कभी–कभी एक खास क्षेत्र तक सीमित रहता है। इस लोककथा के साथ भी यही बात लागू होती है। इसका एक पक्ष अवश्य हिंदी क्षेत्र की लोककथाओं से मेल खाता है। वह यह कि बिना सोचे–विचारे किसी चीज को नहीं खाना चाहिए या उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। साथ ही यह भी संदेश है कि किसी सामूहिक कार्य में किसी को छोड़ना नहीं चाहिए। यदि बूढ़ी और उसके पोते को मछली दी गयी होती, तो हो सकता है कि परिणाम कुछ और होता।

5.7 मणिपुर और हिंदी का लोक साहित्य

पूर्वोत्तर के राज्यों में मणिपुर का लोक साहित्य सबसे समृद्ध और बहुआयामी है। हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य से इसकी कई अर्थों में साम्यता भी दिखायी देती है। इसके लोक साहित्य में प्रतिरोधी चेतना के दर्शन होते हैं। मणिपुर के लोक साहित्य में उपदेश या प्रचार की भावना का अभाव मिलता है। इसका कारण यह हो सकता है कि इसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति मिलती है। इसके लोकगीतों में दाम्पत्य प्रेम, जीवन संघर्ष और जीवनबोध की अभिव्यक्ति मिलती है, जो इस अंचल के लोक साहित्य से इसे विशिष्ट बनाती है। हिंदी प्रदेश में जहां धान की रोपनी होती है, वहां के लोकगीतों और मणिपुर के लोकगीतों में साम्यता मिलती है। अवधी क्षेत्र में एक रोपनी गीत प्रचलित है–

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. परंपरा–पोषित रिवाजों व आदिम विश्वासों के प्रति आस्थावान व्यक्ति को क्या कहा जाता है?
2. हमारे यहां 'लोक' संबंधी कौन–सी अवधारणा है?
3. "लोक साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है," किसका मत है?
4. लोकवार्ता किसका स्वरूप है?
5. वोक्ते जाति के लोग कहां रहते हैं?

जहिया से आयों पिया तोहरी महलिया
रतिया दिनवा करौ टहलिया रे पियवा
देहिया झरानी मोरी करति टहलिया
सपना में सुख कै सपनवा रे पियवा
बखरी कै हरा दुहैं रात दिनवा
तबहूं न भरपेट भोजनिया रे पियवा
चिपरी पाथन मोरि अंगुरी खियानी
तबहूं न तन पै कपड़ावा रे पियवा।

(लोकगीतों की क्रांतिकारी चेतना, सं. विश्वमित्र उपाध्याय)

धान रोपते हुए एक गरीब परिवार की औरत अपनी व्यथा कहती है। इससे स्पष्ट है कि यह परिवार सामंतवादी शोषण का शिकार है। इसके समानांतर एक मणिपुरी लोकगीत को रख सकते हैं–

साबी इंबुडो नुंगशिवा
थलेन माजा पामुबा
नुंगशि नसुंग लांगगिनी
कल्लक मायोद याबदा
नुजा थौदांग ओइजागे
वाई कौबा हाइजारोई
ङमदे कौबगादा सोनजारोई
पामु नहाक थक्कीनि

(समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013)

एक विरहिणी कहती है कि मेरे स्वामी! मेरे प्रियतम! मैं तुम्हारे लिए सब दुख सहन कर सकती हूं। मैं तुमसे कभी यह नहीं कहूंगी कि मैं दुखी हूं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूंगी। अवधी गीत में विरहिणी अपना दुख व्यक्त करती है और मणिपुरी गीत में विरहिणी पति से कुछ नहीं कहती, उसकी प्रतीक्षा में दिन काटती है।

हिंदी प्रदेश और मणिपुर के लोकगीतों में कटनी से संबंधित लोकगीत भी काफी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। फसल काटते समय अपने श्रमभार को कम करने के लिए स्त्रियां गीत गाती हैं। एक अवधी गीत में स्त्री खेत में फसल काटने के लिए जाने की अनिच्छा व्यक्त करती है–

झोकता बहै पुरवइया मोर अंचरा उड़ा जाय
अरे मोर अंचरा उड़ा जाय, हां, मोर अंचरा उड़ा जाय
गेहुंआ काटे हम ना जइबै, हाथ मां लइके हंसिया
चाहे जायें सास ननदिया या नदी के भइया
हो हम ना जइबै, हो हम ना इबै, हो हम ना जइबै

(डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, अवधी के लोकगीत और शिल्प–सौंदर्य)

स्त्री खेत में काम करने से मना क्यों करती है? यह इस गीत में स्पष्ट नहीं है। पारिवारिक कलह भी इसका कारण हो सकता है। दूसरी ओर मणिपुर की स्त्री है, जो खेत की कटाई करने का हठ करती है। कुछ लोग इसे परिवेशगत संदर्भों से भी जानते हैं। एक गीत में स्त्री कहती है–

चींङु खेईयुम लाइयिंथौगी
खालै मरोचाने याल्लोहे हो यानसे
योइबू खोइमोल लाइरेम्बीगी
खालै मरोचन याल्लोहे यानसे
इपा लौनि याल्लोहे हो यानसे।

(समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013)

इसमें स्त्री दूसरी स्त्रियों से धान की कटाई करने का आह्वान कर रही है। कहा जाता है कि एक देवता की बेटी ने धान काटने के लिए पृथ्वी पर आने की बात की थी, तभी से यह गीत गाया जाता है।

मणिपुर में अनेक उत्सव और पर्व मनाए जाते हैं और सभी उत्सवों और पर्वों पर अलग–अलग गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में मणिपुर की समूची संस्कृति निखर उठती है। यहां के लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए हिंदू और मुसलमानों के लोकगीतों को अलग किया गया है। किंतु दोनों में सामान्य तत्व यह है कि ईश्वर में विश्वास के साथ मणिपुर के लोग श्रम में गहरी आस्था रखते हैं। कथा–संदर्भित गीतों का वर्गीकरण मीतै व मुसलमानों के नाच संबंधी गीत, पेना गाने की लोकगाथा संबंधी गीत, खोंजोम पर्व संबंधी गीत, माईराङ कुले लोकगाथा और गीत, मीत और मीतै मुसलमानों के व्यंग्य गीत, पहाड़ी लोकगीत, कबुई लोकगीत, थादौ जाति के लोकगीत तथा ताङखुल जाति के लोकगीत के रूप में प्रमुख रूप से किया जाता है। जमुना सुखाम ने लिखा है– "मणिपुर जैसे छोटे राज्य में कई जातियां, जनजातियां और उनके रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषाएं और आस्थाएं हैं। प्राचीन काल से ही मणिपुरी लोग देवाताओं की पूजा करते आए हैं। यह पूजा मूलतः मंदिरों आदि में आयोजित की जाती है और इनमें पुजारी पूजा करते हुए घोषणा करते हैं। इस घोषणा को 'हाई लाओबा' कहते हैं।" (जमुना सुखराम, समन्वय पूर्वोत्तर, जनवरी 2013)

मणिपुर के श्रम गीतों और ईश्वर विषयक गीतों के बाद प्रेम संबंधी लोकगीतों की संख्या सबसे अधिक है। यही स्थिति हिंदी प्रदेश के लोकगीतों में भी है। फर्क यह है कि मणिपुरी लोकगीत में संयोग के गीत अधिक हैं और हिंदी प्रदेश की बोलियों में विरह के गीत अधिक हैं। इसका कारण भी परिवेशजनित ही है। मणिपुर के लोग अपने आसपास ही रहकर जीविकोपार्जन करते हैं। धान वहां की मुख्य फसल है। इसलिए उसकी कटाई के गीतों का अधिक पाया जाना स्वाभाविक है। मणिपुरी लोकगीतों में हिंदी प्रदेश के लोकगीतों की अपेक्षा उल्लास का भाव अधिक है। यहां हिंदी प्रदेशों की भांति चरखा गीत भी प्रचलित हैं, जिससे पता चलता है कि स्वाधीनता संघर्ष में इनकी भूमिका क्या रही होगी।

मणिपुरी लोकगीतों से सामाजिक स्थितियों की भिन्नता का भी पता चलता है। यहां का एक लोकगीत है रैकनीक, जिसमें मां–बेटी नदी में स्नान करने जाती हैं। मां कहती है कि जैसे मैते लोग राजा के लिए सोने की डोली सजाते हैं, उसी तरह मैं अपनी बेटी रैकनीक के लिए सुंदर–सुंदर पुष्प लेने जाती हूं। फिर ऐसा समय आता है कि रैकनीक गरीब हो जाती है। तब वह कहती है कि जब मैं पहले धनी घर की बेटी थी, तब मैं थाली में भोजन करती थी। अब मैं बहुत गरीब होने के कारण धान कूट कर खाती हूं।

इसके अतिरिक्त मणिपुरी लोकगीतों में मृत्यु से संबंधित गीत भी गाये जाते हैं। एक गीत में कहा गया है कि आत्मा ने शरीर को छोड़ दिया और शरीर को जमीन में दफना दिया गया। इसके बाद उसने जंगल के पत्तों को चादर बनाकर ओढ़ा और कब्रिस्तान के पत्थरों को तकिया बनाकर उस पर सोई। एक दूसरे गीत का आशय यह है कि मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता। हिंदी में भी मृत्यु से संबंधित अनेक लोकगीत पाए जाते हैं, पर हिंदी में मृत्यु एक अनिवार्य परिघटना है। एक मणिपुरी गीत में कहा गया है–

कचुन इन सम
कजोन सम लौ ए
टेनना मिहै थालै इन सम ए
खुंङ्पुई थुक इन था लै इन सम ए।

(समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2001)

उक्त गीत में गायक कहता है कि हमारे निर्धन माता–पिता की मृत्यु हो गयी तो कौन–सी बड़ी बात है। इस दुनिया में जितने धनी व्यक्ति हैं, उनकी भी एक न एक दिन मृत्यु हो ही जाएगी। अर्थात मृत्यु निर्धन और धनी व्यक्ति का कोई भेद नहीं रखती। मृत्यु आने पर निर्धन अथवा धनी– सबको मरना ही है। हिंदी के लोकगीतों में भी इस तरह की बातें मिलती हैं। एक भोजपुरी लोकगीत में कहा गया कि–

"एक दिन सबके जाये के परी
जमराज के समनवा
तब करबा कवन बहनवा ना
मति सतावा केहू के।"

इससे साफ हो जाता है कि मणिपुरी लोकगीतों की अंतर्वस्तु में भी वही अवधारणा है, जो हिंदी लोकगीतों में है। एक गीत प्रेमिका की आकस्मिक मृत्यु पर है, जिसमें प्रेमिका की तुलना पानी से की गयी है। अर्थात पानी स्थिर नहीं रहता। मृत्यु किसी को स्थिर नहीं रहने देती। इतना होने के बाद भी ये गीत आध्यात्मिक नहीं हैं। इनका स्वर पूरी तरह लौकिक ही है।

मणिपुर के लोक साहित्य का एक रूप वहां के रास में भी दिखायी देता है। इस रास का संबंध ब्रज के लोक साहित्य से जुड़ा हुआ है। प्रो. हजारीममु सुवदनी देवी के अनुसार, "मणिपुरी रासलीला के पीछे एक कथा प्रचलित है। मणिपुर के राजा भाग्यचंद्र को स्वप्न में श्रीगोविंदजी के दर्शन हुए। स्वप्न में श्रीगोविंद जी ने राजा से अपनी एक मूर्ति निरूपित

करने को कहा। श्रीगोविंद जी के इस आदेश को शिरोधार्य करते हुए राजा ने 'काइना' पर्वत से कटहल का एक पेड़ कटवाया और उससे श्रीगोविंद जी की मूर्ति बनवाई, जैसी स्वप्न में इन्हें दिखाई दी थी। 1771 के कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष को एकादश तिथि को श्रीगेविंद जी का अभिषेक हुआ। अभिषेक के दिन से पूर्णिमा तक लगातार पांच दिन कांचीपुर में रासमंडल आयोजित किया गया। यह मणिपुर में आयोजित प्रथम रासलीला थी। तब से आज तक मणिपुर में रासलीला नृत्य की परंपरा चली आ रही है।" (प्रो. हजारीममु सुवदनी देवी, समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011)

इसकी परंपरा चाहे जब से भी हो, पर इस पर प्रभाव ब्रज का ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोलहवीं सदी में ब्रज की रासलीला की चर्चा मणिपुर में पहुंची और वहां के धार्मिक लोगों ने उसे अपना लिया। प्रो. जहारीममु सुवदनी देवी के अनुसार, "रासलीला में नाट्यशास्त्र में उल्लिखित कथानक विकास की अवस्थाएं पूरी तरह प्राप्त होती हैं। प्रारंभ में वृंदावन की शोभा का बखान होता है। वृंदावन वर्णन के साथ मंडली सजाना, दीप जलाना और पुष्प बिखेरना आदि क्रियाएं संपन्न होती हैं। इसके पश्चात कृष्ण अभिसार होता है। इसके अंतर्गत श्रीकृष्ण कुंज में आते हैं और बांसुरी वादन करते हैं। यह गोपियों के लिए आह्वान का संकेत होता है। स्पष्ट है कि इससे कार्य आगे बढ़ता है। तभी कृष्ण का आगमन होता है और लीला शुरू होती है।... मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियां आने लगती हैं, किंतु उन्हें मर्यादा का ध्यान दिलाकर लौट जाने के लिए कहा जाता है।" (प्रो. हजारीममु सुवदनी देवी, समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011)

ब्रज में रासलीला लगभग इसी तरह होती है, पर वहां गोपियों को लौट जाने को नहीं कहा जाता है। ब्रज में अनेक रास मंडलियां हैं, जो कृष्ण और गोपियों की कथा को जन–जन तक पहुंचाती हैं। इस तरह मणिपुरी लोक साहित्य पर हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। जो थोड़ा–बहुत फर्क दिखायी देता है, वह भौगोलिक और सांस्कृतिक–सामाजिक परिवेश के कारण है।

5.8 मेघालय और हिंदी का लोक साहित्य

मेघालय में गारो और खासी भाषा में लोक साहित्य भरा पड़ा है। इन भाषाओं पर हिंदी का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। खासी भाषा के एक गीत के माध्यम से हम हिंदी प्रदेश की विभाषाओं के लोक साहित्य से उसकी तुलना कर सकते हैं–

का तिङआब ङुर मा सिम का डॉन
काम स्नेउ दूर कुम मिन्ता
का डाव का लॉङ बा वलेई ऊ डॉम
बा पिन्यॉक यु मासी
हाडेन बा का ला डेप फाह यॉक
खूबौर शू ब्रेउ का ब्याह
का ऑङ बा डेई खूबौर ऊ वलेई
हा ऊ मासी का फाह।

नामार जिङथॉक जॉङ का यू क्लेई
ऊ क्लेई ऊ ला बितार
ऊ ताप या का डा खेउ रानेइ
हाङता का यौ शिर्ता।

(समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011)

एक कौआ नामक सुंदर पक्षी था। वह आज की तरह बदरंग नहीं था। कौआ काला क्यों हुआ? इस प्रश्न का उत्तर इस लोकगीत में दिया गया है। कौवे ने गाय को उकसाया और उसके जरिये आदमी को संदेश भिजवाया, जो ईश्वर नहीं चाहता था। इसलिए ईश्वर उस पर क्रोधित हुआ और उसके ऊपर काला बर्तन रख दिया। इससे वह सदा के लिए काला हो गया। कौवे ने ईश्वर को धोखा दिया, इसलिए उसका स्वर भी खराब हो गया। यह लोकगीत उपदेशपरक है। उपदेश यह कि ईश्वर को धोखा देने वाला कभी चैन से नहीं रह सकता।

मेघालय में गारो भाषा में लोक साहित्य का भंडार है। मौखिक परंपरा से प्राप्त कहावतों, लोककथाओं, लोकगीतों और लोकोक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि इस प्रदेश में लोक साहित्य ने जीवन को कितना प्रभावित किया है। यहां पहेलियां, इतिहास कथाएं और पारंपरिक कथाएं भी पायी जाती हैं। राजवीर सिंह के अनुसार, " 'कत्ता आगान' गारो जनजाति की महाकाव्यात्मक लोकगाथा है। इसमें उस पौराणिक भूमिका का वर्णन है, जहां वीर पुरुषों और महिमामयी नारियों का निवास था। जहां लोग ज्ञानी और साहसी थे। इन गाथाओं में प्राचीन गारो नायकों– 'दिक्की' और 'बांदी' की वीरता का वर्णन है। वाचिक गारो काव्य के अंतर्गत विविध अवसरों से संबंधित लोकगीत विद्यमान हैं। जैसे– झूम, खेती के विविध अलग–अलग चरणों से संबंधित गीत 'बांगाला', शस्य पर्व के समान होने वाले 'दनी–दोका' और 'अझेया' समारोहों के गीत, गृह प्रवेश के समय गाये जाने वाले गीत तथा लोकगीत इत्यादि।" (डॉ. अनीता पंडा, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013) गारो भाषा में उपलब्ध लोक साहित्य के माध्यम से यहां के समाज को ठीक से समझा जा सकता है। वैसे ही जैसे हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य के माध्यम से इस प्रदेश के सामाजिक आर्थिक जीवन को समझा जा सकता है। खेती से संबंधित गीत हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य की समृद्धि को दर्शाते हैं। इससे पता चलता है कि यहां के जीवन–यापन का मुख्य आधार खेती ही है। मेघालय में खेती से संबंधित गीत पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि यहां आजीविका का मुख्य साधन खेती ही है। औद्योगिक विकास के बावजूद इन गीतों को लोग झूम कर गाते हैं और अपने हर्ष–उल्लास और अपनी वेदना को व्यक्त करते हैं।

मेघालय की गारो भाषा में जो लोक साहित्य मिलता है, उसमें चिकित्साशास्त्र के बारे में भी जानकारी है। हिंदी प्रदेश में घाघ की कहावतों में भी स्वास्थ्य संबंधी जानकारी मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि लोक साहित्य के रचयिता स्वस्थ रहने के लिए अपने अनुभव को बांटते थे और उसकी एक महत्वपूर्ण वाचिक परंपरा आज भी मौजूद है। आज भी गांवों में ऐसे लोग मिलते हैं, जो अनेक रोगों के उपचार की अचूक दवा बता देते हैं। गारो भाषा

में इस विषय में जो साहित्य मिलता है, उस पर अन्य क्षेत्रों के लोक साहित्य का भी प्रभाव लक्षित किया जा सकता है।

मेघालय में एक लोककथा प्रचलित है, जिसके अनुसार पहले चांद में दाग नहीं था। सूरज, हवा और आग उसके परिवार के सदस्य थे। चांद के अलावा तीनों समझदार थे और चांद बुरी संगत में फंस गया। उसके परिवार के सदस्यों ने उसे बहुत समझाया, पर उस पर कोई असर नहीं पड़ा। एक दिन उसे सभी को छोड़कर घर से जाना पड़ा। डॉ. अनीता पंडा के अनुसार, "कहा जाता है कि अच्छा काम करने वाला सुखी रहता है और बुरा काम करने वाले व्यक्ति को कोई सुखी नहीं बना सकती। धीरे–धीरे चांद का मन भी बुरे कामों से ऊब गया। उसे अपने दोस्तों के बीच उठना–बैठना अच्छा नहीं लगता था। चांद को अक्सर अपने प्यारे से परिवार की याद आती थी। अपनी मां की हर सीख उसके कानों में गूंजती। उसे कुछ समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे। उसने घर जाने का निर्णय ले ही लिया। कई वर्षों के बाद वह अपने घर पहुंचा। घर में उसे कोई पहचान न सका क्योंकि लगातार बुरे कामों के कारण उसकी चमक–दमक फीकी पड़ गयी थी। उसके चेहरे की रौनक उड़ गयी थी। उसे घर वापस आया देखकर घरवाले खुश नहीं हुए क्योंकि उसने बुरे कामों से पूरे परिवार का नाम मिट्टी में मिला दिया था।" (डॉ. अनीता पंडा, समन्वय पूर्वोत्तर, जनवरी 2013)

इस लोककथा में सूरज, आग और हवा को चांद की बहन कहा गया है। सूरज चांद के आने पर खुश हुई। कुछ दिन तक तो परिवार के लोग ठीक से रहे, पर एक दिन चांद ने अपनी मां से कहा कि इस संसार में मुझसे सुंदर कोई पुरुष नहीं है और सूरज से सुंदर कोई स्त्री नहीं है। इसलिए मैं सूरज से शादी करना चाहता हूं। जब यह बात सूरज को मालूम हुई तो उसने गुस्से में आकर सामने पड़ी गर्म राख चांद के मुंह पर फेंक दी। अंगारों से भरी राख से चांद का चेहरा जल गया और उस पर काले धब्बे पड़ गए। इससे चांद बहुत शर्माया और इसलिए वह दिन में नहीं निकलता क्योंकि वह अपनी बहन सूरज को अपना मुंह नहीं दिखा सकता। इस लोककथा को उपदेशपरक कह सकते हैं क्योंकि इसमें यह संदेश निहित है कि बुरे काम करने वाले का चेहरा समाज में काला हो जाता है। हिंदी में सूरज और चांद दोनों ही पुरुष हैं। चांद पर इंद्र के साथ सहयोग का आरोप है और कहा जाता है कि गौतम ऋषि ने क्रोध में आकर चांद पर मृगछाल से प्रहार किया था, जिससे उसके शरीर पर काला–काला दाग है।

मेघालय की एक लोककथा में दो बहनों की स्पर्धा का वर्णन है। इसमें लोक विश्वास को अधिक महत्व दिया गया है। माना जाता है कि शिलांग के देवता उ लई शिलंग की जुड़वां बेटियां अपार सौंदर्य की स्वामिनी थीं। कायव बड़ी थी और कानट छोटी थी। बड़ी बहन अधिक बुद्धिमान और अड़ियल थी। किसी बात पर समझौता नहीं करती थी। वह छोटी पर हमेशा हुक्म चलाना चाहती थी। छोटी बहन उसकी हर बात मान लेती थी। इसलिए उसका मन और बढ़ता जाता था। एक बार दोनों शिलांग की चोटी पर थीं कि उन्हें एक सुंदर दृश्य दिखायी दिया और वे उस पर रीझ गयीं। बड़ी बहन ने वहां जाने के लिए स्पर्धा की और कहा कि देखें, कौन पहले पहुंचता है। छोटी

बहन स्पर्धा के लिए तैयार नहीं थी, पर जब बड़ी ने जिद की, तब उसने चुनौती स्वीकार कर ली। डॉ. अनीता पंडा ने लिखा है, "दोनों बहनें नदी के रूप में बदल गयीं। अपने शांत और विनम्र स्वभाव के कारण कानट ने सीधा और सरल रास्ता चुना, जिसमें हल्के मोड़ थे। वह आराम से अपनी यात्रा तय करती हुई शिलांट नामक स्थान पर पहुंची, जहां दोनों बहनों ने मिलना निश्चित किया था। वहां कायब को न पाकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ।" (डॉ. अनीता पंडा, समन्वय पूर्वोत्तर, जनवरी 2013) हुआ यह कि अपने घमंड में डूबी कायव ने लंबा रास्ता चुना और देर से पहुंची। बहन को पहले देखकर उसे बड़ा दुख हुआ क्योंकि वह हमेशा अपनी बहन को कमजोर समझती थी। उसने निश्चय किया कि वह कहीं नहीं जाएगी। उसने अपने आप को जमीन पर इतनी जोर से पटका कि वह पांच शाखाओं में बंट गयी। जब बड़ी बहन के निश्चय का ज्ञान छोटी बहन को हुआ, तब उसने भी घर न लौटने का फैसला किया। अब दोनों पवित्र नदी बन गयीं और वहां तीर्थ स्थल बन गया। हिंदी प्रदेश में इस तरह की लोककथाएं तो नहीं हैं किंतु एक ही मां–बाप से उत्पन्न बहनों से संबंधित लोककथाओं में अमीरी और गरीबी का उल्लेख अवश्य मिलता है। इस तरह की लोककथाओं में धनी बहन गरीब हो जाती है और गरीब बहन धनी हो जाती है और फिर दोनों में आपस की प्रतिस्पर्धा खत्म हो जाती है। इन लोककथाओं का एक खास अर्थ यह है कि किसी को अपने से कमजोर नहीं समझना चाहिए।

मेघालय में पनार भाषा भी बोली जाती है। इस भाषा की एक लोककथा हिंदी प्रदेश की लोककथा से मिलती–जुलती है। खासी राज्य में एक राजा थे। उनके बच्चे नहीं हो रहे थे। बहुत दिनों बाद जब उनकी रानी गर्भवती हुई, तब उन्होंने देखभाल के लिए रानी की बड़ी बहन को बुलवा लिया। वह बहन ईर्ष्यालु स्वभाव की थी। जब बच्चा पैदा हुआ, तब उसने कह दिया कि रानी के 'फेटार' पैदा हुआ है। ऐसा एक बार नहीं, तीन बार हुआ। रानी की बहन ने उन तीनों बच्चों को नदी में बहा दिया, जो एक आदमी को मिले और उसने उनका पालन–पोषण किया। उनमें दो भाई थे और एक बहन थी। एक दिन एक आदमी ने उन्हें बताया कि एक पक्षी पानी में उंची आवाज निकालता है और गाना गाता है। दोनों भाई उसको खोजने निकले, पर घर लौटकर नहीं आए। तब बहन उनको खोजने निकली। लड़की ने कुछ आसमानी चीजों को प्राप्त किया और उसके भाई भी उसे मिल गए। फिर उन तीनों ने उसे अपने बगीचे में रख दिया। डॉ. संतोष कुमार ने लिखा है कि, "एक दिन राजा और रानी इन चीजों को देखने के लिए उनके बगीचे में आए। उसी वक्त उस पक्षी ने ऊंची आवाज में गाया और गाने के माध्यम से सारी सच्चाई बतायी कि कैसे रानी की दीदी ने झूठ बोला और वह तीनों उनके अपने बच्चे हैं। उसी वक्त रानी ने अपने बच्चों को अपनी बाहों में भर लिया और उन्हें साथ लेकर घर चली आयी। राजा ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि वह रानी की दीदी को उसके किये की सजा दें। इसके बाद वे सपरिवार खुशी–खुशी रहने लगे।" (डॉ. संतोष कुमार, समन्वय पूर्वोत्तर, 2011) हिंदी प्रदेश में कौआ हंकनी की कहानी इससे मिलती है, जिसमें एक राजा के सात रानियां थीं। छह को बच्चा नहीं हुआ। सबसे छोटी को दो बच्चे हुए तो

छहों ने मिलकर उसे गाड़ दिया और उसकी जगह ईंट और पत्थर रख दिए। राजा को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने छोटी रानी को घर से निकाल दिया। कुछ दिनों बाद बेटा आम हुआ और बेटी बेइल हुई। बेइल का फूल लेने जब बारी–बारी से छहों रानियां गयीं तो फूल आकाश में चला गया और जब छोटी रानी फूल लेने गयी तो उसका आंचल फूल से भर गया। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। फिर आम और बेइल की जड़ खोदी गयी तो एक बेटा और एक बेटी निकली। सारा माजरा जानकर राजा ने दोनों बच्चों और छोटी रानी को अपना लिया तथा छहों को उनके किये की सजा दी।

5.9 त्रिपुरा और हिंदी का लोक साहित्य

त्रिपुरा का लोक साहित्य लोक कथाओं में अधिक अभिव्यक्त हआ है। यहां अनेक मिथकीय कथाएं भी प्रचलित हैं। लोगों का विश्वास है कि यहां गंगा मकर पर पांव फैलाकर खड़ी है। त्रिपुरा में गंगा के बारे में इस तरह की धारणा हिंदी प्रदेश के प्रभाव से ही बन सकती है। यहां दो दिलचस्प कथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि शिव अपने गणों के साथ काशी जा रहे थे। शाम हो गयी तो यहां रुक गए। अपने गणों से उन्होंने सुबह उठने के लिए कहा और विश्राम करने लगे। शुभ्रांशु दाम ने लिखा है कि, "दूसरे दिन सुबह होने से पहले ही शिवजी तैयार हो गए, पर उन्होंने देखा कि उनके निर्देशानुसार कोई भी जागा नहीं, तैयार होना तो दूर की बात है। वे बहुत देर तक इंतजार करते रहे और अंत में अत्यंत क्रोधित हो गए। अपनी रुद्र मुद्रा धारण कर सभी देवगणों को उन्होंने शाप दिया कि जो जिस अवस्था में हैं, पत्थर बन जाए। वे कुल एक करोड़ थे। शिव उन देवी–देवताओं को यहां त्यागकर अपने गंतव्य काशी धाम की ओर चल पड़े।" (शुभ्रांशु दाम, समन्वय पूर्वोत्तर, जनवरी 2013) जाते–जाते भी वे अपने भक्तों के लिए अपनी मूर्ति छोड़ गए। शिव को देवताओं में उदार कहा जाता है। यह उनकी उदारता का ही प्रमाण है कि अपने भक्तों से नाराज होने के बावजूद उन्हें अपने से एकदम अलग नहीं किया। हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य में भी शिव के बारे में जो बातें मिलती हैं, वह इससे मिलती–जुलती हैं। पुराणों में तो उनकी उदारता की अनगिनत कहानियां हैं, जिसका प्रभाव भी लोक साहित्य पर देखा जा सकता है। त्रिपुरा में शिव की जो मूर्ति मिलती है, उस पर एक ओर उग्र भाव अंकित है और दूसरी ओर शांत भाव। शिव के यह दोनों रूप लोक साहित्य में उपलब्ध हैं। यहां के निवासियों को विश्वास है कि यहां का पर्वत कैलाश पर्वत के समान है। शिव इस तपोभूमि में विश्राम करते हैं। इसी कारण पास के शहर का नाम कैलाश शहर पड़ गया।

त्रिपुरा में इसी के साथ एक और लोककथा प्रचलित है। किसी गांव में कालू नाम का एक कामर रहता था। वह मूर्तियां बनाने का काम करता था। उसका दिन अच्छा नहीं गुजर रहा था। एक दिन उसके मन में संसार से मुक्ति का भाव जगा और वह सघन जंगलों में पथरीले मार्ग पर चल पड़ा। दिन भर चलने के बाद वह थक गया और एक चट्टान पर लेट गया। फिर स्वप्न में उसने एक सुंदर पर्वत कन्या को देखा। कालू ने पूछा कि देवी आप कौन हैं! देवी ने बताया कि यह मेरा विचरण क्षेत्र है। तुम कहां से

आये हो! कालू ने अपनी रामकहानी कह सुनायी कि मैं संसार से तंग आ गया हूं। फिर लेट गया। फिर उसने स्वप्न में देखा कि महादेव और पार्वती प्रकट रूप से सामने हैं। शिव के विचरण क्षेत्र को जानकर वह डर गया। मां पार्वती को दया आ गयी। उन्होंने शिव से प्रार्थना की कि उसे कैलाश ले चलें। पहले तो महादेव जी राजी नहीं हुए, पर पार्वती के बहुत कहने पर शिव ने शर्त रखी कि यदि वह सूर्योदय से पहले एक करोड़ देवी–देवताओं की मूर्तियां बना देता है तो उसे कैलाश ले चलेंगे। शिव जानते थे कि वह ऐसा नहीं कर पाएगा। धुन का पक्का होने और पार्वती के सहयोग के बावजूद वह एक करोड़ मूर्तियां नहीं बना पाया। शिव ने माया के बल से एक कौआ बुला लिया, जो कांव–कांव करने लगा। इससे यह लगने लगा कि सबेरा हो गया। मूर्तियां गिनी गयीं तो कम थीं। कालू शर्त हार गया। उसकी दुखभरी नजरों से कौआ भी पत्थर बन जाता है। उस समय से यह जगह उनकोटि नाम से प्रसिद्ध हो गयी। जाते–जाते देवाधिदेव कालू को यह आशीष दे जाते हैं कि जब तक उनकोटि का नाम रहेगा, तब तक कालू को भी लोग याद रखेंगे। वह जीवन के अंत तक वहां पर शिव–पार्वती की पूजा अर्चना करता रहा और अंत में मोक्षधाम की ओर चल पड़ा। (शुभ्रांशु दाम, समन्वय पूर्वोत्तर, जनवरी 2013)

हिंदी में शिव–पार्वती को लेकर इस तरह की अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं कि मार्ग में चलते–चलते किसी गरीब और बेसहारा को देखकर पार्वती द्रवित हो जाती हैं और शिव से उसके दुख के निवारण के लिए कहने लगती हैं। शिव पहले टालते हैं, फिर परीक्षा लेते हैं और उस पर अपना वरद हस्त रख देते हैं। शिव त्रिपुरा और हिंदी प्रदेश के सर्वमान्य देवता हैं– इस लोककथा से यह स्पष्ट होता है।

त्रिपुरा में एक लोककथा प्रचलित है, जिसमें वर्णन है कि एक गांव में एक किसान बहुत गरीब था। वह दूसरों के खेतों में काम करके अपने परिवार का भरण–पोषण करता था। एक दिन उसके खेत के मालिक ने उससे अधिक काम लिया और मजदूरी कम दी। उतने में उस दिन उसके परिवार का खर्च नहीं चल सकता था। इसलिए उसने खेत मालिक से और मजदूरी देने के लिए कहा। इस पर किसान मालिक गुस्से में आ गया और उससे कहा कि अब तुम मेरे खेत में काम नहीं करोगे। वह बहुत निराश हुआ और अपनी पत्नी से सारी कथा कह दी। पत्नी हिम्मती थी। उसने पति के साथ दूसरी जगह काम करना शुरू किया और धीरे–धीरे अपनी मेहनत के बल पर अपने को खुशहाल बना लिया। फिर दोनों ने कुछ खेत खरीदे और कुछ पशु भी बांध लिए। अब उनकी गणना गांव के धनी लोगों में होने लगी और उधर उसका पुराना खेत मालिक गरीब होने लगा क्योंकि जिस आदमी को उसने उसके स्थान पर रखा था, वह बेईमान निकला। जब भी खेत मालिक नहीं रहता था, वह मजदूर फसल को अपने घर उठा ले जाता था। साथ ही वह उसके खेत में मन से काम भी नहीं करता था। इससे उसकी आय घटती चली गयी। एक दिन ऐसा आया कि खेत मालिक को अपना खेत गिरवी रखने के लिए पुराने मजदूर के पास जाना पड़ा। उस मजदूर–किसान ने अपने पुराने मालिक को देखा तो उसे दया आ गयी। उसने पैसे देना तो स्वीकार कर लिया, पर खेत गिरवी रखने से मना कर दिया। किंतु उसकी पत्नी को पुराने दिन याद थे। उसने खेत मालिक से पूछा कि क्या

गारंटी है कि आप पैसे वापस कर देंगे? किसान ने अपनी औरत को समझाया और कहा कि सबके दिन समान नहीं होते। समय बड़ा बलवान होता है। भगवान ने कुछ सोचकर ही खेतमालिक को हमारे पास भेजा है। इसलिए इनका अपमान नहीं करना चाहिए। मैं इनके यहां इतने दिन रहा हूं और जानता हूं कि जब भी इनके पास पैसे होंगे, तुम्हारे रुपये वापस कर देंगे। खेत मालिक अपने किये पर बहुत शर्मिंदा हुआ और रुपये लेकर चला गया। इस लोककथा को उपदेशपरक कहा जा सकता है, पर इसके मूल में श्रम की महत्ता की स्थापना का भाव निहित है। ईमानदार आदमी मुश्किल से मिलते हैं। जो व्यक्ति इनकी पहचान नहीं कर पाता, वह परेशानी में पड़ जाता है– इस कथा का यही संदेश है।

एक दूसरी लोककथा के अनुसार किसी गांव में एक किसान परिवार रहता था। उसके पास एक बेटा था, जिसका नाम आयचुक था। आयचुक को पिता के साथ बचपन से ही खेती का काम देखना पड़ा। जिसके कारण वह पढ़–लिख नहीं पाया। अब किसान अपने बेटे को पढ़ाना–लिखाना चाहता था, जिससे उसकी सोई इच्छा पूरी हो सके। उसने अपने बेटे को पढ़ने के लिए शहर भेज दिया। उसी स्कूल में उसके गांव के एक शक्तिशाली जमींदार का लड़का भी पढ़ता था। आयचुक पढ़–लिखकर सफल व्यक्ति बन गया और उसे एक अच्छी सी–पत्नी भी मिल गयी तथा उससे एक सुंदर बेटा भी पैदा हुआ। उसकी कमाई के कारण परिवार की आर्थिक दशा में भी सुधार आ गया। फिर उसके माता–पिता के मन में धन का लालच आ गया। यह बात असफल जमींदार के लड़के को मालूम हो गयी। वह जानता था कि आयचुक के माता–पिता अंधविश्वासी हैं। इसलिए उसने इसका फायदा उठाने का विचार किया। जमींदार के लड़के ने एक आदमी को लालच देकर साधु वेश में भेजा। गांव के लोग उस साधु से हाथ दिखाते थे। जब आयचुक के मां–बाप को पता चला तो वे भी साधु से हाथ दिखाने गए। साधु ने उनका हाथ देखा और आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि तुम लोग तो लखपति बन सकते हो। आयचुक के मां–बाप ने कहा कि हमारे लिए लखपती बनना कहां नसीब है। साधु ने उनके कान में कहा कि तुम लोग लखपती बन सकते हो क्योंकि तुम्हारे घर में खजाना है। उसे पाने के लिए तुम्हें अपने पोते की बलि चढ़ानी पड़ेगी। लालच में पड़कर आयचुक के मां–बाप बेटे और बहू की अनुपस्थिति में पोता साधु को सौंप देते हैं। वह निर्ममता से उसकी बलि चढ़ा देता है। जब वे दोनों जमींदार के घर के पास से गुजर रहे थे, तब उन्हें साधु और जमींदार के बेटे के हंसने की आवाज सुनायी पड़ी। अब उनकी समझ में सारा मामला आ गया, पर वे कुछ कर नहीं सकते थे। जब आयचुक को पता चला तो उसने अपना सिर पीट लिया। इस तरह एक निर्दोष बालक की जान चली गयी।

हिंदी प्रदेश में भी अंधविश्वासों के चलते ही इस तरह की घटनाएं घटती हैं। इसलिए इन लोककथाओं का उपयोग अंधविश्वासों को दूर करने के लिए किया जा सकता है। त्रिपुरा में प्रचलित इन लोककथाओं का संबंध अंधविश्वासों से बहुत गहरा है और यही स्थिति हिंदी प्रदेश की भी है। त्रिपुरा में लोक नृत्य का महत्व भी कम नहीं है। लोककंठ से गाये जाने वाले लोकगीतों के साथ इन नृत्यों का आनंद कुछ और ही है। गोरिया, हांङराई और खारची पूजा यहां का मुख्य त्योहार है। कृषक समाज की

उत्सवधर्मिता यहां भी देखी जा सकती है। जैसे हिंदी प्रदेश में देवी जागरण को लेकर अनेक गीत हैं, वैसे ही त्रिपुरा में त्रिपुरेश्वरी देवी को लेकर अनेक गीत पाये जाते हैं। इन गीतों और हिंदी प्रदेश के माली गीतों में अद्‌भुत समानता है।

5.10 मिजोरम और हिंदी लोक साहित्य

मिजोरम पहले असम का एक भाग था, किंतु उसमें रहने वाली जनजातियों की अपनी सांस्कृतिक परंपरा और विरासत थी, जो लोक साहित्य के माध्यम से जानी जा सकती है। इस प्रदेश में वर्षों से एक जाति निवास करती है, जिसे दारलोड़ के नाम से जाना जाता है। यहां एक प्रसिद्ध पहाड़ है, रेइएक, जिसका अर्थ है अधिक समय तक शौच करना। लोकमान्यता के अनुसार इस पहाड़ पर भूत रहते थे। यहां की रानी का नाम खोलुआहल्ली था। उसका पति बानवीरा निम्न जाति का था। इस पहाड़ के पीछे छोरपियाल नाम की एक यहान थी, उस पर भी भूत रहते थे। मिजोउ लोककथा के अनुसार यहां भूतों ने हवा में युद्ध किया था। दारलोड़ जाति के लोग चोड्चेन मना रहे थे कि छोरपियाल चट्टान के भूतों ने उनपर आक्रमण कर दिया। एक दूसरी जाति के भूतों ने यह देखा और खोलुआहल्ली को बताने के लिए देशवाहक भेज दिया। फिर तो हवा में युद्ध शुरू हो गया। डॉ. अमिताभ सिकरवार ने लिखा है– "यह लोककथा प्रतीककथा भी हो सकती है। जनजातियां अपने विश्वासों को लेकर आपस में लड़ा करती थीं– इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। हो सकता है कि पहले इन पहाड़ों पर लोग भय के कारण न जाते रहे हों और उसका भुतहा नाम पड़ गया हो। दूर से देखने पर इन पहाड़ों पर ऐसा लगता रहा होगा कि हवा में युद्ध हो रहा हो। इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि जनजातियां अपने विश्वासों के प्रति अडिग थीं। (डॉ. अमिताभ सिकरवार, मिजोरम की लोककथाएं, अप्रैल 2013) इस विश्वास के अनुसार छोरपियाल चट्टान के भूतों ने रेइएक पहाड़ को तोड़ने की कोशिश की। रानी खोलुआहल्ली ने सभी नागरिकों को असली पक्षी का रूप धारण करने को कहा और वे हवा में युद्ध करने लगे। रानी ने मरने से पहले अपनी बेटी को नेता घोषित कर दिया। सामने वाले चट्टान के भूत छोलुआहल्ली की सहायता करना चाहते थे, पर डर के कारण कर नहीं पा रहे थे। रानी छोलुआहल्ली ने दारकोली और उनके समूह को भी इस युद्ध में लड़ने के लिए बुलाया फिर गांव के सभी लोग हवा में युद्ध करने लगे। खूब लड़ाई हुई। वे छोरपियाल चट्टान के भूतों पर जोर लगाकर दबाव डालने लगे। युद्ध का मुख्य स्थान लोड्नुआर नदी के बिल्कुल ऊपर था। शरीर के कई टुकड़े और कटे हुए सिर नीचे गिरने लगे। लोड्नुआर नदी के पानी में खून ही खून दिखाई देने लगा। आसपास के पत्थरों के छेदों में भी खून भरने लगा। सभी जगह खून से भरी हुई थी। कहा जाता है कि ग्रीष्म ऋतु के समय अब भी उनका खून दिखाई देता है। (ललमुभान ओमा साइलो, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013) वस्तुतः इस युद्ध का कारण वर्चस्व की स्थापना है। कबीलाई समाजों में इस तरह के युद्ध की कहानियां मिलती हैं। हिंदी और उसकी बोलियों में इससे मिलती–जुलती लोककथाएं नहीं मिलती।

लोककथाएं लोकजीवन में रचते–बसते समय लेती हैं और इस बीच उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। किंतु इसमें एक ऐतिहासिक सूत्र भी छिपा है, जो जनजातियों में होने वाले

संघर्षों का संकेत है। इस लड़ाई में छोरपियाल के भूत पराजित हुए और किसी तरह भागने में सफल हुए। जो भागे भी, वे बुरी तरह घायल हो गए। कहा जाता है कि इन भूतों ने रेइएक की रानी पर आक्रमण की हिम्मत नहीं की। इस लोककथा में कोई अंतर्कथा नहीं है और न वर्चस्व के अलावा इसका कोई और कारण ही नजर आता है। युद्ध में विजय की प्राप्ति होते हुए भी दुःख इस बात का था कि रानी की पुत्री उस भयंकर युद्ध में मारी गई, जिससे प्रसन्नता विषाद में बदल गई। अपनी इकलौती पुत्री की याद करती–करती रानी छोलुआहल्ली बहुत उदास हो गयी। कुछ भी नहीं सोच पाती थी। वह रेइएक पहाड़ के शिखर पर एक पत्थर पर रोज बैठने लगी थी। कहा जाता है कि उस पर बैठने की जगह को पहचाना जा सकता है। उसके ऊन का गोला रखने का स्थान भी दिखाई देता है। (ललमुभान ओमा साइलो, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013)

इस लोककथा का संदेश यह है कि वर्चस्व की लड़ाई चाहे कोई भी जीते, हानि दोनों तरफ की होती है। हिंदी लोककथाओं में तो नहीं किंतु हिंदी साहित्य में इस संदेश की अनुगूंज सुनी जा सकती है। पद्मावत में पद्मावती के जौहर के बाद अलाउद्दीन उसकी राख को आकाश में उड़ा देता है। उक्त लोककथा में रानी को जीत मिलती है, पर अपनी बेटी को खोकर जिससे वह अथाह प्यार करती थी। डॉ. अमिताभ सिकरवार ने लिखा है– "इस लोककथा के साथ कई उपकथाएं हैं, जिससे पता चलता है कि कथक्कड़ को इस क्षोभ की पूरी जानकारी थी। इसमें रानी दारल्वह्लली भी है, जिसने अपनी नौकरानी पारपादूकोली को अपना पालन–पोषण करने के लिए अपने मुहल्ले में रहने का स्थान दिया था। सामने वाले गांव में खुआङघाइ चट्टान पर भी भूत रहते थे। इस कथा को कहने वाली छूङदुली नाम की बुढ़िया थी, जो चुङल्लाङ गांव में रहती थी।" (डॉ. अमिताभ सिकरवार, मिजोरम की लोककथाएं) इस लोककथा की विशेषता यह है इसकी समाप्ति करुण रस में होती है। जीत के बाद रानी रोती है। उसे लगता है कि रेइएक पर्वत गिर जाएगा। वह उसकी सुरक्षा के लिए चिंतित है। इसमें न कोई नायक है, न खलनायक। न कोई सत्य का साथ दे रहा है, न असत्य का। यह जनजातियों का संघर्ष है, कबीलों का संघर्ष है, जिसे कथक्कड़ ने भूत के साथ जोड़कर रोचक बना दिया है।

मिजोरम में एक और लोककथा है, जिसमें एक साधारण आदमी और राजा की एक ही अवस्था के भिन्न–भिन्न परिणामों के बारे में बताया गया है। इस लोककथा का शीर्षक है, कोरदुमबेलग। कोरदुमबेलग बहुत कुरूप था। उसने अपने खेत के बाहर एक फंदा बनाकर रख दिया। एक दिन कोपल से छोटा एक काला पक्षी जिसका नाम वलूनतेह था, उसमें फंस गया। जब कोरदुमबेलग ने उसे पकड़ लिया तो पक्षी ने उससे कहा कि तुम मुझे छोड़ दो और शत्रा के महल के पास आकर कहो कि यदि तुम अपनी राजकुमारी का हाथ मुझे नहीं दोगे तो तुम अपने लोगों के साथ दुश्मनों के हाथ मारे जाओगे। राजा ने जब यह सुना तो गांव और अपनी रक्षा के लिए अपनी बेटी से कहा: "बिटिया रानी! अपनी सभी प्रजा और पिता को खोना चाहती हो या कोरदुमबेलग को अपनाकर अपने पिता और सभी प्रजा को पाना?" राजकुमारी असमंजस में पड़ गयी। उसे कोरदुमबेलग को पति के

रूप में स्वीकारना कतई पसंद नहीं था। यदि वह कोरदुमबेलग को नहीं अपनाती तो उसे अपने पिता और सभी प्रजा को खोना था। बेचारी ने अनिच्छा से उससे विवाह कर लिया। (एच. बानललोमा, समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011) फिर दोनों साथ–साथ रहने लगे, पर राजकुमारी कोरदुमबेलग को पसंद नहीं करती थी। एक दिन उसने राजकुमारी को भेजकर जाल मंगवाया और पानी में डाल दिया। उसमें एक मछली फंसी। मछली ने कहा कि मुझे छोड़ दो तो मैं तुम्हारी भलाई की बात बताऊं। छूट जाने पर मछली ने कहा कि नदी में कूदो नहाओ और चिकने पत्थर से शरीर को रगड़ो। कोरदुमबेलग ने वैसा ही किया और सुंदर हो गया। "जब वह घर पहुंचा तो उसकी पत्नी उसे बिल्कुल पहचान न पाई कि यही उसका पति है। उसकी पत्नी कहने लगी कि औरों के वो बड़े सुंदर सपूत देखने को मिलते रहते हैं। एक मेरे वो हैं, इतने बदसूरत और खूसट। आयेगा तो फिर यहीं न, उसके चेहरे को देखकर पूरी तरह ऊब चुकी हूं मैं। पति ने कहा,– मैं वही कोरदुमबेलग ही तो हूं। उसकी पत्नी बेहद आश्चर्य से आंखें फाड़–फाड़ कर देखने लगी। अब वह अपने पति से बेहद प्यार करने लगी।" (एच. बानललोमा, समन्वय पूर्वोत्तर, अक्टूबर 2011) कोरदुमबेलग के शरीर में आए परिवर्तन से उसका ससुर आश्चर्य में पड़ गया और पूरे प्रकरण के बारे में जानकारी हासिल की। फिर उसने भी मछली पकड़ी और उसके कहे के अनुसार नदी में नहाकर अपने शरीर को पत्थर से रगड़ा, पर वह सुंदर होने की जगह कुरूप हो गया। लोग राजा को देखकर डर के मारे भागने लगे। अंत में राजा ने अपनी राम कहानी सुनाई तो लोगों को विश्वास हुआ कि यही उनका राजा है।

इस लोककथा का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन ही प्रतीत होता है। हिंदी में इस तरह की या इस आशय की लोककथाएं नहीं मिलती। इसका कारण हिंदी प्रदेश और मिजोरम के परिवेश में निहित है। इसमें सार्वभौमिकता के तत्व कम हैं। हिंदी साहित्य का विकास भी इन प्रदेशों में अभी ठीक से नहीं हुआ जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि एक के लोक साहित्य का प्रभाव दूसरे के लोक साहित्य पर पड़ा है या पड़ रहा है। मिजोरम की लोककथाओं की पृथकता के दो प्रमुख कारण हैं– एक तो ऊंची जगह रहने के कारण अन्य भाषायी क्षेत्रों से इसका संपर्क कम है और दूसरे, इसका इतिहास भी अभी नया है। इसके लोक साहित्य का संरक्षण भी ठीक से नहीं किया गया। भूपेन्द्र राय चौधरी ने लिखा है– "जाति के आधार पर मिजो लोग पांच दलों में बंटे हुए हैं। प्रत्येक दल की अपनी–अपनी बोलियां हैं। जाति और बोलियों के आधार पर ये पांच हैं– लुसेइ, रालते, हमार, पांई और पदूहते। इनमें अनेक बोलियां होने पर भी लुसेइ गोय की भाषा मिजो या दुहलियान सामान्य भाषा है। यहां चकमा, लखेर रियांग, नेपाली भाषाओं का भी प्रचलन है। ईसाई मिशनरियों के कारण मिजो भाषा की लिपि रोमन है।" (भूपेन्द्र राय चौधरी, गवेषणा, अंक 94–96)

इन बोलियों का अपना लोक साहित्य भी है, जो अधिकांशतया लोककथा के रूप में ही पाया जाता है। लुशेइ से हिंदी का संपर्क जैसे–जैसे बढ़ रहा है, वैसे–वैसे इस क्षेत्र के लोक साहित्य का भी परिचय प्राप्त हो रहा है। लुसेइ पर हिंदी का प्रभाव अब दिखाई देने लगा है। डॉ. सी. इ. त्रीनी ने लिखा है– "ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी और लुशेइ दो

भिन्न–भिन्न स्रोतों से विकसित भाषाएं हैं। लुशेइ भाषा तिब्बती–बर्मी परिवार की कुकी–चीती की शाखा से संबंधित है। हिंदी भारोपीय परिवार की भारतीय ईरानी शाखा की भाषा है। इसके रूप निर्माण में उत्तरी भारत की विभिन्न बोलियों का योगदान तो है ही, क्योंकि मध्य प्रदेश की भाषा निरंतर विदेशी भाषाओं से प्रभावित होती ही है।" (डॉ. सी. इ. जीनी, पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य) यह स्थापना कुछ अंशों तक ही सही है। यह कहना सही नहीं है कि हिंदी भारतीय इरानी शाखा की भाषा है। हिंदी की स्वतंत्र सत्ता है। उसकी बोलियों की भी स्वतंत्र सत्ता है और उसमें रचे गए लोक साहित्य का भी अपना महत्व है। इस साहित्य में प्रतीकों और मिथकों का सार्थक और सोद्देश्य उपयोग किया गया है। इनमें मनोरंजन भी है, उपदेश भी है और प्रतिरोध भी है। दो भिन्न स्रोतों से विकसित होने के कारण मिजो लोक साहित्य और हिंदी लोक साहित्य में एकता के सूत्र खोजना संभव नहीं है।

5.11 नागालैंड और हिंदी लोक साहित्य

नागालैंड को राज्य का दर्जा 1963 में मिला। इसके पहले यह असम का एक जिला था। यहां एक दर्जन उपजातियां हैं और इससे अधिक भाषाएं बोली जाती हैं। स्पष्ट है कि मानक भाषा इसमें से कोई नहीं है। अपनी सामान्य अभिव्यक्ति के लिए यहां की जातियां जिस भाषा का उपयोग करती हैं, उसी में उनका लोक साहित्य भी मौखिक रूप से मौजूद है। अभी तक नागालैंड के लोक साहित्य के संकलन, संरक्षण और प्रकाशन का कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं हुआ है। परिणामतः उस पर किसी का ध्यान भी नहीं गया। फिर भी जहां इतनी जातियां हैं, इतनी भाषाएं हैं, वहां लोक साहित्य का उपलब्ध होना अनिवार्य है।

नागालैंड की प्रमुख भाषा नागामीज है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में नागा भाषाओं के समन्वय से अब एक नयी भाषा 'तेनदिये' आकार ग्रहण करने लगी है। डॉ. महेन्द्र शर्मा ने लिखा है– "पूर्वोत्तर राज्यों में नागालैंड का इतिहास नया है। इसलिए अलग से इसके लोक साहित्य का संकलन कठिन कार्य है। इस प्रदेश में भाषाओं/बोलियों की संख्या भी अधिक है। लोकगीत गायकों के विषय में ठीक–ठीक जानकारी न होने के कारण समस्याएं और भी जटिल हो जाती हैं। इसलिए इस विषय में काम करने वाले असम के लोकगीतों में नागालैंड के निवासियों की अभिव्यक्ति खोज लेते हैं। यद्यपि यह वैज्ञानिक दृष्टि से सही नहीं है क्योंकि असम की एक मानक भाषा है।" (डॉ. महेन्द्र शर्मा, नागालैंड के लोक साहित्य की पहचान की समस्या)

नागालैंड में एक जाति है 'यादौकुकि' जो मणिपुर, मिजोरम, असम, मेघालय आदि प्रदेशों में भी पाई जाती है। इस जाति को अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त है। साहित्यिक दृष्टि से यह भाषा के मामले में धनी नहीं है, पर इसका लोक साहित्य समृद्ध है। डॉ. सी. इ. त्रीती ने लिखा है– "नागाओं की उतनी ही बोलियां हैं, जितनी कि उनकी जातियां हैं। हर बीस मील पर जाति बदल जाती है। इसी तरह उनकी बोली भी बदल जाती है। सभी बोलियां एक–दूसरे से भिन्न होती हैं। इसलिए एक जाति वाला दूसरी जाति वाले की बात

नहीं समझ सकता, इशारे से ही समझता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक जाति में उप–जातियां बनती गयीं और उससे बाहर के किसी भी व्यक्ति पर उन्होंने विश्वास नहीं किया।" (डॉ. सी. इ. त्रीती, पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य) यदि ऐसा होता तो यह जाति पूरी तरह अलग–थलग होती। उल्लेखनीय है कि नागा लोग 'चावङकूट' त्योहार मनाते हैं। यह एक नवंबर को मनाया जाता है। इस दिन से नयी फसल खायी जाती है। खेतों से जो धान आता है, पहले उसे भंडार में रखा जाता है और इस खुशी में लोग गीत गाते हैं। यह परंपरा हिंदी प्रदेश के कई अंचलों में है। नयी फसल से संबंधित कई लोकगीत प्रचलित हैं। नागालैंड में रहने वाले कुकि जाति के लोग खेती करते हैं तो उल्लास में गीत गाते हैं।

नागा जाति का कोई पारंपरिक धर्म नहीं है। इसलिए धर्म संबंधी लोकगीत यहां नहीं मिलते। ये चुंग पथेन में विश्वास करते हैं और उसे सृष्टिकर्त्ता मानते हैं। उसका कोई आकार नहीं है और उसका कोई भी स्थान नहीं है। ये लो उसे आकाशधर्मा मानते हैं। ये लोग 'नोइमंग्दा' को संहारकारक मानते है। और उसका निवास पाताल में मानते हैं। इन बातों को लेकर यहां प्रचलित लोकगीतों का सर्वेक्षण अभी बाकी है। डॉ. सीताराम अधिकारी ने लिखा है– "कुकि जनजाति की यह एक विशेषता है कि ये लोग साधारण जीवन–यापन करते हैं। ये समूह में रहना पसंद करते हैं और पर्व–त्योहार धूमधाम से मनाते हैं। ये कर्मठ होते हैं। आज इस जाति के बीच में उग्रवादी संगठनों का जन्म होने के कारण इनके जीवन की समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। इस जाति के बीच भय का संसार सृजित हो गया है। इसके कारण इस क्षेत्र के लोग एक–दूसरे से झगड़ रहे हैं और आपस में भी लड़कर मर रहे हैं" (डॉ. सीताराम अधिकारी, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013) लेकिन यह स्थिति का एक पहलू भर है। इस जाति की सांस्कृतिक अस्मिता लोक साहित्य में अपनी सीमितता के बावजूद मिल जाती है। यह ध्यान रहे कि यहां असमिया भी बोली जाती है।

नागालैंड के लोग अपनी बात को इक भाषा में भी रखते हैं। इसलिए नागालैंड के लोक साहित्य पर बात करते हुए असमिया लोक साहित्य को भी ध्यान में रखना होगा। डॉ. रामकुमार प्रसाद वर्मा ने नागालैंड की एक लोककथा का उल्लेख किया है– "सुना जाता है कि असम राइफल्स का कोई कमांडेंट गोलाकार शिवलिंग को उठाकर अपने घर ले गया। उसने शिवलिंग को अपने बैग में रखा था। अपनी यात्रा के दौरान कहीं पर बैग खोला तो बैग में वह शिवलिंग नहीं था। शिवलिंग बैग से निकलकर अपने वास्तविक स्थान मंदिर में चला आया था। उस कमांडेंट ने मंदिर में वापस आकर क्षमा–याचना की थी। उस समय से कोई उसे उठाता नहीं है।" (डॉ. रामकुमार प्रसाद वर्मा, समन्वय पूर्वोत्तर, अप्रैल 2013)

शिव के विषय में इस तरह की कथाएं हिंदी क्षेत्रों में भी प्रसिद्ध हैं। नागालैंड में शहर और गांव का भेद नहीं है। वहां के मूल निवासियों के साहित्य पर काम अभी जारी है। असम का अंग रहने के कारण 1965 के पहले, अलग से इस प्रदेश के लोक साहित्य पर ठीक से काम नहीं हो सका है।

अंत में, यह कहना गलत न होगा कि तुलनात्मक विवेचन में सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना की भूमिका भी प्रमुख होती है। पूर्वोत्तर भारत हिंदी प्रदेश से हजारों मील दूर है। पूर्वोत्तर भारत में अधिकांशतः जनजातियां निवास करती हैं। हिंदी प्रदेश की तरह वहां वर्णाश्रम व्यवस्था से उत्पन्न जाति व्यवस्था की जकड़न नहीं है। वहां छोटे–छोटे समूह हैं, जिनकी अपनी अस्मिताएं हैं। इनकी अभिव्यक्ति का अपना माध्यम है। तुलनात्मक विवेचन विषयवस्तु को लेकर नहीं हो सकता। उसका आधार जब भी होगा, अंतर्वस्तु ही होगा। इस दृष्टि से हिंदी और पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य में समानता के अनेक तत्व मिलते हैं, किंतु इतना कहना ही पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में ठोस कार्य की आवश्यकता निरंतर बनी हुई है।

गतिविधि

स्थानीय लोकगीत और कहावतों का संग्रह कीजिए तथा भाषाओं और बोलियों के मिश्रित रूप की सूची बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

- हर 12 कोस पर बोलियां बदल जाती है।
- लोक साहित्य की विविध विधाओं में अंतः सूत्रता होती है।

5.12 सारांश

लोक साहित्य किसी भी बोली और भाषा की विकास यात्रा का प्रथम चरण होता है। इसमें कला और संरचना संदर्भित तत्व विचारणीय नहीं होते। लोक साहित्य लोक की सत्ता का परिचायक होता है। विद्वानों के अनुसार लोक साहित्य सर्वथा संहितामुक्त नहीं होता। उसकी अपनी संहिता होती है जो अपेक्षाकृत अधिक लचीली होती है। लोक साहित्य का सांस्कृतिक पक्ष यह है कि जिस समाज में यह साकार होता है, उसकी संस्कृति उसमें फलीभूत होती है। किसी जाति के इतिहास को जानने के अहम आधारों में एक पुख्ता आधार लोक साहित्य भी है। मानव विज्ञान के अध्ययन के लिए इसका अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण पड़ाव साबित होता है। इसलिए अनेक तरह की जातियों–उपजातियों की प्रवृत्तियों का अध्ययन लोक साहित्य के जरिए ही मुमकिन हो सका है। इस दृष्टि से लोक साहित्य को जातीय निर्माण की एक कड़ी माना जा सकता है।

लोकगीत लोक साहित्य की मुख्य विधा है। जो संबंध काव्य और गीति काव्य में होता है वही लोक काव्य और लोकगीत में भी होता है। काव्य साहित्य का आदि रूप है और गीत काव्य का आदि रूप। काव्य की मुक्तक काव्य, प्रबंध काव्य, गीति काव्य, नाट्य काव्य सरीखी अनेक विधाएं होती है। लोक काव्य में लोक प्रचलित समस्त काव्य विधाएं जैसे– लोकगाथा, लोक मुक्तक, लोक नाट्य, लोक चंपू और लोकगीत सम्मिलित हैं। लोक साहित्य का संबंध स्थान विशेष की सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक गतिविधियों से भी

'अपनी प्रगति जांचिए'

6. पूर्वोत्तर में कहां का लोक साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है?
7. मणिपुर की रासलीला कहां से प्रेरित है?
8. मेघालय का लोक साहित्य किस भाषा में है?
9. कहां की लोककथा के अनुसार शिव ने सभी देवताओं को पत्थर बना दिया था?
10. हिंदी भाषा किस परिवार की भाषा है?

होता है। बाला शौरि रेड्डी के शब्दों में कहें तो किसी जाति या संस्कृति की वास्तविक पहचान उसके लोक साहित्य द्वारा ही होती है। इसलिए कि लोक साहित्य में जनता की आशाएं–आकांक्षाएं, उसके सुख–दुख, ह्रास–परिहास, आचार–व्यवहार एवं उसकी समग्र जीवन शैली का प्रतिबिंब मिलता है।

हिंदी लोक साहित्य की भांति ही असमिया लोक साहित्य में भी लोक विश्वासों का अत्यंत महत्व है। नवजात के प्रथम माह में उसके मंगल–अमंगल ग्रहों के बारे में ज्योतिषी से जानकारी लेना, मृत्यु उपरांत दहन क्रिया, शोक मनाना, बिल्ली के रास्ता काटने को अशुभ मानना और कौवा बोलने को प्रिय के आगमन का सूचक मानना, इन सबका उल्लेख लोक साहित्य में मिलता है। अरुणाचल के लोक साहित्य पर भी हिंदी के लोक साहित्य का प्रभाव दिखता है। हिंदी की तरह ही अरुणाचल की लोक कथाएं भी प्रकृति और वन्य जीवों से संदर्भित है, परंतु उनका लक्ष्य मनुष्य और उसका समाज ही है।

'झील का रहस्य' नामक अरूणाचली लोककथा यद्यपि हिंदी लोक साहित्य की लोक कथाओं से पृथक स्वरूप में है लेकिन इसका कारण परिवेशगत है। लोक विश्वास कई बार एक खास क्षेत्र तक ही सीमित रहता है। इसका एक क्षेत्र अवश्य हिंदी लोककथाओं से मेल खाता है जो उपदेशात्मक है। उपदेश यह कि बिना सोचे–विचारे कोई चीज नहीं खानी चाहिए और सामूहिक कार्य में किसी को छोड़ना नहीं चाहिए।

मणिपुरी लोक साहित्य में उपदेश या प्रचार की भावना का दर्शन कम ही मिलता है। प्रतिरोधी चेतना का दर्शन इस लोक साहित्य में होता है। इस सबके बावजूद हिंदी के लोक साहित्य से इसकी कई अर्थों में साम्यता नजर आती है। हिंदी प्रदेश में जहां धान की रोपनी होती है वहां के लोकगीतों और मणिपुर के लोकगीतों में साम्यता के दर्शन होते हैं। मणिपुर की रासलीला को व्याख्यायित करने वाला लोकगीत भी हिंदी प्रदेश के लोकगीत से संबंध रखता है क्योंकि इस रासलीला का आधार व्रज की रासलीला ही है। मेघालय की लोक सर्जना पर भी हिंदी का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। जैसे गारो भाषा में उपलब्ध लोक साहित्य के जरिए मेघालय के समाज को बखूबी समझा जा सकता है, ठीक वैसे ही हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य के माध्यम से यहां के सामाजिक–आर्थिक जीवन को समझा जा सकता है। त्रिपुरा में गंगा से संबंधित प्रचलित धारणा हिंदी प्रदेश के प्रभाव से ही बन सकती है। यहां प्रचलित आयचुक किसान की लोककथा अंधविश्वास के दुष्परिणामों को दर्शाती है और हिंदी प्रदेशों की लोककथाएं भी इस तरह के संदेशों से भरी पड़ी हैं। रानी छोलुआहल्ली से संबंधित मिजोरम की लोककथा संदेश देती है कि वर्चस्व की जंग में विजेता कोई भी पक्ष हो, हानि दोनों पक्षों की होती है। हिंदी लोककथाओं में ऐसा स्वर अलबत्ता नहीं मिलता किंतु हिंदी साहित्य ऐसे संदेश की अनुगूंज से रिक्त नहीं है। यहां प्रचलित मछली से संदर्भित लोककथा का स्वरूप भी हिंदी क्षेत्र की लोककथाओं से अलग है। हिंदी में ऐसी कथाएं नहीं मिलती। इसका कारण हिंदी प्रदेश और मिजोरम के परिवेश में निहित है। हिंदी साहित्य का विकास भी इन प्रदेशों में नहीं हुआ, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि एक के लोक साहित्य का प्रभाव दूसरे के लोक साहित्य पर पड़ा है या नहीं।

नागालैंड के लोक साहित्य का संकलन, प्रकाशन, संरक्षण न होने से हिंदी प्रदेशों के लोक साहित्य से उसके संबंध पर स्पष्टतः कुछ नहीं कहा जा सकता। यहां शहर व गांव का भेद भी नहीं है। हिंदी प्रदेश की भांति वहां जाति व्यवस्था की जकड़न भी नहीं है। वहां स्थित छोटे–छोटे समूहों की अपनी अस्मिताएं हैं। अतः नागालैंड व हिंदी प्रदेश के लोक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन विषय वस्तु को लेकर नहीं किया जा सकता है।

5.13 मुख्य शब्दावली

- **परंपरा** : परंपराओं द्वारा पोषण प्राप्त।
- **समानांतर** : साथ–साथ चलने वाली।
- **संहिता विहीन** : नियमों–उपनियमों से रहित।
- **लोक मानस** : आम–अवाम की मानसिक अवस्था।
- **व्याकरणिक** : व्याकरण सम्मत।
- **दंत कथाएं** : मौखिक रूप से स्थापित कहानियां।
- **सामूहिकीकरण** : सामूहिक रूप से स्वीकृत।
- **कथक्कड़** : कथा कहने वाला, कथा वाचक।
- **थातियां** : संपदाएं, पूंजी।
- **आदिम रूप** : आरंभिक स्वरूप, शुरुआती रूप।
- **परिवेशजन्य** : वातावरण/माहौल से उत्पन्न।
- **फागुन** : हिंदी का 12वां महीना।
- **निरक्षर** : अक्षर ज्ञान से रहित, अनपढ़।
- **राजप्रासाद** : राजमहल, राजा का भवन।

5.14 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. अशिक्षित, असभ्य
2. बहुलोक
3. डॉ. रविन्द्र भ्रमर
4. लोक साहित्य
5. पूर्वोत्तर में
6. मणिपुर का
7. ब्रज (वृंदावन) से
8. गारो

9. त्रिपुरा की

10. भारोपीय भाषा परिवार की

5.15 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक साहित्य से क्या आशय है?
2. लोक साहित्य की एक परिभाषा दीजिए।
3. बोलियां क्या हैं?
4. 'गुमराग पाक्षोंग' किसे कहते हैं?
5. डाक और घाघ कौन थे?
6. केले की खेती के बारे में असमिया लोक साहित्य क्या कहता है?
7. 'झील का रहस्य' कहां की लोककथा है?
8. 'हाई लाओबा' क्या है?
9. मिजोरम पहले किस राज्य का हिस्सा था?
10. नागालैंड के लोक साहित्य में धार्मिक गीत क्यों नहीं मिलते?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक साहित्य से आप क्या समझते हैं? इसकी विविध परिभाषाओं के आलोक में स्पष्ट कीजिए।
2. लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. हिंदी और असमिया लोक साहित्य का संबंध निरूपित कीजिए।
4. अरुणाचल और मणिपुर के लोक साहित्य में क्या समानता और असमानता है?
5. त्रिपुरा और हिंदी लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
6. नागालैंड और हिंदी लोक साहित्य की तुलना कीजिए।
7. 'कुकि' जनजाति कहां से संबंधित है? इसकी क्या समस्याएं हैं और वे क्यों बढ़ती जा रही हैं?

5.16 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. इन्द्रनाथ चौधुरी, *तुलनात्मक साहित्य – भारतीय परिप्रेक्ष्य*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रधान संपादक, राजनाथ शर्मा, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, संपादक, *समालोचक*, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

Institute of Distance Education

Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890

Ide Rgu

Ide Rgu

helpdesk.ide@rgu.ac.in